मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में सौन्दर्याभिव्यक्ति

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.) में हिन्दी
विषयान्तर्गत पी-एच.डी. की उपाधि के लिए परीक्षणार्थ प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

2002

शोध पर्यवेक्षक
रा०स्व०खरे
डॉ. रामस्वरूप खरे
एम.ए.,पी-एच.डी. 'साहित्य रत्न'
पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं प्राचार्य
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
उरई (उ.प्र.)

अनुसंधित्सिका
अनु मिश्रा
कु. अनु मिश्रा
द्वारा- श्रीमती उर्मिला मिश्रा
ग्राम- अजनारी 'चन्द्रलोक'
पो.ऑ. चिल्ली, उरई (उ.प्र.)

शोध पर्यवेक्षक का प्रमाण-पत्र

मुझे यह प्रमाणित करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि **कु. अनु मिश्रा** सुपुत्री श्री स्व० हरि शंकर मिश्र ने मेरे निर्देशन में हिन्दी विषयान्तर्गत **'मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में सौन्दर्याभिव्यक्ति '**शीर्षक के माध्यम से अपना पी-एच.डी. का शोध प्रबन्ध विश्व विद्यालय में मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने जा रही हैं।

शोधार्थिनी ने अपने वैदुष्य के परिचय के साथ-साथ सम्यकरूपेण विषय का प्रतिपादन किया है। इसमें उसकी श्रम साधना , दृढ़ लगन एवं ज्ञान के प्रति सजगता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। इसमें यत्र तत्र सर्वत्र सुबोध एवं सरल शैली के साथ-साथ अनुभूति और अभिव्यक्ति के स्तर पर अनेक रहस्यों का तथ्यपूर्ण चित्रण श्लाघ्य है।

गुप्तजी के काव्य में सौन्दर्य के विभिन्न रूपों की चर्चा करते हुए शोधार्थिनी ने विषय के विविध आयामों प्रशंसनीय ढंग से उदाहरणों सहित सुस्पष्ट किया है। शोधार्थिनी ने जहाँ उनकी प्रमुख कृतियों का तथ्यपरक मूल्यांकन किया है , वहाँ साथ ही साथ काव्य के विविध पक्षों की समीक्षा करते हुए सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का सफल चित्रण किया है। आठ अध्यायों में विभाजित इस शोध प्रबन्ध में विषय का क्रमबद्ध विश्लेषण होने से यह अत्यन्त प्रभावी बन पड़ा है।

अन्त में संस्कृत , हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषाओं के संदर्भ ग्रन्थ एवं पत्र-पत्रिकाओं की सूची दी है जिससे शोधार्थिनी के गम्भीर अध्ययन , मनन और चिन्तन की झलक उजागर होती है।

मैं इस प्रयास की प्रशंसा करते हुए शोध प्रबन्ध को परीक्षणार्थ विद्वान परीक्षकों के कर -कमलों में सम्प्रेषित कर रहा हूँ।

रा० स्व० खरे

दिनाँक 27.11.02

डॉ. राम स्वरूप खरे
एम.ए.,पी-एच.डी. 'साहित्य रत्न'
पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं प्राचार्य
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
उरई (उ.प्र.)

प्राक्कथन

मेरी उत्कट इच्छा थी कि पी-एच.डी. करूं । इसीलिए एम.ए. करने के पश्चात मैंने शोध के लिए विषय चयन करने हेतु विभिन्न विद्वजनों व गुरुजनों से परामर्श करना प्रारम्भ कर दिया । राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी की रचनाओं ने मुझे शुरू से ही बेहद प्रभावित किया है । उनकी कृतियों का जितना मनन करो उनमें उतना ही गहराई तक उतर जाने को मन करता है । इसीलिए मैंने गुप्तजी की कृतियों पर ही शोध करने का मन बनाया । कुछ लोगों ने कहा भी कि उन पर तो बहुत काम किया जा चुका है, पर मेरा मानना था कि गुप्तजी का रचना संसार ज्ञान का ऐसा अथाह सागर है जिसमें जितनी डुबकियां लगाओ उतने ही मोती मिलेंगे । श्रद्धेय गुरुवर युगकवि डॉ. रामस्वरूपजी खरे को जब मैंने अपनी इच्छा बतायी तो उन्होंने न केवल मेरा उत्साहवर्द्धन किया बल्कि सम्यक मार्गदर्शन भी किया । स्वर्गवासी पिताश्री का अलौकिक आशीर्वाद और संघर्ष की प्रतिमूर्ति विदुषी मातृश्री का स्नेह भरा सम्बल मेरे इस पथ के ऐसे पाथेय थे जिनकी अनुभूतिमात्र किसी को भी अपरिमित उत्साह और आत्मविश्वास से परिपूर्ण कर सकती है ।

कार्य प्रारम्भ हुआ तो राह अपने-आप आसान होती चली गई । गुप्तजी की रचनाएँ भी निरन्तर मेरा उत्साहवर्द्धन करतीं रहीं । जिन गुरुजनों, परिजनों और शुभचिन्तकों ने इस कार्य में प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से मेरी सहायता की उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना उनके औदार्य और स्नेह को कम करना ही होगा । हाँ, इतना अवश्य है कि इनके सम्बल के बिना मैं यह कार्य पूरा कर ही नहीं सकती थी । राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी साहित्य के अनूठे एवं

अप्रतिम सुधांशु हैं। आपने न केवल मुक्तक काव्य, खण्ड काव्य, प्रबन्ध काव्य प्रणीत किये वरन् 'साकेत' जैसे महाकाव्य का सृजन करके राष्ट्र भारती के भव्य एवं विशाल मन्दिर की शोभा को द्विगुणित किया है। 'भारत-भारती' के प्रणयन ने तो सुप्त राष्ट्र की नस-नस में अदम्य उत्साह और अभिन्न प्रेरणा का संचार करके भारतीयों को एक नयी दिशा प्रदान की है। इस सन्दर्भ में गुप्त जी निःसन्देह जन- जागरण के प्रथम उद्‌घोष माने जाते हैं।

इस बहुमुखी काव्य - प्रतिभा पर अनेकानेक शोध-कार्य, स्वतन्त्र लेख एवं समीक्षायें अब तक की जा चुकी हैं। किन्तु ज्ञान का क्षेत्र तो असीम और अनन्त है। अतएव गुप्त जी की सारस्वत - साधना के अनेक पक्ष अब भी शोध के विषय बनते चले जा रहे हैं। भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों में स्वीकृत शोध प्रबन्ध इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

गुप्त जी के काव्य का अनन्त साहित्य-सिन्धु लहरा रहा है। जिसकी जितनी पात्रता होती है, वह उसमें से उतना ही जल अपने पात्र में भर लाता है। ऐसा करने पर उसमें किसी प्रकार का अभाव नहीं आता, अपितु वह समुद्र और अधिक गम्भीर और अगाध होता चला जाता है।

गवेषणात्मक वृत्ति प्रतिभा के असंख्य मौलिक द्वार उद्‌घाटित करती ही रहेगी। अस्तु, उदात्त साहित्य की परम्परा में गुप्त जी का काव्य वैभव असंख्य प्रदीपों के रूप में जगमगाता हुआ, लोक में दिव्य आलोक विकीर्ण करके युग-युग तक सद्‌मार्ग प्रशस्त करता रहेगा।

मेरा शोध विषय '**मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में-सौन्दर्याभिव्यक्ति**' है। यद्यपि यह विषय अधिक विस्तृत है। सौन्दर्य की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति असम्भव है। तथापि भिन्न-भिन्न विद्वानों, सहृदयों एवं कवियों ने उसका अपनी-अपनी भीत और सीमा के अनुरूप प्रकटीकरण किया है। गुप्त जी की

सौन्दर्यभिव्यक्ति का फलक बड़ा विस्तीर्ण है। उनकी समूची कृतियों का भली-भांति चिन्तन एवं मनन करके मैंने इसे सुविधानुसार आठ परिच्छेदों में इस प्रकार बाँटा है, जिससे सामान्य जन को भी उनकी सौन्दर्याभिव्यक्ति सहज, सरल एवं बोधगम्य हो सके।

प्रथम अध्याय को **'भूमिका'** शीर्षक देकर मैंने उसमें युगीन परिस्थितियों के अन्तर्गत सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का उल्लेख किया है, क्योंकि इन्हें जाने बिना कवि का सामाजिक स्तर ज्ञात नहीं हो सकता। यह निर्विवाद सत्य है कि कवि अपने सामाजिक परिवेश तथा चतुर्दिक वातावरण से प्रभावित होता है और युगीन परिस्थितियों के संघर्ष में उसके व्यक्तित्व का प्रसून प्रफुल्लित होकर समूचे वातावरण को सुरभित करता है ।

3 अगस्त 1986 ई. को प्रख्यात साहित्यकार एवं युग कवि डॉ. राम स्वरूप खरे ने मैथिलीशरण गुप्त शताब्दी समारोह में भाषण देते हुये कहा था कि- 'कवि ने युगों-युगों से चली आ रही पराधीनता की भावना को विनष्ट करके स्वतन्त्रता, समानता, राष्ट्रीय अखण्डता एवं साम्प्रदायिक सौहार्द की स्थापना की। आपकी रचनाओं को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त जी को भारत का स्वर्णिम अतीत बड़ा भला लगता था। उन्हें इस देश की सभ्यता और संस्कृति से बड़ा प्यार था। वे इस धरती की माटी को मस्तक का चंदन मानते थे क्यों कि इसी रज में उनके राम और कृष्ण शिशु बन कर रज-रंजित हुये थे। इतना संयत और प्रबल राष्ट्रीयता का स्तर किसी अन्य कवि के काव्य में मुखरित नहीं हुआ है। यही कारण है कि जनता-जनार्दन ने उन्हें राष्ट्र कवि के रूप में प्रतिष्ठित किया ।'

गुप्त जी के जीवन-वृत्त के अन्तर्गत 3 अगस्त 1886 ई. में जन्में श्री गुप्त

का बाल्यकाल युवावस्था और प्रौढ़वस्था को समेटा है। जिसमें उनकी शैशव की चपलता, तरुणाई, पुत्र रत्न की प्राप्ति हेतु तीन-तीन विवाह शिक्षा-दीक्षा, साहित्यिक गुरु मुंशी अजमेरी के साथ-साथ तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव दिखलाया है। सन् 1906 ई. से गुप्त जी की रचनायें 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगी थीं। गुप्त जी ने इस बीच अनेक पारिवारिक उतार चढ़ाव देखे।

जहाँ तक गुप्त जी के कृतित्व का प्रश्न है उसे मैने पाँच उपवर्गो में बाँटकर विभाजित किया है-

(क) प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत- विष्णु प्रिया, जय-भारत, साकेत, जयद्रथ वध, रंग में भंग, अजित, द्वापर ,यशोधरा इत्यादि।

(ख) खण्ड काव्य के अन्तर्गत- भारत-भारती, हिन्दू, नहुष, सिद्धराज, पंचवटी, अनघ, शकुन्तला, वक-संहार, गुरुकुल, हिडिम्बा इत्यादि।

(ग) मुक्तक काव्य के अन्तर्गत-वैतालिक, शक्ति, युद्ध लीला इत्यादि।

(घ) स्फुट रचनाओं के अन्तर्गत-झंकार, उच्छवास, रत्नावली, पत्रावली, अंजलि और अर्ध्य, पृथ्वी, पुत्र, वन-वैभव, सैरन्ध्री इत्यादि।

(ङ) अनूदित रचनाओं के अन्तर्गत- हिन्दी की वर्तमान दशा,मेघनाद वध, यशवन्त राव, विरहणी वज्रांगना, स्वप्नवासवदत्तम् इत्यादि।

इस प्रकार गुप्त जी के काव्य संसार को विनिर्मित करने वाली सन् 1910 ई. से प्रकाशित सन् 1960 ई. पर्यन्त उनकी 41 काव्य कृतियों का उल्लेख मैंने इस शोध प्रबन्ध में किया है।

शोध प्रबन्ध का **द्वितीय परिच्छेद 'सौन्दर्य बोध'** से सम्बन्धित है। प्रथम शीर्षक में सौन्दर्य बोध का अर्थ सुस्पष्ट करते हुये मैंने सुन्दर शब्द की व्युत्पत्ति एवं अनेकानेक परिभाषायें प्रस्तुत की हैं।

तृतीय परिच्छेद 'सौन्दर्य की परिभाषा' से सम्बधित है। इस अध्याय के अन्तर्गत मैंने यह दिखलाने का प्रयास किया है कि सौन्दर्य मन को आकर्षित करने की अत्यन्त प्रबल एवं अपराजेय शक्ति है। आकर्षण इसका दूसरा तत्व है। इसी आकर्षण को दार्शनिक भाषा में आत्मा कहा जाता है और विज्ञान के सन्दर्भ में यही शक्ति है । दार्शनिक आनन्द प्राप्ति को ही मानव जीवन का अन्तिम ध्येय मानते हैं। योगी समाधि में, साधक साधना में, भक्त भक्ति प्रक्रिया में तथा विचारक चिन्तन में ही आनन्द प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं और इस आनन्द की चरम परिणित परमानन्द में होती है। और सौन्दर्य का ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा ही मन तक होता है अत: वह स्थूल है और इसका क्षण-क्षण परिवर्तनशील रूप ही सौन्दर्य की कसौटी है। काव्य के मध्य स्थित आकर्षण शक्ति का समानार्थक माना जा सकता है क्योंकि मन अपनी समस्त चित्त वृत्तियों के साथ इसी शक्ति के द्वारा आकर्षित होता है और आनन्द का उपभोग करता है। मानव की सच्ची अनुभूतियाँ से सम्पृक्त होने के कारण सौन्दर्य सत्य और शिव का रूप होता है। सत्य ही सौन्दर्य को सार्वकालिक बनाने में सहयोग देता है।

चतुर्थ परिच्छेद में **सौन्दर्य को कला और काव्य के परिप्रेक्ष्य** में देखने का प्रयास किया गया है। इसलिये मैंने सर्वप्रथम कला और काव्य का अर्थ सुस्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। सौन्दर्यानुभूति जीवन की विशिष्ट अनभूति है उसका प्रभाव अमित और उन्मादकारी होता है। यदि यह महत्वपूर्ण भावना न होती तो साधकों ने लीला रस की साधना में अपने आराध्य के परम स्वरूप की कल्पना कभी न की होती। सौन्दर्य की भावना से हमारी वृत्तियों का परिष्कार और चेतना का विकास होता है भारत में काव्य को कला से ऊपर स्थान दिया है और पश्चिम में उसकी मौलिक अनुभूति की जो प्रेरणा है वही

सौन्दर्यमयी संकल्पनात्मक होने के कारण अपनी श्रेय स्थिति में रमणीय आकार में प्रकट होती है और आकार में वर्णनात्मक होने के कारण रचना विन्यास की कुशल अभिव्यक्ति प्रेय बन जाती है।

पंचम परिच्छेद 'सौन्दर्यानुभूति' शीर्षक से है। इसमें सौन्दर्यानुभूति का अर्थ, सौन्दर्यानुभूति से संबंधित प्राचीन कथाएं, आचार्यों के अभिमत तथा पाश्चात्य व भारतीय विद्वानों के मतानुसार सौन्दर्यानुभूति को स्पष्ट करने की चेष्टा की है।

षष्ठ परिच्छेद 'गुप्त जी की सौन्दर्यानुभूति' पर आधारित है, जिनमें क्रमशः रूप चित्रण (क) अलौकिक सौन्दर्य - दिव्य सौन्दर्य, प्राकृतिक सौन्दर्य (ख) लौकिक सौन्दर्य - पुरुष सौन्दर्य, नारी सौन्दर्य, शिशु सौन्दर्य, बिम्बविधान, तुलनात्मक सौन्दर्य, नाव- शिख वर्णन द्वारा गुप्त जी के काव्य में वर्णित सौन्दर्य को विश्लेषित किया है।

सप्तम परिच्छेद गुप्त जी के अनुभूति और अभिव्यक्ति पक्ष से सम्बन्धित है। सुविधा की दृष्टि से मैंने इसे नौ उपशीर्षकों षट् ऋतु वर्णन, रस योजना, प्रकृति चित्रण, भाषा, छन्द, अलंकार, गुण, रीति, और शैली में विभक्त किया है।

अष्टम परिच्छेद शोध प्रबन्ध के **उपसंहार** से सम्बधित है। इसमें गुप्त जी द्वारा प्रणीत समूची इक्तालीस कृतियों का विश्लेषण करते हुये यह निष्कर्ष निकाला है कि गुप्त जी आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ महाकवि हैं।

- कुमारी अनु मिश्रा

अनु मिश्रा

अनुक्रमणिका

प्रथम परिच्छेद

भूमिका

प्रथम परिच्छेद

भूमिका

प्रत्येक कवि अपने सामाजिक परिवेश, वातावरण तथा युगी परिस्थितियों से प्रभावित होता है। यह एक सार्वभौमिक सत्य है। दूसरी ओर कवि अपने युग को भी प्रभावित करता है। उसका स्वयं का जीवन कैसा था ? उसे कैसे संस्कार मिले ? उसकी कैसी आस्था थी ? वह किसके प्रति समर्पित था ? और किसके प्रति प्रतिबद्ध ? साथ ही यह भी देखना पड़ता है कि उसके जीवन का उद्देश्य क्या था ?

जहां तक मैथिलीशरण गुप्त का प्रश्न है उन्हें भक्ति, सारल्य और सहजता स्वाभाविक रूप में प्राप्त हुई थी। उनके ऊपर वैष्णवी संस्कारों की छाप थी। वे अपने युग की परिस्थितियों से पूर्णतया प्रभावित थे तथा युगीन परिस्थितियों ने उनके ह्दय को आन्दोलित कर दिया, जिससे वे युग विशेष के ही गीत गाने लगे। आइये अब हम उन युगीन परिस्थितियों – सामाजिक एवं धार्मिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों पर एक विहंगम दृष्टि डालते चलें जिसके पराधीन होकर सरस्वती का यह पुजारी अपनी परम्परागत रामकथा को छोड़कर युग विशेष के गीत गुनगुनाने लगा।

युगीन परिस्थितियाँ

सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ :-

गुप्तजी के काव्य ने जब तोतली बोली में अपने भाव व्यक्त करना प्रारम्भ किये तब सुधारवादी युग का अवसर था। ब्रह्म समाज की स्थापना में राजा राममोहन राय ने अपना योगदान दिया। पुनःश्च देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशवचन्द्र ने इसे प्रगतिशील बनाया। स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, रात्रि पाठशालायें, अन्तर्जातीय विवाह, अकालपीड़ितों की सहायता आदि कार्यों को प्रेरित करते हुए इनके द्वारा पारस्परिक एकता, क्षमता, विश्वबंधुत्व की भावना पर अधिक बल दिया गया था।

सन् 1877 में दयानन्द सरस्वती ने 'आर्य समाज' की स्थापना की। आपने मूर्तिपूजा का

निषेध किया तथा तदनुसार धार्मिक अनुष्ठानों, स्त्री स्वतंत्रता, छुआछूत निवारण, हिन्दी या संस्कृत के माध्यम से शिक्षा प्रचार, नारी शिक्षा आदि की व्यवस्था की। इसके अतिरिक्त जो हिन्दू ईसाई अथवा मुसलमान बन गए थे, उन्हें शुद्ध करके पुनः स्वधर्म में लाने का प्रयत्न किया गया।[1]

भारतीय समाज में नवजागरण हेतु 'थियॉसाफिकल सोसाइटी' का भी बड़ा योगदान रहा। इसमें श्रीमती एनीबेसेन्ट का नाम उल्लेखनीय है। इसके अनुसार यहाँ पारस्परिक भेदभाव को मिटाकर विश्व-बंधुत्व की भावना, विशुद्ध मानव प्रेम, ईश्वर में विश्वास, सर्वधर्म समन्वय आदि पर जोर दिया गया था।[2] सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों के निर्माण में स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित 'रामकृष्ण मिशन' नामक संस्थाने भी पर्याप्त योगदान दिया।

महाराष्ट्र में 'प्रार्थना समाज' की स्थापना की गई। इसमें महादेव गोविन्द रानाडे जैसे प्रसिद्ध समाज सुधारक का सहयोग प्राप्त हुआ। इस संस्था ने सेवा भावना, आस्तिकता,समानता, अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह, शिक्षा प्रचार आदि कार्यों पर अधिक बल दिया।

इस समाज के पुनरुत्थान में स्वामी रामतीर्थ 24 वर्ष की युवावस्था में सन्यास लेकर देश-विदेश में जाकर सत्य,अहिंसा, समानता, ईश्वर में विश्वास आदि का प्रचार करने लगे।

महर्षि अरविन्द ने भी अपने विचारों में पूर्व और पश्चिम का सामंजस्य करके आस्तिकता, धार्मिक सहिष्णुता, मानव प्रेम का संदेश सुनाया।

इन संस्थाओं के अतिरिक्त तत्कालीन अंग्रेज शासकों ने भी समाज सुधार के अनेक कार्य किये। उन्होंने सती प्रथा, बाल विवाह पर रोक लगाई। छुआछूत, ऊंच-नीच, परदा प्रथा को हटाकर नारी शिक्षा, नारी-पुरुष समानता तथा अछूतों को मताधिकार देने का प्रयत्न किया। देश में डाक-तार, रेल, सड़क, टेलीफोन की व्यवस्था की गई। कपास, जूट आदि की मिलें लगाकर अपने और भारतीयों के बीच संबंध सुदृढ़ बनाने के अनेको प्रयत्न किये। किन्तु फिर भी अंग्रेजों की कूटनीति के कारण भारतवर्ष में बेकारी बढ़ती गई। यहां के राजाओं को अंग्रेजी सेना के कूटनीतिज्ञों, प्रतिनिधियों, जहाजी बेड़ा आदि की व्यवस्था का व्यय करना पड़ता था। परिणामस्वरूप देश में भयंकर निर्धनता, निराशा, नास्तिकता, असंतोष आदि की वृद्धि होने लगी।[3]

समाज के ऊपर गांधीजी की विचारधारा का भी सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। इस संबंध में स्वयं गांधीजी लिखते हैं- 'गांधीवाद नाम की कोई वस्तु है ही नहीं, और न मैं अपने पीछे कोई सिद्धांत छोड़ जाना चाहता हूं। मेरा यह दावा भी नहीं है कि मैंने किसी नये तत्व या सिद्धांत का अविष्कार किया है। मैंने तो सिर्फ जो शाश्वत सत्य है उसको अपने नित्य के

जीवन और प्रतिदिन के प्रश्नों में अपने ढंग से उतारने का प्रयास मात्र किया है।' [4]

गांधीजी ने सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया, सर्वोदय, रामराज्य, हरिजन सुधार, ईश्वरोपासना, ग्रामसुधार तथा सेवाभावना आदि के विचार प्रस्तुत किये हैं। उपर्युक्त सभी विचारों को गुप्तजी साहित्य में पूर्णतया देखा जा सकता है। वे तिजने सरल और सहृदय थे, उतने ही एक सच्चे मनुष्य। यही कारण है कि उनके समूचे काव्य में गांधी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

इस प्रकार इन सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं ने जन-समुदाय में एकता, समानता, आस्तिकता, मानवप्रेम, सत्य, अहिंसा, सहानुभूति आदि का काफी प्रचार किया किन्तु अंग्रेजों की शोषण संबंधी कूटनीतियों के कारण वे सफल नहीं हो सके।

सन् 1946 में जब भारतवर्ष ने प्रथम स्वतंत्रता का स्वर्ण विहान देखा तब उस समय देश में नवजागरण की लहर आसेतु हिमांचल फैल गई। फिर भी देश के विभाजन से जनता की धार्मिक और राष्ट्रीय भावना को ठेस पहुंची और पारस्परिक कटुता, असहिष्णुता को बल मिला। परन्तु हमारे संविधान में जो धर्म-संप्रदाय और वर्गभेदों को दूर करके सबकी समानता घोषित की गई है, उससे समाज एक नवीन उत्थान की ओर अग्रसर हुआ। आज इसी के परिणामस्वरूप छुआछूत अथवा अस्पृश्यता विष समाज से कुछ दूर हो गया है। अन्तरजातीय विवाह होने लगे हैं, नारी-पुरुष की समानता को सक्रिय रूप प्राप्त हो रहा है। असवर्णों तथा नारियों का उच्च स्थान तथा उच्च से उच्च शिक्षा की व्यवस्था है। धार्मिक मनमुटाव भी कम हो गया है। शिक्षा केन्द्रों में पर्याप्त प्रगति दिखाई पड़ती है, विभिन्न क्षेत्रों में नये-नये अनुसंधान कार्य हो रहे हैं तथा देश विभिन्न योजनाओं को पूर्ण करके उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है। [5]

राजनैतिक परिस्थितियां :- हम जब मैथिलीशरण गुप्तजी के राजनैतिक क्षितिज पर दृष्टिपात करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की घटनाओं ने गुप्तजी को अधिक प्रभावित किया। सारा भारत 1857 ई. में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध हो गया। अंग्रेजों ने इस आंदोलन को दबाकर, एवं महारानी विक्टोरिया ने कंपनी को समाप्त कर बड़े-बड़े सुन्दर स्वरूप दिखलाये थे। समग्र भारत को राजतंत्र बनाने का आग्रह किया गया।

1877 में ब्रिटिश राजकुमार भारत आये। 1878 में अंग्रेजों ने 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट' पारित कर दिया तथा इसी समय 'भारतीय शस्त्र एक्ट' भी बना और सरकार की आज्ञा के बिना शस्त्र रखना और उसका व्यापार करना दण्डनीय अपराध घोषित किया गया। [6]

1878 में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा और उसी समय दिल्ली में विशाल दरबार का आयोतजन किया गया, तभी यहां के राष्ट्रीय विचारधारा वाले व्यक्तियों के मन में अखिल भारतीय

संगठन की आकांक्षा उत्पन्न हुई। शासक और शोषित के मध्य वैमनस्यता को दूर करने के लिए सन् 1885 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की स्थापना की गई।

1886 में 'इनकम टैक्स एक्ट' बनाया गया जिसका तीव्र विरोध किया गया। सन् 1903 में सम्राट एडवर्ड सप्तम का राज्याभिषेक होने के कारण भारत में लार्ड कर्जन ने एक वैभवशाली दरबार किया। इसमें सैन्य व्यय के अतिरिक्त एक लाख अस्सी हजार पौण्ड खर्च किये गए। [7]

पुनःश्च, विश्वविद्यालयों को सरकारी नियंत्रण में लाने, बंगाल का विच्छेद करने एवं भारतीयता के चरित्र को असत्यमय बनाने के कारण सारे देश में क्रांति की लहर दौड़ गई। परिणामस्वरूप विदेशी बहिष्कार एवं स्वदेशी प्रचार संबंधी आंदोलन द्रुतगति से भारत में उठ खड़ा हुआ। इस राष्ट्रव्यापी आंदोलन में विपिनचन्द्र पाल, अरविन्द घोष, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक आदि ने भाग लिया। [8]

राष्ट्रीय नेताओं की गिरफ्तारियां प्रारंभ हुईं। जनता का विरोध करने पर भी प्रेस एक्ट पारित किया गया। सन् 1911 में जार्ज पंचम के राज्याभिषेक का लाभ उठाकर बंग विच्छेद कर दिया गया तथा भारत की राजधानी कलकत्ता से हटाकर दिल्ली स्थापित की गई। सन् 1914 से 1918 तक का समय प्रथम विश्वयुद्ध काल का रहा। सन् 1919 में रोलेट एक्ट पास हुआ, जिसका भयंकर विरोध किया गया। इसके विरोध में सम्पूर्ण भारत में हड़तालें हुईं, दिल्ली में निकाले गए जुलूस पर गोलियं चलाई गईं, महात्मा गांधी को गिरफ्तार किया गया तथा जलियांवाला बाग काण्ड हुआ। सन् 1921 में गांधीजी को कांग्रेस का अधिनायक बनाया गया। [9]

सन् 1922 में गांधीजी को फिर बन्दी बना लिया गया और उन्हें छह वर्ष का कठोर कारावास दिया गया। सन् 1926 में हिन्दू-मुस्लिम दंगे चरम सीमा पर पहुंच गए, अतः 1927 में हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए सम्मेलन किया गया। 1929 में लाहोर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, जिसमें पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। 26 जनवरी 1930 को पूर्ण स्वराज्य दिवस मनाने का निश्चय किया गया, तथा 11 शर्तों से युक्त एक प्रस्ताव लार्ड इरविन के सामने रखा गया जिसमें मदिरा, नमक कर, खुफिया पुलिस आदि के बहिष्कार का सुझाव दिया गया। तदुपरांत जनजीवन में सुधार हेतु विभिन्न हड़तालें, बहिष्कार और आंदोलन किये गए। 1940 में गांधीजी के नेतृत्व में व्यक्तिगत सत्यागृह आन्दोलन आरम्भ हुआ। [10]

1942 में द्वितीय विश्वयुद्ध हुआ तो सभी कांग्रेसी नेता कारागारों से मुक्त कर दिये गए।

9 अगस्त 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन की योजना बनी, इसके कारण भारतवर्ष में अंग्रेजी राज्य की नींव हिल गई। ब्रिटिश सरकार के प्रधानमंत्री एटली ने 20 फरवरी 1946 ई. को यह घोषणा की कि भारत जून 1948 तक स्वाधीन कर दिया जायेगा। लार्ड माउन्टबेटेन ने नेताओं से परामर्श करके भारत के पाकिस्तान, हिन्दुस्तान दो भाग करके स्वतंत्रता की घोषणा की। एक बार फिर साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे।

सर्वत्र अशांति का वातावरण हो उठा। पंजाब और नोआखाली में भीषण रक्तपात हुआ तथा 1948 में एक जनसभा को संबोधित करते हुए गांधीजी को मार दिया गया। 26 जनवरी 1950 को भारत को सर्वसत्ताधारी गणतंत्रात्मक राज्य घोषित किया गया। नवीन संविधान के अनुसार डॉ. राजेन्द्रप्रसाद को भारत का प्रथम राष्ट्रपति नियुक्त किया गया। इस प्रकार युग ने अपनी करवट बदली।

साहित्यिक परिस्थितियाँ :- जिस समय गुप्तजी ने साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया उस समय हमारा साहित्य गर्त में ग्रतिसत हो श्रृंगार और विलासिता से ओतप्रोत हो चुका था। सम्पूर्ण समाज अध:पतन की ओर अग्रसर हो रहा था। तभी एक तीव्र लहर राष्ट्रीयता के विषय में प्रादुर्भूत हुई और इस तीव्र लहर ने राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में तरुणों का ध्यान बलात् आकृष्ट किया। तदनन्तर हिन्दी राष्ट्रभाषा का एक अभिन्न अंग का रूप प्राप्त करने में समर्थ होने लगी।

हिन्दी उत्तर भारत की जनभाषा थी परन्तु उसे कार्यालयों और व्यवहारों में उचित स्थान प्राप्त न था। उसे समुन्नत करने तथा राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन करने के लिए आन्दोलन चल पड़ा। इस आंदोलन के प्रवर्तक पं. मदन मोहन मालवीय थे। उनके प्रमुख सहायक तरुण राष्ट्रकर्मी बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन थे। एक पत्र में गांधीजी ने बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन को लिखा था-'मेरे लिए हिन्दी का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है।' इस प्रकार ये दो समानधर्मी हिन्दी के संरक्षण और संवर्धन में लग गये। [11]

गांधीजी के पदार्पण से हिन्दी राष्ट्रभाषा के आंदोलन को प्रचुर मात्रा में प्रश्रय मिला। दक्षिण भारत प्रचार सभा का प्रादुर्भाव हुआ तथा दक्षिण में प्रचार-प्रसार का कार्य आरम्भ हुआ। इसी समय भारतेन्दुजी का आगमन हुआ। उन्होंने हिन्दी साहित्य की धारा को श्रृंगारकालीन परंपराओं और रूढ़ियों के बंधन से हटाकर राष्ट्रीयता और समाजसुधार आदि की नई दिशा की ओर मोड़ा। किसी युग के साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों का उद्‌भव चमत्कारिक घटना की तरह एकाएक नहीं हुआ करता, अपितु उसका बीज उसके वातावरण में बहुत गहरा जमा होता है और उपयुक्त परिस्थितियों से पोषण पाकरअंकुरति और पल्लवित

हो जाता है।

भारतेन्दु जी का हिन्दी साहित्य की रचना प्रारम्भ करना ही नवयुग की चेतना की सूचना देता है। भारतेन्दुजी के साथ ही हिन्दी कविता के विषयों और उनके प्रकाशन के ढंग में महान क्रांति उपस्थित हुई।[12] यही कारण है कि हिन्दी का प्रथम उत्थानकाल भारतेन्दुजी के नाम से जाना जाता है। गुप्तजी के साहित्य के पदार्पण के समय हिन्दी की सुप्रसिद्ध पत्रिका 'सरस्वती' का प्रादुर्भाव हो चुका था। श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसका संपादकत्व संभाला। साहित्यिक दृष्टि से इसे द्विवेदी युग की संज्ञा से अभिहित किया गया। द्विवेदीजी ने ब्रज भाषा के स्थान पर शुद्ध खड़ी बोली में कविता लिखने का आग्रह किया। भारतेन्दु काल की अपेक्षा इस काल में वर्ण्य विषय में पर्याप्त परिवर्तन हुआ। कविताओं के अन्तर्गत राष्ट्र, समाज और संस्कृति के प्रेम की भावना उदित हुई। वे प्रत्येक वस्तु में सुधार और सुव्यवस्था की ओर अग्रसर हुए। राम-कृष्ण की अलौकिक और अस्वाभाविक कथाओं को लौकिक और स्वाभाविक रूप देकर उन्हें मानव जीवन में सर्वथा अनुकूल बना कर काव्य रूप दिया जाने लगा। इस युग में मानवतावादी दृष्टिकोण अत्यधिक विकसित हुआ। कविजन 'विश्वबंधुत्व' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' से ओतप्रोत होकर अपनी रचनाएं प्रस्तुत करने लगे।[13]

इसके उपरांत आगे चलकर द्विवेदी युगीन स्थूल नीतिपरक वाह्यार्थ निरूपिणी एवं इतिवृत्तात्मक कविता प्रणाली के विरुद्ध प्रतिक्रिया आरम्भ हुई। इसके परिणामस्वरूप एक नये युग का प्रारम्भ सन् 1918 में हुआ। जो साहित्य में छायावाद के नाम से प्रसिद्ध है। तत्पश्चात सन् 1936 में एक ऐसे जनवादी साहित्य की रचना हिन्दी में आरम्भ हुई, जिससे किसान-मजदूर की प्रतिष्ठा और पूंजीवाद की भर्त्सना की गई। स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व, विश्व-बंधुत्व, मानवता, प्रेम आदि से ओते-प्रोत होकर आर्थिक एवं राजनीतिक क्रांति के लिए प्रेरित किया गया। इस प्रकार विश्व शांति के लिए सर्वहारा वर्ग के संगठन को आवश्यक बताया गया। यह धारा हिन्दी काव्य जगत में प्रगतिवाद के नाम से विख्यात है।

इसके पश्चात सन् 1938 में प्रयोगवाद आरम्भ हुआ। इसका सूत्रपात सन् 1943 में प्रकाशित प्रथम 'तार-सप्तक' से हुआ। इस संबंध में अज्ञेयजी ने लिखा है-'प्रयोगशील कविताओं में नयी शक्तियों या नयी यथार्थताओं का जीवनबोध भी है। उन सत्यों के साथ नये रागात्मक संबंध भी और उसको पाठक या सहृदय तक पहुंचाने अर्थात साधरणीकरण करने की शक्ति भी है।'[13]

इस युग के साहित्य में अश्लीलता तथा भदेसपन का आधिक्य रहा। इसके साथ ही शब्द-शिल्प, रूप-सज्जा एवं भाव-सौन्दर्य के प्रति विद्रोह किया गया। किन्तु कोई स्वस्थ और

जनोपयोगी साहित्य नही रचा जा सका।

इस प्रकार गुप्तजी के समय में हिन्दी काव्यधारा ने विभिन्न मोड़ लिए हैं। उनमें अनेक बदलती हुई भावनाओं का समावेश हुआ है। अनेक काव्यप्रणालियों ने उसे गति प्रदान की है, और अनेक विचारों ने उसके परंपरागत स्वरूप को भी परिवर्तित किया है। परन्तु सबसे बड़ी विशेषता यह है कि विभिन्न परिवर्तनकारी भावनाओं एवं प्रणालियों के रहते हुए भी हिन्दी काव्यधारा का मूल स्वरूप विनष्ट नहीं हुआ है। उसकी प्रगति में व्याघात उत्पन्न नहीं हुआ है, न उसका प्रभाव ही अवरुद्ध हुआ, अपितु वह उत्तरोत्तर विकसित होती चली जा रही है और आज साहित्य में भी उसने अपना उचित स्थान बना लिया है।[13]

उपर्युक्त वर्णित आधुनिक युग की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों ने गुप्तजी के काव्य को एक नयी दिशा दी। जिस प्रकार पाषाणों के बीच से सरिता की धारा उछल-कूद करती हुई अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होती है, वह मार्ग के व्यवधानों की ओर आकृष्ट नहीं होती, वरन् तीव्र वेग से प्रवाहित होती रहती है, ठीक उसी प्रकार गुप्तजी के काव्य की धारा उत्तरोत्तर विकसित होते हुए पूर्णता को प्राप्त हुई।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने गुप्तजी में विद्यमान 'कालानुसरण की क्षमता'[14] की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। जहां सुप्रसिद्ध कृति 'साकेत' ने गुप्तजी को महाकवि बनाया है, वहीं 'यशोधरा' ने करुणा का वरदान प्रदान किया और 'भारत-भारती' ने डनहें राष्ट्रकवि होने का गौरव प्रदान किया। स्वतंत्रता संग्राम और गांधीजी के असहयोग आंदोलन में गुप्तजी की अनेक रचनायें जनता का कंठहार बन गईं।

'कवि ने युगों-युगों से चली आ रही पराधीनता की भावना को विनष्ट करके स्वतंत्रता, समानता, राष्ट्रीय अखण्डता एवं सांप्रदायिक सौहार्द्र की स्थापना की। आपकी रचनाओं को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्तजी को भारत को स्वर्णिम अतीत बड़ा भला लगता था। उन्हें दस देश की सभ्यता और संस्कृति से बड़ा प्यार था। वे इस धरती की माटी को मस्तक का चन्दन मानते थे, क्योंकि इसी रज में उनके राम और कृष्ण शिशु बनकर रज-रंजित हुए थे। इतना संयत और प्रबल राष्ट्रीयता का स्वर किसी और कवि के काव्य में मुखरित नहीं हुआ है। यही कारण है कि जनता-जनार्दन ने उन्हें राष्ट्रकवि के रूप में प्रतिष्ठित किया।'

(प्रख्यात साहित्यकार एवं युगकवि डॉ. रामस्वरूप खरे का मै.श. गुप्त शताब्दी समारोह पर दिये गये भाषण का अंश, दिनांक- 3 अगस्त 1986)

गुप्तजी का जीवन वृत्त :- श्री मैथिली शरण गुप्त का जन्म जिला झांसी के अन्तर्गत आने वाले गांव चिरगांव में सेठ रामचरण गुप्त के घर संवत् 1943 विक्रमी (तदनुसार 3 अगस्त

1986) में हुआ था। आपका राशि नाम 'कनकने' मिथिलाधिपनंदिनी शरण था। आपका यह नाम आपके परिवार के सखी भाव की भक्ति का परिचायक था। क्योंकि आपके पिता सेठ रामचरण सखी भाव के उपासक थे, और सीता उनकी इष्टदेवी थीं। इस बड़े नाम का घरेलू संक्षिप्तीकरण 'मिथिलाशरण' हुआ। किन्तु मुख-सुख के कारण मैथिलीशरण हो गया।[15]

आपके पिता बड़े ही ईश्वर भक्त थे, वे रामचरित मानस, विनय पत्रिका, आध्यात्म रामायण का प्रतिदिन पाठ करते थे। साथ ही वे हिन्दी साहित्य और संगीत में भी विशेष रुचि रखते थे। आपने 'रहस्य रामायण' की रचना भी की थी। किन्तु वे इसके सिर्फ तीन काण्ड ही लिख पाये। उनके पिता की भक्ति और कविता प्रेम के कारण गुप्तजी के यहां प्राय: पंडितों, भक्तों और कविता प्रेमियों का आना-जान बराबर लगा रहता था। ऐसे ही पुनीत वातावरण में मैथिलीशरणजी का बचपन व्यतीत हुआ।[16] गुप्तजी के पिताश्री एक कुशल एवं चतुर व्यक्ति थे। घर में लेन-देन का कार्य होता था और उन दिनों कनकने परिवार की चिरगांव एवं झांसी में अच्छी धूम थी। सेठजी को चार पुत्ररत्न प्राप्त हुए- श्री महाराम दास, श्री रामकिशोर, श्रीमैथिलीशरण, श्री सियाराम शरण तथा श्री चारुशीला शरण। इनमें से श्री मैथिलीशरण एवं श्री सियारामशरण तो साहित्यप्रेम में लीन होकर हिन्दी की सेवा में लीन हो गए और शेष भाई व्यापार संभालने लगे। गुप्तजी ने तीन विवाह किये, पहला विवाह नौ वर्ष की अवस्था में दतिया में हुआ। प्रथम पत्नी के काल-कवलित हो जाने के कारण चौदह वर्ष की अवस्था में दूसरा विवाह भी दतिया में हुआ, किन्तु दुर्भाग्यवश वह पत्नी भी संतानरहित ईश्वर को प्यारी हो गई। तब संतान मोह और परिजनों के आग्रह के कारण गुप्तजी ने 31 वर्ष की अवस्था में माधौगढ़ जिला जालौन में तीसरा विवाह किया। आपको संतान प्राप्त तो हुई पर ईश्वरीय प्रकोप के कारण आप संतान सुख प्राप्त नहीं कर सके।

गुप्तजी बचपन में बड़े खिलाड़ी थे। उन्हें गुल्ली-डंडा, पतंग उड़ाने तथा कबूतर पालने का बड़ा शौक था। बाजार में कहीं आल्हा की किताब मिल जाती तो वे बड़े चाव से उसे गाकर पढ़ा करते। आपकी आरम्भिक शिक्षा चिरगांव की छोटी सी प्राइमरी पाठशाला में हुई। मुंशी अजमेरी भी वहीं पढ़ा करते थे और आपसे तीन कक्षा आगे थे। मुंशी अजमेरी थे तो मुसलमान, पर वे पूर्णरूपेण वैष्णव भक्त थे। संस्कृत के श्लोक उन्हें कंठस्थ थे। उनसे गुप्तजी की बचपन से ही बड़ी घनिष्ठता थी। गुप्तजी अंग्रेजी पढ़ने झांसी गए पर खिलाड़ी मनोवृत्ति होने के कारण उनका मन पढ़ाई में नहीं लगा। इसी कारण आप वापस चिरगांव

आ गए, और घर पर ही हिन्दी, उर्दू, बंगला, संस्कृत आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया।[17]

गुप्तजी के घर प्राय: साहित्य, संगीत और भक्ति की त्रिवेणी बहती रहती थी। इसमें बड़े-बड़े विद्वान, कलाकार, कवि भाग लेते रहते थे। पिताजी स्वयं एक अच्छे कवि थे। अतएव कविता के प्रति उनकी रुचि भी बाल्यबेला से ही जागृत हो गई थी। एक बार स्वयं ने (गुप्तजी ने) अपने पिता की काव्य पुस्तिका में एक छप्पय भी बनाकर लिख दिया था।[18] जो रामचन्द्रजी की स्तुति में लिख गया था तथा उसमें कवि की रामभक्ति और काव्यकला के बीज विद्यमान थे।

जिस समय आपके पिताजी ने अपनी किसी नवीन काव्यरचना लिखने के लिए उस काव्य पुस्तिका को खोला और उसमें एक नये ढंग के अक्षरों में लिखे उस छप्पय को देखा तो उस समय उनकी प्रसन्नता का पारावार न रहा, उन्होंने उन टेढ़े-मेढ़े अक्षरों को पहचान लिया और गुप्तजी को पास बुलाकर एक उच्चकोटि का कवि बनने का आशीर्वाद दिया। गुप्तजी की बाल प्रतिभा के बीज उसी दिन से अंकुरित और पल्लवित होने लगे।[19]

मुंशी अजमेरी जैसे विद्वान और सुकवि से उन्हें अपनी कविता सजाने और संवारने का अवसर प्राप्त होता रहा। सिर्फ इतना ही नहीं, पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदीजी जो उस समय सीपरी बाजार झांसी में रहते थे, उनसे भी गुप्तीजी का परिचय हुआ और बाद में वे ही गुप्तजी के प्रेरणास्त्रोत भी बने। पहले वे ब्रजभाषा में 'रसिकेश' और 'रसिकेन्द्र' उपनाम से कविता लिखते थे, किन्तु द्विवेदीजी के आग्रह पर उन्होंने ब्रजभाषा और सभी उपनामों से विदा ली। केवल अनुवाद कार्य में आपने 'मथुरा' उपनाम अवश्य रखा। पहले आपकी रचनाएं वैश्योपकारक नामक एक जातीय पत्र में प्रकाशित होती थीं। वह पत्र कलकत्ता के श्रीराम प्रेस से श्री रामलालजी नेमाणी निकाला करते थे।

1906 से आपकी सभी रचनायें 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगीं। सर्वप्रथम आपकी 'हेमन्त' नामक कविता का संशोधन करके द्विवेदीजी ने उसे 'सरस्वती' में प्रकाशित किया। उसे संशोधन को देखकर गुप्तजी पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे द्विवेदीजी को ही अपना गुरु मानने लगे और उनके प्रत्येक संशोधन पर सुझाव , भूलसुधार आदि को ब्रह्मवाक्य मानकर सहर्ष स्वीकार करने लगे।[20] आज गुप्तजी का जो काव्य इतना प्रौढ़, परिष्कृत और परिपक्व दिखाई देता है, वह सब द्विवेदीजी की ही अपूर्व देन है।[21]

16 अप्रैल 1941 में गुप्तजी अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री रामकिशोरजी के साथ भारत रक्षा विधान के अन्तर्गत बन्दी बना लिये गये। उस समय तक वे निरे साहित्यिक ही थे और राजनीति से सर्वथा दूर ही रहते थे। बन्दी बनाकर पहले आपको झांसी जेल में रखा गया, फिर प्रांत

में अन्य राजनैतिक कैदियों के पास आगरा केन्द्रीय कारागार भेज दिया गया। यहां आकर वे पूरे गांधी भक्त बन गए, और बराबर आठ-आठ घंटे तक चरखा कातते रहते थे। केन्द्रीय कारागार आगरा में आपकी आचार्य नरेन्द्रदेव, पं. श्रीदत्त पालीवाल, डॉ. केसकर, महेन्द्रजी आदि कई राजनैतिक कार्यकर्ताओं से भेंट हुई। वहीं महेन्द्रजी के प्रयत्नों से श्रावण शुक्ल तीज के दिन आपकी जयन्ती मनाई गई, और आपको एक अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किया गया। इसे आचार्य नरेन्द्रदेव ने पढ़कर सुनाया। यद्यपि गुप्तजी सात मास ही कारागार में रहे, किन्तु वहां के वातावरण ने उनके जीवन को राजनीतिक सुवास से सुवासित कर दिया।[22]

अचानक, हिन्दी जगत में एक विलक्षण परिवर्तन आया। गुप्तजी की रचनाओं में पाठक रुचि रखने लगे। गुप्तजी की से रचनायें सर्वत्र बड़े चाव से पढ़ी जाती थीं। सन् 1936 ई. में पचास वर्ष की अवस्था में भी आनन्दोल्लास के साथ आपकी स्वर्ण जयंती मनाई गई। तत्पश्चात एक और स्वर्णजयंती बड़े धूमधाम से मनाई गई।[23]

साकेत महाकाव्य पर गुप्तजी ने 1837 में मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त किया और साथ ही कराची अधिवेशन में आपको साहित्य वाचस्पति की उपाधि से विभूषित किया गया। इसके पश्चात वाराणसी के अन्तर्गत इकसठ वर्ष की अवस्था में हीरक जयंती मनाई गई।

सन् 1948 में आगरा विश्वविद्यालय ने आपको 'डी.लिट्.' की उपाधि देकर सम्मानित किया। 1952 ई. में आप राज्यसभा के सम्मानित सदस्य निर्वाचित किये गये। इस उपलक्ष्य में पहले प्रयास के अन्तर्गत लगभग 250 साहित्यकारों ने आपका बड़ी धूमधाम से अभिनन्दन किया। तदनन्तर बम्बई में लगभग 21 साहित्यिक संस्थाओं ने मिलकर बड़े उत्साह के साथ आपका अभिनन्दन किया।[24]

गुप्तजी का बचपन बड़ी शानो-शौकत से बीता। आप उस समय कानों में मोतियों के झुमके पहना करते थे, और मोतियों की लड़ियां उनका बोझ संभालने के लिए लगीं थीं। पैरों, हाथों में पाहचियों तथा गले में चांदी के कड़े, गोप गुंजा कंठा(सोने के) समय-समय पर धारण किया करते थे। अंगरखा शरीर पर धारण किया करते थे, पगड़ी सिर पर बंधवाते थे। साथ में कभी-कभी सुंघना भी धारण करते थे।[25] किन्तु 1942 में आपकी वेशभूषा में बदलाव आ गया और पगड़ी का स्थान टोपी ने ले लिया। गया जाने पर आप हमेशा के लिए दाढ़ी-मूंछ भी दान कर आये। फिर आप सादा-सरल जीवन व्यतीत करने लगे।

वे भारतीय भेषभूषा के अनन्य पुजारी थे। सदैव धोती-कुर्ता और गांधी टोपी पहनना पसन्द करते थे। आप छोटे कद के बड़े भावुक, उदार और मृदुभाषी थे। आप कृत्रिमता और आडम्बर से कोसों दूर रहते थे और अपने मित्रों, अतिथियों और अभ्यागतों का स्वागत

किया करते थे। चिरगांव में तो गांधीजी, नेहरूजी, आचार्य विनोबा भावे, डॉ. केसकर, गणेशशंकर विद्यार्थी आदि कितने ही महानुभाव आपका आतिथ्य-सत्कार प्राप्त कर चुके थे। [26]

आपका हृदय बच्चों के सदृश सरल और सुकुमार है। आपके मुखमंडल पर हमेशा चिन्तकों सदृश गंभीरता विराजी रहती थी और साथ ही निश्छल मुस्कान सुशोभित रहती थी। वे मानवता के अनन्य पुजारी थे। वे सरस्वती के साथ-साथ लक्ष्मी के भी आराधक थे, पर उनकी साधना की मंजिल सरस्वती की कृपादृष्टि प्राप्त करना थी। तभी उन्होंने साकेत लिखने के पूर्व सरस्वती की वंदना बड़े ही सुन्दर ढंग से की है:-

अयि दयामवि देवि, सुख दे सार दे,
इधर भी निज वरद पाणि पसार दे।
दास की यह देहतंत्री सार दे
रोम-रोम में नयी झंकार दे।
चल अयोध्या के लिए सज साज तू
माँ मुझे कृत-कृत्य कर दे आज तू।

धार्मिक दृष्टि से आप सियाराम के अनन्य भक्त श्री वैष्णव हैं। दशरथ पुत्र श्रीराम आपके इष्टदेव थे। परन्तु गोस्वामी तुलसीदास की भांति कृष्ण, गौतम आदि अन्य अवतारों के प्रति भी श्रद्धा रखते हैं। यद्यपि आप राम को ही परात्पर ब्रह्म मानते हुए उन्हें सर्वपालक, अखिल सृष्टि के उत्पादक, पालक एवं संहारक मानते हैं, तथापि अन्य देवी-देवताओं एवं अन्य धर्मों के प्रति भी आपके हृदय में अटूट प्रेम एवं श्रद्धा विद्यमान है। [28]

गुप्तजी गांधीजी के अनुयायी थे और उन्हीं के विचारों से सत्य, अहिंसा व न्याय के समर्थक थे। शोषण व अत्याचार के प्रति आवाज उठाने में जरा भी संकोच नहीं करते थे । न्याय के लिये आप पूर्णतः-न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है। [29] के समर्थक थे। आप कृषकों व श्रमिक जातियों के नेता थे। आप सदैव विश्व बंधुत्व व विश्व कल्याण की मंगल कामना करते थे।

वैसे तो गुप्तजी प्राचीन सभ्यता व संस्कृति के पुजारी हैं, और वे भारत के अतीत पर गर्व किया करते थे, परन्तु फिर भी वे परिवर्तित युग के अच्छे व सुन्दर विचारों का आदर व सम्मान किया करते थे। इसी कारण आपने मार्क्सवादी पार्टी की प्रशंसा की है। साहित्य के क्षेत्र में आपने इस कालानुसरण की प्रवृत्ति को अपनाया है। इसलिए आप युग के प्रत्येक नवीन मोड़ पर अपनी नवीन वीणा को काव्य का रूप देकर युग के साथ कदम मिलाकर

चलते आ रहे हैं। इसी कारण आप भारत के राष्ट्रकवि बने।[30]

साहित्य की इस अनवरत साधना के कारण आपके व्यक्तित्व में तीन विशेषतायें स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं-रामभक्ति, साहित्य प्रेम और राष्ट्रीयता। रामभक्ति के कारण आपमें साहित्य प्रेम का संचार हुआ और साहित्य प्रेम ने आपके विचारों को राष्ट्रीयता से परिपूर्ण किया।[31] गुप्तजी का व्यक्तित्व स्वाभिमान, आत्मसम्मान तथा मानवता के उज्ज्वल भविष्य की आशा से परिपूर्ण है। आपने अपे प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व से सम्पूर्ण हिन्दी जगत को श्रेष्ठता की चोटी तक पहुंचाया है।

गुप्तजी के संबंध में **डॉ. रामस्वरूप त्रिपाठी** ने लिखा है:-

'उठाा उर्मिला के चरित्र को कथा कैकेई की सुलझाई।
गौरव मिला राष्ट्रकवि का था, कीर्ति देशभर में है छाई।
महावीर का था प्रसाद, कैकेई काव्य किरण है।
यशोधरा, साकेत प्रणेता कवि मैथिली शरण है।'

इस तरह भारत-भारती का यह अमर गायक वाणी के मंदिर में अपनी भावमय काव्य सुमनांजलि अर्पित कर संवत् 2021 (तदनुसार 12 दिसंबर 1964 ई.) इहलोक से विदा हो गया।[33]

गुप्तजी का कृतित्व :- गुप्तजी ने दीर्घावधि तक हिन्दी के काव्य क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का प्रकाशन किया। आपकी प्रतिभा साहित्य जगत की विभिन्न गतिविधियों का पर्यवेक्षण कर चुकी है, और द्विवेदी युग, छायावादी युग, प्रतिवादी युग तथा प्रयोगवादी युग तक दीर्घयुग परंपरा में अपना कौशल अविराम गति से दिखाती चली आ रही है। आइये उनकी काव्य रचनाओं पर एक विहंगम दृष्टि डालते चलें:-

यद्यपि गुप्तजी की कई रचनायें सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी थीं, तथापि 1909 में सर्वप्रथम प्रबंधकाव्य के रूप में 'रंग में भंग' नामक मौलिक रचना प्रकाशित हुई। प्रबंध काव्य के रूप में गुप्तजी का यह प्रथम सफल प्रयास था। इसकी कथावस्तु ऐतिहासिक है, जिसमें बूंदी और चित्तोड़ के नरेशों की विवाह संबंधी एक घटना को लेकर करुणा से परिपूर्ण चित्र अंकित किये गये हैं। यह एक दुखन्त काव्य है, जिसमें इतिवृत्तात्मक तथा उपदेशात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। बीच-बीच में राजपूतों की आन व मर्यादा का वर्णन बड़ी कुशलता एवं सजीवता से किया गया है।[34] इस काव्य की भाष विशुद्ध हिन्दी व खड़ी बोली है। यह परिमार्जित तथा परिष्कृत नहीं है, किन्तु कवि का प्रथम प्रयास होने के कारण यह काव्य प्रबंध काव्य में पर्याप्त महत्व रखता है।

सन् 1910 में गुप्तजी की प्रसिद्ध रचना 'जयद्रथ वध' प्रकाशित हुई। गुप्तजी की यह रचना लोकप्रियता की दृष्टि से बड़ा महत्व रखती है, क्योंकि हिन्दी जगत में 'भारत-भारती' के बाद सबसे अधिक लोकप्रियता इसी को प्राप्त हुई। इसमें महाभारत की घटना को काव्य रूप दिया गया है, और सोलह वर्षीय अभिमन्यु की करुणगाथा को मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त किया गया है। इसमें अभिमन्यु का, अर्जुन का क्रोध, उत्तरा का विलाप आदि ऐसे प्रसंग हैं जिन्हें पढ़-सुनकर रोमांच आ जाता है।[35] भाषा में पर्याप्त ओज व प्रवाह है और सभी भाव अत्यन्त सरलता एवं सुबोधता के साथ सरस शैली में व्यक्त हुए हैं।

1912 में 'पद्य-प्रबंध' का प्रकाशन हुआ। इसमें फुटकर कवितायें संग्रहीत हुईं हैं।[36] यह गुप्तजी की प्रारम्भिक रचना होने के कारण अधिक उत्कृष्ट तो नहीं है फिर भी कवि की विकासशील प्रतिभा स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

सन् 1913 ई. में गुप्तजी का तृतीय प्रबंधकाव्य 'शकुन्तला' प्रकाशित हुआ। इस काव्य पर कवि कालिदास का अधिक प्रभाव है क्योंकि इसमें गुप्तजी ने 'अभिज्ञान शाकुंतल' नाटक की कथावस्तु को ही प्रबंध काव्य के रूप में प्रस्तुत किया है। कुछ स्थलों पर तो कालिदास के श्लोकों का अनुवाद मात्र दिखाई देता है।[37] इस प्रकार गुप्तजी के इस प्रबंध काव्य में मौलिक उद्भावना के दर्शन नहीं होते। हाँ इतना अवश्य है कि यहाँ पर कवि खड़ी बोली के सभी प्रकार के भावों को अनुकूल रूप में ढालने का सुन्दर प्रयत्न किया है।

इसके दो वर्ष उपरान्त 1916 में गुप्तजी का किसान नामक प्रबंध काव्य प्रकाशित हुआ। इसमें कवि ने सरलता के साथ तत्कालीन कृषकों की दयनीय दशा का अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया है, तथा तत्कालीन सरकार की भी यत्किंचित सराहना की है, जो कवि के मौलिक विचारों के सर्वथा विपरीत है। फिर भी कृषक जीवन की दयनीयता, असहायावस्था एवं राजकीय अधिकारियों की अनाचारता[38] के चित्रणों के कारण इस रचना का ऐतिहासिक महत्व है। शिल्प की दृष्टि से यह रचना उत्कृष्ट नहीं है।

'वैतालिक काव्य' 1916 में प्रकाशित हुआ। यह काव्य रचना भी भारत-भारती के सदृश ही है। इस काव्य में कवि के मानवतावादी दृष्टिकोण की छाप स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इस रचना के द्वारा कवि ने अपने विचार जन-जन तक पहुंचाने का प्रयास किया है।[39] चित्रात्मक भाषा के साथ प्रकृति चित्रण अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है।

1916 में ही 'पत्रावली' नामक मुक्तक काव्य प्रकाशित हुआ। यह एक पद्यात्मक पत्रों का संग्रह है। वैसे तो गुप्तजी के पत्रों में उतनी तीव्रता और आत्मीयता नहीं है, जितनी प्रायः निजी पत्रों में देखी जाती है, फिर भी हिन्दी काव्य क्षेत्र में इसका अपना स्थान है।[40] इसका

कलापक्ष उतना सशक्त नहीं है जितनी भाषा प्रवाहपूर्ण है।

गुप्तजी ने वैसे तो कई प्रबंधात्मक मुक्तक काव्यों की रचना की है, किन्तु उनका सर्वप्रथम प्रबंधात्मक मुक्तक काव्य सन् 1922 में 'भारत-भारती' प्रकाशित हुआ। गुप्तजी की यह रचना सर्वाधिक लोकप्रिय है। गुप्तजी की यह पहली रचना होने के कारण हिन्दी प्रेमियों का ध्यान इस ओर अधिक आकृष्ट हुआ।[31] इसका आधार मुद्दसे हाली है, इसे गुप्तजी ने स्वयं भूमिका में स्वीकार है। इसमें भारतवासियों के भूत, वर्तमान विषमावस्था के साथ-साथ मौलिकता तथा नवीनता का सफल चित्रण किया गया है। इसके गीत अत्यन्त मार्मिक तथा प्रभावशाली हैं।[42]

यह काव्य इतिवृत्तात्मक शैली का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। इसकी भाषा ओज और दीप्ति से परिपूर्ण है। यह रचना कवि के गौरवशाली अतीत को चित्रित करती है। इसमें कवि के राष्ट्रीय विचार विद्यमान हैं।[43]

तदनन्तर 1925 में गुप्तजी की सुप्रसिद्ध रचना पंचवटी प्रकाशित हुई। यह प्रबंधात्मक रचना खण्डकाव्य के रूप में है। इसमें रामायण की प्रसिद्ध कथा में से सूर्पनखा प्रसंग लिया गया है। यह काव्य गुप्तजी की प्रारम्भिक रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसमें कथा-योजना,वस्तु-वर्णन, चरित्र-चित्रण में मौलिकता, रसात्मकता एवं रोचकता के दर्शन होते हैं। इस काव्य में नारी सुलभ भावों के साथ-साथ एक युवक और युवती के आकस्मिक मिलन पर जो-जो मनोभाव युवा ह्रदय में उठा करते हैं तथा संयमी व्यक्ति उस समय किस चतुराई से काम लिया करते हैं, इन सभी बातों का अत्यन्त मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। सीता, लक्ष्मण, सूर्पनखा के संवाद अत्यन्त प्रभावशाली हैं।[44] भाषा लालित्ययुक्त विशुद्ध है। गुप्तजी का दूसरा मुक्तक काव्य 'स्वदेश संगीत' भी 1925 में प्रकाशित हुआ। यह कविताओं का संग्रह है। इन कविताओं का राष्ट्रीय और राजनैतिक विचारों के कारण ऐतिहासिक महत्व है।[45] शिल्प की दृष्टि से इसमें नीरस और सरस दोनों प्रकार की कविताएं सग्रहीत हैं।

'वन-वैभव' नामक प्रबंध काव्य 1926 में प्रकाशित हुआ। इसकी आधार-वस्तु भी महाभारत है। इसमें पाण्डवों की दयनीय स्थिति तथा दुर्योधन की विलासप्रियता को चित्रित किया गया है। करुण रस और वीर रस से परिपूरित यह काव्य अत्यन्त मार्मिक है। इस प्रबंध काव्य में कवि ने राज्य विस्तार को महत्व न देकर धर्म के लिए अपने युद्ध संबंधी विचार व्यक्त किये हैं।[46] अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह काव्य सुन्दर, आकर्षक व मनभावन है।

इसी वर्ष 1926 में ही गुप्तजी का एक और प्रबंध काव्य 'वन-संहार' प्रकाशित हुआ।

इसकी कथा-वस्तु महाभारत की प्रसिद्ध कथा 'भीम द्वारा वकासुर का वध' पर आधारित है। गुप्तजी ने अपने इस काव्य में एक माँ की ममता, उसके हृदय की विह्वलता, उदारता, कर्तव्यपरायणता तथा राज्य प्रणाली संबंधी अपने आदर्श विचार व्यक्त किये हैं।[47] इस प्रबंध काव्य में गुप्तजी का युद्ध-वर्णन कौशल सर्वथा प्रशंसनीय है। यह काव्य भाषा, संवाद, ओज और मधुरता से परिपूर्ण है।

1927 ई. में 'शक्ति' प्रबंध काव्य प्रकाशित हुआ। यह प्रबंध काव्य एक पौराणि आख्यान देव-दानव संग्राम पर आधारित है। शक्ति एकता में ही होती है, इसी उद्देश्य को लेकर गुप्तजी ने इस प्रबंध काव्य की रचना की है। यह वीररस तथा युद्धवर्णन से युक्त है।[48]

गुप्तजी का अगला प्रबंध काव्य 'सैरंध्री' भी 1927 में ही प्रकाशित हुआ। इसका भी आधार महाभारत की एक कथा 'पाण्डवों का अज्ञातवास' है। गुप्तजी ने इस प्रबंधकाव्य में दुष्टों और पापियों को सचेत किया है। इसके संवाद सुन्दर, सुगठित और चित्ताकर्षक हैं।[49] इसमें रसात्मकता और सजीवता पूर्णतया विद्यमान है। यद्यपि इसकी भाषा सौन्दर्यमयी और प्रवाहयुक्त है, फिर भी यह अपने उद्देश्य को पूरा करती है। सम्पूर्ण रचना इतिवृत्तात्मक है।

1927 में कवि का एक और काव्य 'हिन्दू' प्रकाशित हुआ, जो प्रबंधात्मक मुक्त काव्य की श्रेणी में आता है। गुप्तजी ने इस रचना में वर्तमान जीवन की विषमता और कटुता के साथ-साथ मंगलमय भविष्य की कल्पना की है। इसमें गांधीजी के विचारों का पर्याप्त प्रभाव है तथा इसमें कवि की हिन्दुत्व संबंधी अत्यन्त उदार भावना का नियोजन हुआ है। कवि के विचार से जैन, बौद्ध, सिख, अन्त्यज एवं अस्पृश्य जातियाँ सभी हिन्दू हैं। सबको एकसूत्र में बांधकर सामाजिक विशृंखलता को समाप्त कर देना चाहिये। इसमें कवि की अत्यन्त उदार जातीय भावना, सुस्पष्ट राजनैतिक विचार, उदार राष्ट्रीय दृष्टिकोण आदि के दर्शन होते हैं। यह रचना भी विभिन्न कविताओं का संग्रहमात्र होने के कारण मुक्तक काव्य है, खण्ड काव्य नहीं। 'भारत-भारती' की अपेक्षा इसमें सरसता कम है, कहीं-कहीं नीरस तुकबंदियां इसकी कला में व्याघात उत्पन्न कर देती हैं। वैसे इसमें कवि ने उद्बोधन पद्धति को अपनाया है।[50] रचना शैली अत्यन्त मधुर है।

1928 में 'विकट-भट' नामक प्रबंध काव्य प्रकाशित हुआ। इस प्रबंधकाव्य में जोधपुर के राजा के एक सरदार देवीसिंह और उनके पुत्र सवाईसिंह की वीरगाथा है। यहाँ राजपूत सरदारों की मर्यादा, प्राण-त्याग, आन-बान का सुन्दर चित्रण हुआ है।[51] 1928 में 'गुरुकुल' नामक काव्य रचना प्रकाशित हुई। इसमें गुरु नानक, अमरदास, अर्जुनसिंह आदि सिख गुरुओं की जीवन गाथायें अंकित की गईं हैं। साथ ही साथ इसमें बन्दा बैरागी तथा सिख

संप्रदाय के अन्य वीरों की गाथायें भी अंकित हैं।

'झंकार' का प्रकाशन 1929 में हुआ। इसमें गुप्तजी ने नवीन शैली को अपनाया है। इसमें अधिकांश कविताएं आध्यात्मिक हैं। इन कविताओं में हालावाद का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, किन्तु अंतरात्मा में नहीं, बाह्य रूप में। इसमें संगीतात्मकता, तुकबंदी का पूर्णतया अभाव है।[52] अतः कहा जा सकता है कि इसमें नीरसता व्याप्त है।

गुप्तजी का सुप्रसिद्ध प्रबंधकाव्य 'साकेत' 1931 में प्रकाशित हुआ। इसकी मूलकथा उर्मिला सं संबंधित है किन्तु इसमें प्राधान्य रामकथा का ही है। इस महाकाव्य में 12 सर्ग हैं। मंगलाचरण तथा सरस्वतीवंदना से इस महाकाव्य का प्रारम्भ हुआ है। उन्होंने श्रीगणेशजी की वंदना अनोखे तथा सरल शब्दों में की है:-

जयति कुमार-अभियोग गिरा गौरी प्रति
सगण गिरीश जिसे सुन मुस्काते हैं-
देखो अम्ब, हेरम्ब मानस के तीर पर,
तुन्दिल शरीर एक ऊधम मचाते हैं।
गोद भरे मोदक धरे हैं सविनोद उन्हें,
सूँड़ से उठाकर मुझे देने को दिखाते हैं,
देते नहीं कन्दुक सा ऊपर उछालते हैं,
ऊपर ही झेलकर, खेलकर खाते हैं।[53]

गुप्तजी की माँ सरस्वती पर कितनी आस्था है, यह निम्न पंक्तियों से प्रकट होता है:-

'अयि दयामयि देवि, सुख दे सार दे,
इधर भी निज वरद पाणि पसार दे।
दास की यह देह तंत्री सार दे,
रोम-रोम में नयी झंकार दे।
बैठ आ मानस-मराल सनाथ हो,
भारवाही कंठकेकी साथ हो।'[54]

गुप्तजी ने साकेत में दशरथ पुत्रों का जन्म, अयोध्या नगरी का वैभव तथा साज-सज्जा, उर्मिला-लक्ष्मण का हास-परिहास, राम का राज्याभिषेक तथा रानी कैकई का कोपभवन में जाकर अपने दो पुराने वरदानों का मांगना तथा राम का लक्ष्मण और सीता के साथ वनगमन, फिर सीताहरण तथा लक्ष्मण शक्ति का बड़ा ही सुन्दर, सजीव और हृदयग्राही चित्रण किया है। चौदह वर्ष उपरांत जहाँ राम अयोध्या से मिलते हैं, वहीं विरहिणी उर्मिला चौदह वर्षों के कष्ट से मुक्त होकर अपने प्रिय लक्ष्मण से मिलती है, उसका वर्णन गुप्तजी

ने किन शब्दों में किया है, आइये देखें:-

कांप रही थी देहलता उसकी रह-रहकर
टपक रहे थे अश्रु कपोलों पर बह-बहकर। [55]

1932 में गुप्तजी की अगली कृति 'यशोधरा' प्रकाशित हुई। इस कृति में गुप्तजी ने गौतम और उनकी पत्नी यशोधरा की जीवन-झांकी प्रस्तुत की है। इसका चित्रण बड़े ही सजीव, कुशल और मार्मिक ढंग से किया है। [56] गुप्तजी की इस कृति पर छायावाद का प्रभाव अधिक, सर्वथा नवीन तथा भावानुकूल है। [57] इसमें गद्य-पद्य तथा नाटकों का मणिकांचन योग हुआ है।

1936 में गुप्तजी का एक अनूठा प्रबंधकाव्य 'द्वापर' प्रकाशित हुआ। इसमें श्रीमद्‌भागवत् के प्रमुख भक्त पात्रों की जीवनझांकी अंकित है। इसमें सोलह सर्ग हैं। बाह्य दृष्टि से यह मुक्तक काव्य है। इसमें घटनाओं की एकसूत्रता नहीं वरन् कृष्ण चरित्र की एकसूत्रता है। 'यह गीतात्मक प्रबंध काव्य है, क्योंकि इसमें नाटकीय तत्वों का प्राधान्य है तथा यह दूसरों को लक्ष्य करके कहे गये हैं। इसी कारण कुछ विद्वान इसे एक दृश्यों युक्त प्रबंध जैसा महाकाव्य कहना अधिक उचित समझते हैं।' [58]

1936 में गुप्तजी का 'सिद्धराज' प्रबंधकाव्य प्रकाशित हुआ। यह एक ऐतिहासिक काव्य रचना है। इसमें राज्यों की घटनाओं का संकलन है। राजपूत सरदारों की आन-बान की झांकी को प्रस्तुत करने में गुप्तजी को पर्याप्त सफलता मिली है। [59] यह एक अतुकान्त शैली का वीररस प्रधान काव्य है। इसकी भाषा सुन्दर और प्रांजल है। इस रचना में गुप्तजी के देशभक्ति तथा राष्ट्रीयता के विचार पूर्णतया मुखरित हुए हैं।

'मंगलघट' नाम से एक कविता संग्रह सन् 1937 में प्रकाशित हुआ। इसमें विभिन्न विषमताओं से संबंधित कविताएं संग्रहीत हैं। इसमें विभिन्न रसों का चित्रण, नैतिकता, उपदेशात्मकता पर्याप्त मात्रा में है। [60]

सरस्वती मासिक पत्रिका में शोकगीत फरवरी 1939 में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा मुंशी अजमेरी के निधन पर प्रकाशित हुए। गुप्तजी ने अपने पुत्रों का स्वर्गवास होने पर भी कई शोक-गीत लिखे जो अप्रकाशित 'सांत्वना' में संग्रहीत हैं। [61] तत्पश्चात 1940 में एक और प्रबंध काव्य प्रकाशित हुआ 'नहुष'। इसका आधार महाभारत है। इस काव्य में चन्द्रवंशीय राजा नहुष का वर्णन है। यह पौराणिक कथा पर आधारित एक उपदेशपूर्ण काव्य है। इसमें गुप्तजी ने मानव के अन्दर छिपी आसुरी प्रवृत्ति का भी बड़ा ही सजीव वर्णन किया है।

सन् 1942 में 'अर्जन और विसर्जन' का प्रकाशन हुआ। यह छोटे-छोटे दो खण्ड काव्यों का संग्रह है। इसका एक खण्ड अतुकान्त काव्य है तथा दूसरा तुकान्त। इसका कथानक रोचक तथा सरल है, शैली इतिवृत्तात्मक है।[62] इसकी भाषा अत्यन्त प्रौढ़ एवं प्रांजल है। इन दोनों खण्डकाव्यों में अन्य प्रबंध काव्यों की अपेक्षा सरसता तथा उत्कृष्टता का अभाव है।

तदुपरांत 1942 में ही 'कुणालगीत' प्रकाशित हुआ। इसकी कथावस्तु 'सम्राट अशोक' पर आधारित है। इस काव्य रचना में एकसूत्र में बंधे हुए तथा मुक्तक शैली में लिपिबद्ध 95 गीत हैं। यह करुण रस प्रधान काव्य है। कोमलकान्त पदावली से युक्त इसकी भाषा खड़ी बोली है, किन्तु संगीतात्मकता का अभाव खटकता है।[63] शिल्प की दृष्टि से यह काव्य उत्कृष्ट नहीं है, पर सरसता एवं रोचकता पर्याप्त विद्यमान है।

1942 में गुप्तजी के दो काव्यों का संग्रह 'काबा और कर्बला' प्रकाशित हुआ। यह 'अर्जन और विसर्जन' की भांति है। यह खण्ड काव्य इस्लाम धर्म से संबंधित है। गुप्तजी का उद्देश्य इस रचना के द्वारा हिन्दू-मुस्लिम एकता को पुष्ट करना है।[64]

गुप्तजी का 'विश्व वेदना' नामक प्रबंधात्मक मुक्तक काव्य सन् 1942 में प्रकाशित हुआ। गुप्तजी ने 'यथा नाम तथा गुण' वाली कहावत को इस रचना में चरितार्थ किया। क्योंकि इसमें गुप्तजी ने विश्व की वेदना से व्यथित अपनी कराह को सपनों में अंकित किया है। गुप्तजी ने जगतव्यापी युद्धों से उत्पन्न होने वाली भयंकर व्यथा का सुंदर चित्रण किया है।[65] यह करुण रस युक्त काव्य है। इसकी भाषा एवं रचना शैली सरल एवं सुबोध है।

1946 में गुप्तजी का 'अजित' प्रबंध काव्य प्रकाशित हुआ। इसे पढ़ने पर कवि की आत्मकथा का धोखा होता है, पर यह आत्मकथा नहीं है। यह वर्णनात्मक काव्य है। इसकी शैली इतिवृत्तात्मक है, गुप्तजी ने इस काव्यरचना में जीवन के कई चित्र उतारे हैं।[66] भाषा उर्दू-अंग्रेजी मिश्रित है।

1950 में तीन छोटे-छोटे काव्य प्रकाशित हुए- प्रदक्षिणा, पृथ्वी-पुत्र तथा हिडिम्बा।

'प्रदक्षिणा' में कवि ने पंचवटी और साकेत के कुछ छन्दों का संग्रह कर संक्षिप्त रूप में रामकथा का वर्णन किया है। इसकी भाषा प्रौढ़ है, छन्द उत्कृष्ट बन पड़े हैं। संवाद सरल तथा लघु हैं। नाटकीयता का गुण इसमें पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है।[67]

'पृथ्वीपुत्र' में दिवोदास, जयनी तथा पृथ्वीपुत्र के संवादों को संग्रहीत कर प्रकाशित किया गया है। यह संवाद पहले पृथक-पृथक प्रकाशित हो चुके हैं- जैसे देवदास प्रतीक पत्रिका में, जयनी सुधा पत्रिका में तथा पृथ्वीपुत्र नया समाज पत्रिका में प्रकाशित हो चुका था। यह तीनों संवाद अत्यन्त प्रौढ़ एवं परिमार्जित हैं।[69] कवि के राष्ट्रीय विचारों का

सफलतापूर्वक निर्वहन हुआ है। अभिव्यक्ति पक्ष की दृष्टि से यह ग्रंथ अत्यन्त रमणीय एवं सुन्दर है।

'हिडिम्बा' प्रबंध काव्य भी महाभारत की प्रसिद्ध कथा पर आधारित है। इसमें भीम और हिडिम्बा की कथा को सुंदर रूप दिया है। गुप्तजी ने इस काव्य में पुरुष के प्रति नारी के सहज आकर्षण का बड़ा सजीव चित्र खींचा है।[70] साथ ही साथ हिडिम्बा के सहज सौन्दर्य की झांकी खींची है।[71] यह एक कलापूर्ण काव्य है। इसमें रौद्र, वीर तथा करुणा का चित्रण किया गया है। भाषा प्रौढ़ एवं प्रांजल है। हास्य रस से पूर्ण संवाद भी इसमें चित्रित किये गये हैं। सामूहिक रूप से गुप्तजी की यह उत्कृष्ट कृति है।

'अंजलि और अर्ध्य' नामक प्रबंधात्मक मुक्तक रचना का प्रकाशन 1950 में हुआ। इसमें गांधीजी के निधन पर कवि ने शोक से व्यथित होकर इस काव्य की रचना की। यह काव्य करुण रस प्रधान है। गांधीजी के उदार व्यक्तित्व को कवि ने बड़ी सशक्त भाषा से बांधा है। यह काव्य रोचक तथा प्रभावशाली है। गुप्तजी ने अपने आंसुओं से बापू को श्रंद्धांजलि अर्पित की है।[72] 'जय भारत' नामक प्रबंध काव्य सन् 1952 में प्रकाशित हुआ। यह एक वृहत् काव्य है। इसमें 47 सर्ग हैं। इस प्रबंधकाव्य का आधार भी महाभारत है। इसमें नहुष से लेकर पांडवों के स्वर्गारोहण तक की कथाएं संग्रहीत हैं। वैसे तो यह एक वीर रस प्रधान काव्य है, पर कहीं-कहीं अन्य रसों को भी देखा जा सकता है।[73] भाषा शुद्ध खड़ी बोली है। गुप्तजी की यह कृति अत्यन्त विशाल है पर अधिक उत्कृष्ट नहीं। इसका युद्ध भाग कुछ उत्कृष्ट है। इस भाग में गुप्तजी की युद्ध संबंधी मौलिक उद्भावनाएं परिलक्षित होती हैं।

1956 में राजा-प्रजा नामक काव्य रचना का प्रकाशन हुआ। यह दो खण्डों में विभक्त है। गुप्तजी ने इस रचना में विश्व-बंधुत्व अपनाने की प्रेरणा दी है।[74] इसकी रचना शैली प्रौढ़ तथा प्रांजल है। यह एक चिन्तन प्रधान काव्य है तथा राजनैतिक विचारों से ओत-प्रोत है। गुप्तजी का प्रबंध काव्य 'विष्णुप्रिया' 1957 में प्रकाशित हुआ। गुप्तजी का यह अंतिम प्रबंध काव्य है। इस ग्रंथ में भक्त प्रवर चैतन्य महाप्रभु की पत्नी विष्णुप्रिया की जीवनझांकी अंकित है।

उर्मिला, यशोधरा की भांति विष्णुप्रिया भी हिन्दी काव्य के लिए उपेक्षित नारी थी, अत: गुप्तजी ने विष्णुप्रिया के जीवन को काव्य रूप देने की चेष्टा की है। इस प्रकार चैतन्य महाप्रभु की पतिव्रता पत्नी के उपेक्षित जीवन को पाठकों के सम्मुख रखने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। वर्णन कौशल की दृष्टि से यह सजीव रचना है तथा भाषा सशक्त है।

वैसे तो गुप्तजी मूलत: कवि हैं, और कवि में भी प्रधानत: वे प्रबंधकार हैं, फिर भी अन्य

साहित्यकारों की भांति आपने भी साहित्य की नवीन विधाओं के प्रयोग किये हैं। इसी कारण आपने कुछ नाटक भी लिखे हैं। गुप्तजी के अभी तक केवल तीन नाटक ही प्रकाशित हुए हैं:-

तिलोत्तमा सन् 1915, चन्द्रहास 1916 तथा अनघ 1925 में प्रकाशित हुआ। प्रथम दोनों नाटक पौराणिक आख्याान पर आधारित हैं। गुप्तजी की यह आरंभिक कृति होने के कारण इनकी कथावस्तु में अपूर्णता, अन्तर्बाह्य संघर्ष-शून्यता सी दिखाई देती है। कथाएं अत्यन्त सरल तथा ऋजु-पथ गामिनी हैं। पात्रों के चरित्र-चित्रण में एकरसता एवं स्थिरता खटकती है। कथोपकथन अत्यन्त निर्जीव व नीरस हैं, उनमें न गति है न रोचकता। पौराणि रूपकों के अनुरूप लेखक वातावरण की सृष्टि भी नहीं कर पाया है।

'अनघ' भी एक नाट्य रूपक है। इसकी कथा कवि-कल्पित और समसामयिक है। इसमें भी जटिलता एवं प्रासंगिक कथाओं के अभाव के कारण चपलता और आकर्षण नहीं है। चरित्र चित्रण पहले दोनों नाटकों की अपेक्षा है। सरसता और गतिशीलता का यहाँ भी सर्वत्र अभाव है। संवादों में भी माधुर्य दिखाई नहीं देता। वातावरण निर्माण में भी गुप्तजी असफल रहे हैं तथा रचना शैली भी अधिक सशक्त एवं सजीव नहीं है। [75]

इस प्रकार गुप्तजी की प्रतिभा का पूर्ण विकास प्रबंधधकाव्यों में हुआ है, नाटकों में नहीं। युगधधर्म का निर्वाह करने हेतु ही उन्होंने नाटकों की रचना की।

मौलिक रचनाओं के अतिरिक्त गुप्तजी की कुछ अनूदित रचनाएं भी प्रकाशित हुईं हैं। सन् 1911 में 'हिन्दी की वर्तमान दशा'[76] लेख में जब यह संकेत किया गया कि हिन्दी में पलासी का युद्ध, वक-संहार, मेघनाद वध, यशवंतराव महाकाव्य जैसी रचनायें निर्मित होनी चाहिये तो गुप्तजी ने इसे अपने गुरु का आदेश माना और इस आदेश की पूर्ति के फलस्वरूप ही उन्होंने 'पलासी का युद्ध'(1920) 'मेघनाद वध'(1927) 'विरहिणी वज्रांगना'(1927) आदि का बंगला से हिन्दी में अनुवाद किया। संस्कृति के महाकवि भास द्वारा प्रणीत 'स्वप्न वासवदत्तम्' (1929)नाटक का हिन्दी में अनुवाद किया। उमर खैय्याम की रुबाइयों का अनुवाद किया जो 1931 में प्रकाशित हुआ।

एक अंग्रेजी कविता का हिन्दी अनुवाद भी उन्होंने सफलतापूर्वक किया। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्हें अंग्रेजी और फारसी का ज्ञान नहीं था फिर भी उसके मूल भावों को सुनकर, समझकर हिन्दी में रूपान्तरित करने में सफल सिद्ध हुए हैं, उदाहरण दृष्टव्य है:-

'अवेक ! फार मार्निंग इन द बाउल ऑफ नाइट

हैज फंल्ग द स्टोन दैट्स पुट्स द स्टार टू फ्लाइट
एण्ड लो ! द हन्टर ऑफ द ईस्ट हैज कॉट
द सुलतान्स टर्ट इन ए नोज ऑफ लाइट।'[77]

हिन्दी अनुवादः-

'उठो उषा के रात्रि पात्र में अरुण उपल निक्षेप किया,
श्रृक्ष-पक्षियों को जिसने है नभ क्षेत्र से उड़ा दिया।
और पूर्व के जालिक रवि ने वह ऊंचा शाही मीनार,
देखि ! कोटि-कोटि किरणों के फंदे में है फंसा लिया।'

इस प्रकार गुप्तजी ने अपने उक्त अनूदित ग्रंथों में मूल ग्रंथ के भावों-विचारों को अक्षुण्ण बनाये रखने का सफल तथा सुंदर प्रयास किया है। साथ ही उक्त अनुवादों को पद्य रूप में प्रस्तुत कर अनुवाद शिल्प के कौशल को सफलता के साथ व्यक्त किया है। उन्होंने अनुवाद कला को विलक्षणता प्रदान की, अतः गुप्तजी का अनुवाद कार्य सर्वथा स्तुत्य है।

गुप्तजी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारत की श्रेष्ठता, उसकी सामाजिक तथा सांस्कृतिक उन्नति में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके काव्य पर विचार करने के उपरांत यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने समाज के सभी अंगों पर कुछ न कुछ अवश्य लिखा है। प्राचीन सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति की पृष्ठभूमि पर कवि आधुनिक सामाजिक अधोगति का चित्र खींचते हैं और इस प्रकार जनता को सामाजिक सुधार के लिए प्रोत्साहित करते हैं। वे सभी धर्मों पर उदार भाव रखते हैं और गांधीजी के प्रभाव से प्रभावित होकर समाजसेवा कर देश की उन्नति में अपना योगदान देते हैं।

उन्होंने नारियों पर होने वाले अत्याचार के विरुद्ध भी आवाज उठाई है। उन्होंने सती प्रथा को रोका तथा नारी शिक्षा को प्रोत्साहन दिया। 'गुप्तजी ने नारी शिक्षा को अपने साहित्य में सशक्त शब्दों अभिव्यक्त किया। उन्होंने नारियों के प्रति होने वाले अत्याचारों की ओर विशेष ध्यान दिया। तत्कालीन समाज में नारी का जो अपमान व तिरस्कार हो रहा था, उसके प्रति अनुदारता की जो भावना दिखाई दे रही थी, उसके लिए कवि ने अपनी रचनाओं में क्रोध अथवा आक्रोश प्रकट किया।'[78]

इस प्रकार गुप्तजी ने अपने संपूर्ण काव्य में प्राचीन और अर्वाचीन के साथ-साथ सामाजिक स्थितियों एवं परिस्थितियों का मणिकांचन योग प्रस्तुत किया है।

संदर्भ सूची

1. इण्डियाज कल्चर थ्रू द एजज, एम.एल.विद्यार्थी, पृष्ठ- 353
2. इण्डियाज कल्चर थ्रू द एजज, एम.एल.विद्यार्थी, पृष्ठ- 353
3. हिन्दुस्तान की कहानी, पं. जवाहरलाल नेहरू, पृष्ठ- 373
4. गांधीवाद-समाजवाद, मोहनदास करमचंद गांधी
5. साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृष्ठ- 36
6. भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास, गुरुमुख निहालसिंह, पृष्ठ- 104
7. भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास, गुरुमुख निहालसिंह, पृष्ठ- 136
8. कांग्रेस का इतिहास, पट्टाभिसीतारमैया, पृष्ठ- 64-65
9. इतिहास प्रवेश, जयचन्द्र विद्यालंकार,पृष्ठ- 643
10. भारतवर्ष का नवीन इतिहास, डॉ. ईश्वरीप्रसाद,पृष्ठ- 294
11. हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, डॉ. राजशेखर प्रसाद चतुर्वेदी, पृष्ठ- 111
12. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल, पृष्ठ- 324
13. आधुनिक काव्यधारा, रामनरेश त्रिपाठी, पृष्ठ- 117
14. तार-सप्तक (भूमिका से अवतरित), अज्ञेय
15. साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृष्ठ- 46
16. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ- 616
17. अभिनन्दन ग्रंथ, गुप्तजी , पृष्ठ- 16
18. साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृष्ठ- 1
19. साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृष्ठ- 2
20. लखण आदि सब भ्रात और श्रुतकीरत आदिक।
    सुमिर राम सह सीय चित्त अति आनन्ददायक॥
    जिनकी कृपा कटाक्ष रहत शेखर संहारक।
    कमलासन जग रचत और नारायण पालक॥ - गुप्तजी द्वारा लिखित छप्पय
21. साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृष्ठ- 3
22. साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृष्ठ- 3
23. भज अरुण पात सम अति सुगम चरण सीय रघुपति भगत।
    हिय कनकलता अतिहरष लख जन्म सफल हरि हर करत॥ - अभिनन्दन ग्रंथ, गुप्तजी, पृष्ठ- 29
24. अभिनन्दन ग्रंथ, मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ- 262
25. साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृष्ठ- 4
26. अभिनन्दन ग्रंथ, मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ- 15
27. अभिनन्दन ग्रंथ, मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ- 15
28. साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृष्ठ- 5
29. साकेत, प्रथम सर्ग , मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ-11
30. साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृष्ठ- 6
31. साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृष्ठ- 6
32. साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृष्ठ- 7
33. साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृष्ठ- 3
34. हिन्दी नवनीत, डॉ. रामस्वरूप त्रिपाठी , पृष्ठ 232
35. हिन्दी नवनीत, डॉ. रामस्वरूप त्रिपाठी , पृष्ठ 232

36. दुर्ग बूंदी का स्वयं तोड़े बिना जो अब कहीं,
ग्रहण अन्नोदक करूं, तो प्रकृत क्षत्रीय नहीं। - रंग में भंग, पृष्ठ- 22
37. मैं वहीं हूँ जिसको किया था तिथि विहित अर्द्धांगिनी।
भूलो न मुझको नाथ , मैं हूँ अनुचरी चिर संगिनी॥
तब मूर्ति क्षत-विक्षत वहीं, निश्चेष्ट अब भू पर पड़ी।
बैठी तथा मैं देखती हूँ हाय री छाती कड़ी॥ - जयद्रथ वध, पृष्ठ- 25
38. क्रीड़ा पूर्वक वन्यजीव , फिरते कैसे सभी ओर,
देखो मेघ समान देख तुमको वे नाचते मोर हैं। - पद्य प्रबंध, पृष्ठ- 12
39. विचिन्तयन्ती यमननस्य मानसा,
तपो निधिवेत्सि न यामु पस्थितम्।
स्मरित्याति त्वां न स बोधितो पिसन्,
कथा प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव ॥(4/1) शकुन्तला, पृष्ठ- 17
40. यम के दूत निरपराधों पर कब प्रहार करते हैं,
यहाँ निष्ठुरों के हाथों हम बिना मौत मरते हैं। - किसान, फिजी, पृष्ठ- 36
41. यह सोने की मूर्ति उषा, नव स्फूर्ति की पूर्ति उषा।
जगा रही है जगो-जगो, कर्तव्यों में लगो-लगो॥ - वैतालिक, पृष्ठ- 9
42. कैसे पत्र लिखूं मैं कुलवती क्षत्रिय बालिका,
होती है रुधिर प्रदान करके जो शील संचालिका।
साक्षी है सुर, किन्तु जो पर नहीं मैं जानती हूँ तुम्हें,
हा लज्जा ! कबसे अभिन्न अपना मैं मानती हूँ तुम्हें। - पत्रावली , पृष्ठ- 28
43. हिन्दी साहित्य का इतिहास , आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ- 613
44. करते रहोगे पिष्ट पोषण और कब तक कविवरो,
कच कुच कटाक्षों पर अहो ! अब तो न जीते जी मरो।
आनन्ददात्री शिक्षिका है सिद्ध कविता कामिनी,
है जन्म से ही वह यहाँ श्रीराम की अनुगामिनी।
पर अब तुम्हारे हाथ से वह कामिनी ही रह गई,
ज्योत्स्ना गई, देखो अंधेरी यामिनी ही रह गई। - भारत-भारती, पृष्ठ-170-171
45. भू-लोक का गौरव , प्रकृति का पुण्यलीला स्थल कहाँ ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है ?
उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन ? भारतवर्ष है। - भारत-भारती, पृष्ठ- 4
46. सूर्पनखा- समझो मुझे अतिथि ही अपना , कुछ आतिथ्य मिलेगा क्या ?
लक्ष्मण- तुम अनुपम ऐश्वर्यवती हो, एक अकिंचन जन हूँ मैं।
क्या आतिथ्य करूं लज्जित हूँ, वनवासी, निर्धन हूँ मैं ? - पंचवटी, पृष्ठ- 19
47. यह न समझो तुम कि हम डर जायेंगे,
प्राप्य अपना छोड़कर, घर जायेंगे।
चित्त में है ठान हमने है लिया,
मोद पाकर मान पर मर जायेंगे। - स्वदेश संगीत, पृष्ठ-115
48. राज्य नहीं धर्म के अर्थ, उठेंगे तब ये शस्त्र समर्थ। - वन वैभव , पृष्ठ-18
49. राजा-प्रजा का पात्र है, वह लोकप्रतिनिधि मात्र है,
यदि वह हमारा प्रजा-पालक नहीं तो त्याज्य है।

हम दूसरा राजा चुनें, तो सब वह अपनी सुने,
कारण प्रजा का ही असल में राज्य है। - वक-संहार, पृष्ठ-22

50. गरजी अट्टहास कर अम्बा, देव ठट्ट के ठट्ट
दहल उठे जल,थल,अम्बर पल घटज्ञ विकट संघट्ट। - शक्ति, पृष्ठ-12

51. हे अनुपम आनन्दमूर्ति कृशतनु सुकुमारी,
बलिहारी यह रुचिर रूप की राशि तुम्हारी।
क्या तुम हो इस योग्य, रहा जो बन कर चेरी,
सुध-बुध जाती रही, देखकर तुमको मेरी।

52. चेरी की ही बातें मान, हम चेरे हो गए निदान।
उदासीनता में ही लीन, हम औरों के हुए अधीन। - हिन्दू, पृष्ठ-292

53. सोने के कटोरे में अफीम घुलने लगी।
देवीसिंह को भी वह ठीकरे में मिट्टी के,
भेजी गई, देखते ही मानी सरदार से,
अब सहा न गया, रहा न गया मौन भी॥ -विकट भट, पृष्ठ- 6

54. फिर याद पड़े टटके-टटके, हास गोप वधू दधि के मटके,
उनका कहना-हटके! हटके! उलझी सुलझी लटक-लटके। - झंकार, पृष्ठ-47

55. साकेत, मंगलाचरण

56. साकेत, सरस्वती वंदना

57. साकेत

58. चेरी भी वह आज कहां जो कल थी रानी,
दानी प्रभु ने दिया उसे क्यों मन यह मानी।
अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आंचल में है दूध और आंखों में पानी। - यशोधरा, पृष्ठ- 48

59. तप मेरे मोहन का उद्धव धूल उड़ाता आया,
हाय विभूति रमाने का भी मैने योग न पाया।
मेरी ताप और उनका तप, जलती है हा ! जठर मही,
मैंने ही क्या सहा, सभी ने मेरी बाधा व्यथा सही। यशोधरा , पृष्ठ- 48

60. कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, डॉ. उमाकांत, पृष्ठ- 246

61. मेरी यह जन्मभूमि जननी जगत में,
मेरे प्राण रहते रहेगी महारानी की,
किंकरी न होगी किसी और नरपाल की।
पंचतत्व मेरी पुण्यभूमि के हैं मुझमें,
कहला रहे हैं यही मुझसे प्रकार के-
हम परतंत्र नहीं सर्वथा स्वतंत्र हैं। - सिद्धराज, पृष्ठ- 43

62. करके विधिवाद न खेद करो,
निज लक्ष्य निरंतर भेद करो।
बनता बस उद्मय ही विधि है,
मिलता सुख का गिधि है। - मंगलघट, पृष्ठ- 286

63. मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, डॉ. उमाकांत, पृष्ठ- 212

64. नष्ट करो वह निजधन जिस पर पड़ी पापियों की दुदृष्टि।
आज न हो अन्यथा उसी से होगी, कल बंधन की सृष्टि॥ - अर्जन और विसर्जन,पृष्ठ- 28

65. मेरे शुद्ध समीर रे !
लेकर तुझमें श्वास आज भी स्वस्थ कुणाल शरीर रे।
मेरा देश स्वच्छ सुरभित है,शुचि रुचि शाली रंग रहित है,
उसमें निज परहित समुचित है, साक्षी तू ध्रुव धीर रे। - कुणालगीत, पृष्ठ - 118
66. धर्म है सो धर्म है, जो पंथ है सो पंथ है,
एक ने सबके लिए भेजे यहाँ निज ग्रंथ हैं।
बस उसी के यंत्र से चलते हमारे यंत्र हैं,
स्तमत के संबंध में हम सब यहाँ स्वतंत्र हैं। -काबा और कर्बला, पृष्ठ - 41
67. आप की उन्नति से अभिशप्त नहीं है, कौन कहाँ संतप्त ?
रहे कोई कितना ही तृप्त, हो सकेगा यों क्योंकर वृत्त ? - विश्व वेदना ,पृष्ठ - 45
68. कढ़ी भात के साथ दाल-रोटी वह घर की,
वह बघार की सौंध, कौंधती टिकुली।
वह कांसे का थाल, फूल के भरे कटोरे,
आगे धरते हुए हाथ वे गोरे-गोरे। -अजित, पृष्ठ -112
69. प्रभु बोले -यह इष्ट मुझे था मेरे भरत अधीर न हो,
बाधाओं के आगे तनकर विजयी बनकर वीर रहो। - प्रदक्षिणा,पृष्ठ - 29
70. पृथ्वीपुत्र, मैथिलीशरण गुप्त, भूमिका भाग से उद्धत
71. जैनी- बंधु कौन बाधा है तुम्हारे उस कर्म में ?
मार्क्स- कारागार ! निष्कासन ! काँप उठी तुम में ? - पृथ्वीपुत्र, पृष्ठ - 34
72. प्रिय रुचि हेतु चुना मैंने यह चोला।
नर वर मेरा अहा ! भारी भला भोला है।। - हिडिम्बा , पृष्ठ -16
73. उत्थित वसुंधरा से रत्नों की शलाका थी,
किंवा अवतीर्ण हुई मूर्तिमयी शाका थी।
अंग मानो फूल कच मृंग भरी शाटिका,
ओस मुसकान बन होंठों पर आई थी।
सुरभि तरंग वायु मंडल में छाई थी।
74. बापू आज सभी आशाएं विश्व शून्य कर जाती हैं,
अंजलि और अर्ध्य देने को आँखें भर-भर आती हैं। - अंजलि और अर्ध्य, पृष्ठ -19
75. कर्ण था अटूट सार धारा का प्रपात-सा,
सामने जो आया वही डूबा वहाँ उसमें।
आशा थी किसी के बचने की रही किसको ?
सीमा छोड़ मानो महासिंधु वहाँ उमड़ा। - जयभारत, पृष्ठ - 382-383
76. किन्तु हमारा लक्ष्य एक अम्बर भू-सागर।
एक नगर सा बने विश्व हम उसके नागर॥ - राजा-प्रजा, पृष्ठ -46
77. साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृष्ठ - 45
78. सरस्वती मासिक पत्रिका, सन् 1911, पृष्ठ - 45
79. पालग्रेब्ज गोल्डन ट्रेजरी, पृष्ठ - 342
80. मैथिली शरण गुप्त के पात्रों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन, डॉ. राम कुलकर्णी, पृष्ठ - 60

द्वितीय परिच्छेद

सौन्दर्य बोध

द्वितीय परिच्छेद

सौन्दर्य बोध

सौन्दर्य बोध :- सौन्दर्य एक है किन्तु उसके रूप अनेक। अपनी इन्हीं विषमताओं के कारण उसकी अभिव्यक्तियों का अंत नहीं है। सौन्दर्य की छटा निराली है। वह अपने में पूर्ण परिपाक और पुष्ट अभिव्यक्ति लिए हुए है। सौन्दर्य में मन के तारों को छूने और उसे रोमांचित करने का सामर्थ्य है। वह व्यक्तित्व को बंधनों से मुक्त उस आनन्दमय स्थान पर प्रतिष्ठित कर देता है जहाँ सौन्दर्य का सार है, शान्ति का निवास है।

सौन्दर्य एक सरल और बहुत प्राचीन अनुभूति है। वह मानव मन में गहराई तक पीर पैदा करता है। सुन्दर निष्प्रभाव व निष्प्राण नहीं हो सकता। सुन्दर की इस धार्मिकता का उद्‌गम सामान्यत: मानव व्यथा में होता है। [1]

हरद्वारी लाल शर्मा ने सुन्दरता को बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है- 'सौन्दर्य सरल है। उसमें मानव प्रेम की तरंग उमंगे हैं, और यह पेम अपनी तप: पूत ऊष्मा के कारण उदात्त की पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित है। पूर्ण समर्पण, निश्छल और निस्वार्थ, बिना किसी मांग, बिना शर्त, यह इस प्रेम को रस परिपाक की स्थिति में पहुंचा देता है।'[2]

इस तरह सौन्दर्य में भाव की सच्चाई होती है। इसमें झूठ, मिलावट या बनावट का दूर-दूर तक कोई स्थान नहीं होता। वह एकदम सहज और सरल होता है। आज सौन्दर्य शब्द हमारे लिए नया नहीं है। प्राचीन काल में इसे 'रस' के रूप में जाना जाता था और काव्य व कला के माध्यम से सौन्दर्य की अभिव्यंजना कर रसज्ञ उसकी अनुभूति से तादात्म्य स्थापित कर उसका आस्वादन करते रहे हैं। सुन्दर शब्द का मूल ऋग्वेद में निहित है। ऋग्वेद में अनेक बार 'सू+नर'[3] तथा 'सू+नारी'[4] (सुष्ठु नर, सुष्ठु नारी) का प्रयोग हुआ है।

शब्दकोषों में सुन्दर के जितने भी पर्यायवाची शब्द मिलते हैं, उन सबका अर्थ बाह्य रूप विन्यास से ही जोड़ा जाता है। समय के साथ-साथ उन शब्दों के अर्थों का विस्तार हुआ। अंग्रेजी के ब्यूटी तथा ब्यूटीफुल का अर्थ भी उसी से सम्बद्ध था जो इन्द्रियों को, विशेष रूप से आँखों तथा कानों को आनन्द प्रदान करने वाली हो। [5]

तत्पश्चात मूल्यों में परिवर्तन होने के कारण सौन्दर्य का विकास हुआ। 'साथ ही ब्यूटी का अर्थ-विस्तार भी हो गया। रूसी शब्द सोटा (सुन्दर) के अर्थ में इसी प्रकार

का क्रांतिकारी परिवर्तन देखकर **तालस्ताय** चौंक उठे थे, रूसी भाषा में क्रेसोटा का अर्थ है वह वस्तु जो नेत्ररंजक हो। यद्यपि आजकल 'भद्दा काम' और सुन्दर संगीत का प्रकार करने लगे हैं तथापि यह अच्छा प्रयोग नहीं है।'[6]

यद्यपि भारत में 'सौन्दर्य के माध्यम से सौन्दर्यानुभूति पर विचार नहीं किया गया है, किन्तु शास्त्रीय बंधनों से मुक्त 'रस' हमारी आत्मा के सौन्दर्यबोध का दूसरा नाम है। आचार्य शुक्ल ने रस दशा तथा सौन्दर्यात्मक मन:स्थिति को एक ही माना है।'[7]

रस सिद्धान्त के प्रबल समर्थक मूर्धन्य आलोचक **डॉ. नगेन्द्र** की चिन्तन दशा भी यही रही है–'वास्तव में अर्थ में रस सौन्दर्य का ही पर्याय है।'[8]

पाश्चात्य विद्वानों ने कला–सौन्दर्य को प्रकृति की अनुकृति माना है। किन्तु भारत ने इसे प्रकृति की अनुकृति समझकर त्यागा नहीं है। इस तथ्य का प्रमाण भारत के देवमंदिरों में कलाओं का आदर है–'अन्तर के सैन्दर्य का प्रतिपादन किया गया है, बाहरी सौन्दर्य को अन्तर की छाया मात्र माना गया है।'[9] कलाओं के संबंध में महादेवी वर्मा ने कितना सुन्दर विचार व्यक्त किया है, जिससे मालूम होता है कि भारतीय प्रतिमा कला की देवी को कितने उच्च आसन पर अभिषिक्त करने को लालायित रही है। 'काव्य और कलाएं जिस सौन्दर्य का सहारा लेते हैं, वह जीवन की पूर्णतम अभिव्यक्ति पर आश्रित है, केवल बाह्य रूपरेखा पर नहीं। प्रकृति का अनन्त वैभव, प्राणी जगत की अनेकात्मकता, गतिशील अन्तर्गत की रहस्यमयी विविधता, सब कुछ इनके सौन्दर्य कोष के अन्दर है।'[10]

इस तरह भारतीय मनीषा सौन्दर्य को रस से अभिन्न मानती है। सौन्दर्य एक गुण विशेष है जो ह्रदय को आकर्षित करता है। यह सौन्दर्य जीवन और जगत के हर कोण में व्याप्त है। जहाँ–कहीं भी मन को मुग्ध कर लेने वाला आकर्षण है, वहीं सौन्दर्य है। सौन्दर्य एक विलक्षण वस्तु है, इसका आनन्द भी विलक्षण है। इसे न तो प्रमाणित किया जा सकता है और न ही प्रत्यक्ष अनुभूत। इसी कारण से सौन्दर्य विचारकों – कवियों के बीच एक ढोलक की भाँति झूलता रहा है।

'सौन्दर्य प्रत्येक कला का प्राणतत्व है। कला में सौन्दर्य की सन्निविष्टि होती है। सौन्दर्य ही कला को व्यापक और संवेद्य बनाता है। सौन्दर्य चेतना के प्रति समस्त कवि कलाकार जागरूक रहे हैं, किन्तु कवियों में परिवेश , अनुभव एवं रुचि के कारण सौन्दर्य विषयक धारणाओं में वैमत्य रहा है। वस्तुतः इसी विषमता में कवियों की सौन्दर्य चेतना विशिष्टता प्राप्त करती रही है। इसका संकेत कवियों की रचनाओं में स्थल–स्थल पर प्राप्त

होता है।'[11] कवियों में सौन्दर्य के प्रति विशेष अनुराग होता है और यह अनुराग उनकी रचनाओं में भी विद्यमान रहता है। कहीं-कहीं पर तो वे अपनी सौन्दर्य संबंधी मान्यताओं को भी प्रस्तुत कर देते हैं।

'सौन्दर्य चेतना में वस्तु तत्व तथा आत्मतत्व का सुन्दर सम्मेल है। सौन्दर्य मात्र काल्पनिक या 'आवाड मानसगोचरम्' की अकथ अनुभूति को व्यक्त करने का साधन नहीं है, वरन् मनुष्य के जीवन में आयी हुई भीषणतम अनुभूतियों को व्यक्त करने का उपादान है।'[12]

'कविता का सौन्दर्य उसकी सार्वभौम भावना में निहित है। कविता की रचनाशीलता को भले ही देश-काल की सीमा में बांधा हो, परन्तु उसके अन्तस में सर्वदेशीय लोकमंगल तथा सार्वभौमिकता का उज्ज्वल भाव अवश्य है। तभी कविता और कला विश्वभर की कही जायेगी। कला के सौन्दर्य के संदर्भ में निरालाजी का मत है-कला का सौन्दर्य उसकी पूर्णता में है अपूर्णता में नहीं।'[13]

वैदिक साहित्य में सौन्दर्य बोध :- सौन्दर्य की व्युत्पत्ति का मूल वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। डॉ. नगेन्द्र ने अपने विद्वतापूर्ण लेख 'वेदों में रस' के माध्यम से दर्शाया है कि 'रस' शब्द का प्रयोग यद्यपि वेदों में पदार्थों के रस तथा वैदिक सोम के लिए होता रहा है किन्तु अनेक स्थलों पर आध्यात्मिक सौन्दर्य के साक्षात्कार के रूप में भी रस शब्द का प्रयोग किया गया है।'इस प्रकार रस का अर्थ अन्न रस या पदार्थ रस से बृह्म रस की यात्रा वैदिक साहित्य की परिधि में ही पूरी कर लेता है।'[14] डॉ. फतेहसिंह और महर्षि अरविन्द जैसे मूर्धन्य तथा मर्मज्ञ विचारकों ने वैदिक साहित्य के अवगाहन के पश्चात यह सिद्ध किया है कि 'स्वाति', 'सोम','मधु' तथा 'रस' सौन्दर्य के ही पर्याय हैं। वेदों को विश्व साहित्य की प्राचीनतम संपदा माना जाता है।'वेदों' में निहित सौन्दर्य के आधार पर ईश्वर अनन्त का स्मरण करके ऋषि-मुनियों तथा तपस्वियों का हृदय रूपी उल्लास घट धीरे-धीरे छलक रहा है- हे सौन्दर्य के श्रोत ! तुम से निकल कर सौन्दर्य तथा सौभाग्य की धरायें वैसे ही फैलती हैं जैसे वृक्ष की शाखायें।[15]

कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे एक शांत जल में कंकड़ फेंकने से पानी की तरंगें चारों ओर फैल जाती हैं, वैसे ही सौन्दर्य अपने दिव्य रूप की घटा चारों ओर बिखेरता जाता है। इस प्रकार वैदिक युग का मानव अपने समस्त सौन्दर्य का आधार उस अनन्त को मान प्रकृति के अलौकिक सौन्दर्य से अभिभूत हो उठता था। प्रकृति के अनेक रूप उस युग के मानव को अमूर्त बृह्म के परिचायक प्रतीत होते थे। इसी कारण से वह अग्नि, वायु और

सूर्य को देवता समझकर उसकी अर्चना व वंदना करता था।

अधिकांशत:'स्वस्ति' का अर्थ कल्याण ही समझा जाता है, किन्तु वेदों में सु+अस्ति= स्वस्ति को सुन्दरता के अर्थों में प्रयोग किया जाता रहा है। वैदिक कालीन मानव के लिए जो कुछ भी सुन्दर था वह निश्चय ही कल्याणकारी था। इस कारण बाद में स्वस्ति का अर्थ कल्याण से लगाया जाने लगा। महर्षि अरविन्द ने इस संबंध में कितनी उचित टिप्पणी दी है-'सौन्दर्यानुभूति अथवा आनन्दानुभूति की यह चरमसीमा स्वस्ति कही जाती है।' [16]

वेदो में सोम शब्द का प्रयोग मुख्यत: एक मादक द्रव्य के रूप में होता रहा है, किन्तु महर्षि अरविन्द ने अपने ग्रंथ 'सायणभाष्य' में अनेक उदाहरण देकर यह सिद्ध कर दिया है कि कितने ही श्लोकों में 'सोम' का अर्थ आध्यात्मिक सौन्दर्यानुभूति अथवा आनन्दानुभूति ही करना पड़ेगा। सोम के संदर्भ में कहा गया है कि -यह मुखों में नहीं हृदयों में पिया जाता है। [17] तथा 'यह कहीं बाहर से नहीं आता अपितु हमारे भीतर ही निहित है।' [18] अरविन्द ने सोम को आनन्द की मदिरा माना है क्योंकि इससे हमारे मन व शरीर का क्षय नहीं बल्कि रक्षण होता है-'यह पवित्र सोमरस तन या मन को क्षुब्ध नहीं करता अपितु शरीर व मन का रक्षण करता है।' [19]

ऋग्वेद में 'सोम' के स्वरूप के विषय में कहा गया है कि वह अपने प्रकाश से अंधकार को मारता है। 'सोम' को 'ज्योतिस्वरूप' कह कर उसके सौन्दर्यात्मक प्रभाव की ओर संकेत किया है। [20] साम की ज्योति अजस्र बताते समय भी ऋषि की वाणी उसे प्रकाश का उत्स अर्थात सौन्दर्यानुभूति का स्रोत घोषित करना चाहती है। 'श्री' शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में अनेक अर्थों में हुआ है, किन्तु मुख्यत: 'श्री' का गृहण सौन्दर्य के लिए ही होता था। ब्राह्मण ग्रंथों में सोम से पहले 'श्री' का प्रयोग इसी ओर संकेत करता है कि सोम सौन्दर्यानुभूति का प्रतीक है। [21]

'सोम' के साथ 'रस' का प्रयोग सोम का स्वाद रूप जानने के लिए ही होता था, किन्तु उपनिषदों में बृह्म तथा आत्मा को रसमय घोषित कर उसके अभूतपूर्व सौन्दर्य की ओर संकेत किया है- 'वह(आत्मा) रसरूप है, इसलिए जहाँ कहीं रस मिलता है, उसे पाकर वह आनन्दमग्न हो जाता है।' [22] इसलिए आत्मा की ओर रस अथवा सौन्दर्य का आकर्षण सहज है। सौन्दर्य का भोग आत्मा को आनन्द प्रदान करने वाला होता है, सोम क्योंकि सौन्दर्य और रस का ही पर्याय है इसलिए सोमरस का पान बृह्मानन्द की उपलब्धि के लिए किया जाता था। 'सोम' व्याकरण में संज्ञा शब्द है। इसका विशेषण रूप 'सौम्य' सोमलता के अर्थ को व्यंजित करता है, किन्तु सोम का अधिक प्रचलित अर्थ सुन्दर है। [23] यह

आध्यात्मिक सौन्दर्य का द्योतक है। वैदिक साहित्य में 'मधु' शब्द का प्रयोग भी 'रस' के समान ही मादक पदार्थ के रूप में ही लिया गया है। अनेक श्लोकों में मधु के द्वारा सौन्दर्यानुभूति का परिचय दिया गया है। वाणी (काव्यात्मक प्रतिभा) में सौन्दर्य के चरम रूप की उपलब्धि है, और उसी वाणी को वेदों में मधु कहा गया है– 'हे पृथ्वी माता मुझे वाणी रूपी मधु का वरदान दो।'[24] मधु से निसृत 'मधुर' तथा 'मधुमय' शब्दों का प्रयोग परवर्ती संस्कृत और हिन्दी साहित्य में होता रहा है।[25]

वैष्णव भक्ति साधना में 'मधुमती भूमिका' का जो विवेचन प्राप्त होता है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि मधुमती भूमिका सौन्दर्यानुभूति की एक चरम स्थिति है। इस संबंध में डॉ. आनन्दप्रसाद दीक्षित का कथन है कि– 'मधुमती भूमिका चित्त की यह अवस्था साधना के द्वारा लाई जा सकती है और न्यूनाधिक मात्रा में सात्विक शील सज्जनों में स्वभावतः विद्यमान रहती है।'[26] अर्थात आध्यात्मिक आनन्द का पान करते समय मनुष्य की आत्मा को जो रसमय स्थिति प्राप्त होती है वही 'मधुमती भूमिका' है। 'मधुमती भूमिका' सात्विक प्रभाव व शील से युक्त व्यक्तियों को सहज ही प्राप्त हो जाती है। स्पष्ट है कि वैदिक मानव का सौन्दर्यानुभूति और तज्जन्य आनन्द का अविच्छिन्न संबंध है। सृष्टि में व्याप्त सौन्दर्य की समग्र अखंडता ही वैदिक ऋषि के लिए बृह्म थी। वह उसी से तादात्म्य स्थापित करता है और उसी को समाधि सुख समझता है। यह अनुभूति वास्तव में आनन्ददायिनी थी। इसी कारण से 'आदित्य', 'सोम', 'वरुण', 'अग्नि' को ब्रह्माण्ड की अभिव्यक्ति समझकर उसके साथ समर्पित भाव स्थापित करता और उनके प्राकृतिक रूप-सौन्दर्य के आनन्द को ग्रहण करता है। उसके इसी आनन्द की अनुभूति रचनाओं के द्वारा अभिव्यक्त हुई। समग्र वैदिक साहित्य आध्यात्मिक और प्राकृतिक सौन्दर्य से भरा हुआ सरल और भावुक ह्रदय के निश्छल उद्‌गार हैं।

लौकिक साहित्य में सौन्दर्य बोध :– वैदिक साहित्य के उपरांत लौकिक साहित्य में भी सौन्दर्य तत्वों के विभिन्न पर्यायों 'रस', 'रमणीयता', 'शोभा', 'कांति' और 'चारुता' की धार्मिक व्याख्श की गई है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार– 'सौन्दर्य आस्वाद और स्वरूप का व्यवस्थित विवेचन काव्य शास्त्र में ही मिलता है।'[27]

लौकिक साहित्य काव्य शास्त्रीय विवेचन दो विरोधी धराओं की ओर उन्मुख है। यद्यपि रस को काव्य की आत्मा के रूप में सभी ने मान्यता दी है, किन्तु कुछ आचार्यों ने काव्य के आंतरिक पक्ष रस, ध्वनि आदि पर विशेष ध्यान दिया है, तो कुछ ने बाह्य पक्ष अलंकार, रीति आदि को। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में इन्हें आत्मवादी और देहवादी आचार्य

कहा जा सकता है।

भरत मुनि, आनन्दवर्धन, अभिनव गुप्त, विश्वनाथ तथा पं. राज जगन्नाथ काव्य के आत्मपक्ष के रूप में परिगणित किये जाते हैं, तो भामह, दण्डी, कुन्तक, वामन आदि देहवादी विचारकों के रूप में, किन्तु दोनों ही वर्गों ने सौन्दर्य की अस्मिता को स्वीकार किया है इसलिए सभी आचार्य सौन्दर्यवादी हैं। अन्तर बस इतना है कि कुछ उसके बाह्य रूप पर आकर्षित हैं तो कुछ आंतरिक रूप पर।

रस सिद्धांत के जनक के रूप में **भरत** का एक महत्वपूर्ण स्थान है। उनके द्वारा निर्मिर रसों की संख्या नौ है और सौन्दर्य एक अखण्ड चेतना धारा। इस कारण आज के कुछ विचारक रस को सौन्दर्य का पर्याय नहीं मानते। भरत भी इस रस-गणना को अंतिम नहीं मानते थे। उनके अनुसार-'जिस प्रकार बीज से वृक्ष और वृक्ष से पुष्प तथा फलादि जन्मते हैं उसी प्रकार मूल रस है और उसके द्वारा ही विभिन्न भावों की निष्पत्ति होती है।' [28] रस एकता को दृष्टिपथ में रखकर डॉ. नगेन्द्र ने रस की परिभाषा इस प्रकार दी है- 'रस वह आनन्द रूपी मन:स्थिति है जिसमें हमारी सभी मनोवृत्तियाँ अन्वित हो जाती हैं, और वह स्थिति अखण्ड है।' [29] **डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा** ने एकता और अखंडता का पक्ष ग्रहण करते हुए कहा है कि-'हमें रस को अद्वितीय मानना चाहिये, जिससे सभी भावों और भावनाओं की वृद्धि की चेष्टाओं, आध्यात्मिक मानसिक तथा जीवन की सभी क्रियाओं का ऐसा सुघट सम्मिश्रण और विपाक हो कि आनन्द की अद्‌भुत अनुभूति का लाभ प्राप्त हो जाये।'[30] ध्वनिवादी आनन्दवर्धन और अभिनव गुप्त ने रस के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। **आनन्दवर्धन** ने काव्यगत सौन्दर्य के लिए चारुता का प्रयोग किया है और इसका आधार रस को बताया है। 'रस' पुराने विषयों को नवीन सौन्दर्य देता है। 'काव्य में रस के प्रभाव से पहले देखी हुई वस्तुओं का सौन्दर्य नितान्त नये रूप में इस प्रकार प्रकट होता है जैसे मधुमास में सभी वृक्ष नये प्रतीत होते हैं।' [32] सौन्दर्य अपने प्रभाव से विषयों को नवीनता प्रदान कर उनके मानस को विशद बनाकर सृजन क्षमता को बढ़ाता है तथा कवि उसे रसावेश की दशा में पहुंचा देता है। [33]

आनन्दवर्धन, भट्टतौत और अभिनव गुप्त की काव्यशास्त्रीय मान्यताओं पर धार्मिकता की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। इन्होंने कवि को प्रजापति के पद से विभूषित किया। 'इस सृष्टि के रूप आकार जैसे प्रजापति की इच्छानुसार विभिन्न आकारों और भावनाओं को मनचाहा रूप प्रदान करता है।' [34] आनन्दवर्धन ने काव्यलक्षण में सहृदय की प्रेरक शब्दार्थ समन्वित रचना को काव्य कहा है। [35]

सहृदय का यह आह्लाद एक ऐसी आनन्दमयी मन:स्थिति है जो काव्यगत सौन्दर्य के साक्षात्कार से ही प्राप्त होती है। संस्कृत काव्यशास्त्र में निरूपित 'सहृदयता' सौन्दर्यावगाहन की वह क्षमता है जिसके साथ विमलता और सुकमारता का अटूट संबंध है। [36]

अभिनव गुप्त ने शैव दर्शन में इसके द्वारा अभिव्यक्त काव्य सौन्दर्य का निरूपण किया है। वास्तव में इस प्रक्रिया को स्पष्टता प्रदान करने वाले ध्वनि संप्रदाय का यह योगदान उल्लेखनीय है।

विश्वनाथ ने वाक्य रसात्मकं काव्य को इस सिद्धान्त में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया है, किन्तु रस को मुक्त करके अलंकारवादियों के प्रभाव से उसकी पुनर्स्थापना करके विश्वनाथ ने काव्यशास्त्र के इतिहास में अपना विशेष स्थान बना लिया। जिस दृढ़ता और आत्मविश्वास के साथ उन्होंने 'रस' को प्रस्तुत किया उससे इस सिद्धान्त की पताका निर्विघ्नभाव से लहराने लगी। उन्होंने काव्यसौन्दर्य का तात्विक विवेचन प्रस्तुत किया है।[37]

'रस गंगाधर' के प्रणेता **पं. राज जगन्नाथ** ने काव्य की आज के परिवेश में पूर्णत: स्थापित सौन्दर्यवादी परिभाषा प्रस्तुत की है। पण्डितजी द्वारा रचित 'रमणीयता' निश्चय ही सौन्दर्य का प्रतीक है। इसी आधार पर रमणीय शब्द के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहने के कारण उन्हें अलंकारवादी आचार्य घोषित किया गया है। 'रमणीयता' की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा है कि – 'यह लोकोत्तर आह्लादजनक ज्ञान को हमारी इन्द्रियों के सामने साकार रूप में प्रस्तुत करती है।' [39]

सौन्दर्य हमारे मन को आनन्द से भरकर हमारी आत्मा को सुन्दर बनाता है। आत्मवादी आचार्यों ने सौन्दर्य के अनुभूति पक्ष पर विशेष बल दिया है, किन्तु इसका एक गुण और भी है, वह है आश्चर्यचकित करने की क्षमता। अलंकारवादियों ने इस क्षेत्र को अपनी प्रतिभा के प्रकाश से प्रकाशित कर डाला।

भामह के अनुसार-'सौनदर्य ही अलंकार है।' [40] उन्होंने अपनी अलंकार की परिभाषा को इतनी विस्तृत कर लिया है कि उसमें रस की उपेक्षा संभव ही नहीं। मामह की वकृता इतनी व्यापक है कि शब्द और अर्थ दोनों ही सौन्दर्य के पर्याय हैं। [41] डॉ. नगेन्द्र ने इस विषय पर अपनी टिप्पणी कुछ इस प्रकार की है-'मामह की वक्रोक्ति का अर्थ था संपूर्ण काव्य सौन्दर्य।' [42]

भामह ने काव्य के आत्म पक्ष को देह पक्ष से मिलाने का भरपूर प्रयास किया। एक प्रकार से इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करके काव्य सौन्दर्य के लिए नये द्वार खोलने की दिशा में विशेष योगदान करना चाहा, किन्तु अनेक आचार्यों ने उनके इस कार्य की अवहेलना की।

परिणाम फिर भी शुभ ही रहा।

रीतिवादी आचार्य **वामन** ने कहा है कि-'रीति काव्य की आत्मा है तथा विशिष्ट पद रचना का नाम रीति है।' [43] **कुन्तक** का भारतीय सौन्दर्य चिन्तन धारा में महत्वपूर्ण योगदान है। कुन्तक ने समस्त काव्यगत सौन्दर्य को वक्रोक्ति में समाहित कर लिया है। कुन्तक का काव्य लक्षण ही कवि को पृष्ठभूमि से निकालकर मुख-भूमि पर उपस्थित कर देता है। कुन्तक ने -'कवि कर्म ही काव्य है।'[44] ऐसा बताया है तथा कवि का स्वभाव ही काव्य-सृजन में मूर्धन्य है। [45] शब्द-अर्थ का सामंजस्य ही काव्य है और वही सामंजस्य सौन्दर्यानुभूति तथा रस-स्वादन का मूलभूत तन्तु है। कुन्तक की सूक्ष्मदर्शी प्रतिभा ने इस तत्व को बहुत पहले ही जान लिया था। [46]

ममिषाद त्वगमा शाश्वतीशमा।
यत् मिथुना देव अवधी काम विमोहिता।।

सौन्दर्य केवल कला एवं साहित्य के कटघरे में बन्दी नहीं है, अपितु वह लोकव्यवहार में भी प्रतिफलित होता है। [47] कुन्तक ने इस प्रकार की उक्तियों से भारतीय सौन्दर्य चिन्तन को एक नयी दिशा प्रदान की है। सौन्दर्य एवं रस के संबंध में कुन्तक का स्पष्ट मत है कि-'काव्यगत सौन्दर्य वस्तु तथा सामग्री में नहीं है अपितु कवि द्वारा उसके प्रयोग में ही निहित है।'[48] अतः लौकिक काव्य शास्त्र में रस, ध्वनि और रीति के द्वारा सौन्दर्य के दोनों पक्षों का पूर्ण विवेचन किया गया है। भारतीय काव्य शास्त्र की रस संबंधी यह अवधारणा इतनी विशिष्ट और पुष्ट है कि विश्व का समस्त सौन्दर्य चिन्तन इसके सामने तुच्छ प्रतीत होता है। इस तत्व के महत्व को स्वीकारते हुए कुछ पश्चिमी विद्वानों ने इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। सिल्वनलेबी रस को भारतीय प्रतिभा द्वारा दिया हुआ एक नूतन व श्रेष्ठ दान मानते हैं। [49] अनगढ़ शिलाखण्डों में अपने हृदय का समस्त स्नेह उंड़ेलकर पूछा जाये कि सौन्दर्य क्या है ? तो सुन्दरता का वह साधक अवाक देखता रह जायेगा और संभव है कि प्रयत्न करने पर भी वह जिज्ञासु बुद्धि को संतुष्ट न कर पाये। इसी प्रकार नायक-नायिकाओं के रूप को निखारने और अपनी आदर्श कल्पानाओं से नोकजीवन का प्रच्छालन करने वाले अमर कवियों की वाणी ने भी कभी सौन्दर्य का तात्विक निरूपण नहीं किया, फिर भी उनके काव्य-ग्रंथों में यत्र-तत्र ऐसे संकेत खोजे जा सकते हैं जो सौन्दर्य का प्रभाव व स्वरूप को समझने में सहायक हों। [50]

वाल्मीकि को एक क्रौंचवध की सामान्य घटना ने दस्यु वृत्ति से निकाल लिया था। वह सौन्दर्य का करुण रस ही तो था जो उनके अचेतन में कहीं छिपा था। उस सामान्य सी

घटना ने उन्हें कवि बना दिया।

वेदव्यास ने 'गीता' में कृष्ण के माध्यम से सत्यं-प्रियं-हितं का समन्वय प्रस्तुत किया है। गीता का 'प्रिय' सुन्दरता का प्रतीक है, और 'सत्यं-प्रियं-हितं' सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् का प्राचीन रूप है। इस धारणा को प्राचीन कवि बहुत पहले ही जान चुका था।

ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी में यूनान के किसी दार्शनिक ने उदात्त के लक्षणों का विवेचन करते हुए कहा था कि-'उदात्त शैली का सरल प्रयोग गरिमामय शैली में प्रकट होता है। इसका प्रयोग पाठक या श्रोता द्वारा अपना मत मनाने के लिए नहीं, बल्कि दूसरे लोक में पहुंचाने के लिए होता है। इससे उसके मनोलोक का रूपान्तरण होता है और चित्त में उत्फुल्लता एवं विमुग्धता की भावना भर जाती है।' [51]

लोंगिनुस ने अपने निबंध 'पेरिइत्सुस' में उदात्त का विस्तृत विवेचन किया है। डॉ. नगेन्द्र ने 1958 में 'काव्य में उदात्त तत्व' के आधार पर लोंगिनुस की उदात्त भावना प्रस्तुत की है। 'पेरिइत्सुस' में उदात्त की कोई स्पष्ट परिभाषा प्रस्तुत नहीं की गई है परन्तु इसके लक्षण निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं:-

क. औदात्य महान आत्मा की प्रतिध्वनि है।

ख. औदात्य का प्रभाव अत्यन्त प्रबल एवं दुर्निवार होता है।

ग. साधारणत: औदात्य के उन उदाहरणों को ही श्रेष्ठ और सच्चा मानना चाहिये जो सब व्यक्तियों को सर्वथा आनन्द दें।

घ. सच्चे औदात्य से हमारी आत्मा अपने ऊपर ही उठकर गर्व से उच्चाकाश में विचरण करने लगती है। मानो जो कुछ उसने सुना हो वह स्वयं उसकी अपनी कृति हो।

ङ वास्तव में महान रचना वह है जो बार-बार कसौटी पर कसे जाने पर भी सदा खरी उतरे। जिससे प्रभावित न होना कठिन ही नहीं लगभग असंभव हो जाये और जिसकी स्मृति इतनी प्रबल और गहरी हो कि मिटाये न मिटे। [52]

च. औदात्य अभिव्यक्ति की विशिष्टता और उत्कृष्टता का नाम है। वस्तुत: इसका आरम्भ पश्चिमी देशों से ही हुआ। इसका प्रभाव व्यक्ति के मन में प्रसन्नता और आश्चर्य के चिह्न अंकित करता है। कुछ काव्यशास्त्रियों का विचार है कि अपने उत्कृष्टतम रूप में सौन्दर्य उदात्त का सहवर्ती हो जाता है। इस कारण यह चित्र स्थायी होता है। गीता में भगवान कृष्ण के जिस विराट रूप का वर्णन किया गया है वह वास्तव में उदात्त का ही एक रूप है। 'अर्जुन बार-बार कृष्ण के उस विराट सौन्दर्य को याद करके विस्मय और हर्ष-विभोर हो उठते हैं।' [54] अत: उदात्त की उचित परिभाषा देते हुए जगदीश चन्द्र पाण्डेय ने कहा है कि-

प्रभाव के दृष्टि से आश्रय के चित्त की भूमिका की उत्क्रांति या आरोह उदात्त की कसौटी है। [55]

गीता में आत्मा को सौन्दर्य के पूर्व जन्म के संस्कार का फल बताया है और प्रतिभा को जन्मजात शक्ति के रूप में मान्यता प्रदान की गई है, अतः व्याख्या की यह कड़ी अप्रत्यक्ष रूप से वेदव्यास से जाकर मिल जाती है। [56]

महाकवि **कालिदास** ने भी अपनी अमर कृति शकुंतला का रूप प्रतिभा के रस से सींच-सींचकर निखारा है। इससे उसका सौन्दर्य वर्णन स्वयं उनकी सामर्थ्य से बाहर हो गया-'मानो विधाता ने समस्त रूप के संचय से शकुंतला की रचना की है।' [57] कालिदास की सौन्दर्य निरीक्षण और सृजन की अपूर्व क्षमता हमें उनके ग्रंथों से ही प्राप्त होती है। कालिदास ने सौन्दर्य के अनेक पर्यायों रूप, लावण्य तथा रम्यता आदि का प्रयोग किया है। उन्होंने सौन्दर्य के बाह्य पक्ष के लिए लावण्य तथा आंतरिक पक्ष के लिए रम्यता का प्रयोग किया है। यही वह गुण है जो सौन्दर्य को कभी नष्ट नहीं होने देता। सौन्दर्य कभी पुराना नहीं पड़ता वह हर क्षण नवीनता धारण करता रहता है।

भारतीय काव्य परंपरा पर शैव्य धर्म के दार्शनिक सिद्धांतों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। स्वयं शंकराचार्य भी शैव धर्म से प्रभावित थे। शंकराचार्य ने सौन्दर्य सत्ता को शिव में निरूपित किया-'जैसे घृत, दुग्ध, द्राक्षा तथा शहद के माधुर्य को शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता, वह केवल आस्वाद का ही विषय है, उसी प्रकार वह परम सौन्दर्य शिवमयी दृष्टि का विषय है। उसके गुणों का बखान कैसे किया जा सकता है, क्योंकि उसके गुण तो निगमागमों के लिए भी अगोचर हैं।' [58]

दशरूपकार **धनञ्जय** ने स्मित, दृष्टिपात तथा लावण्य के संयुक्त प्रभाव से विकीर्ण होने वाली सौन्दर्य सुधा का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है-'हे चन्द्रमुखी! तेरी मुस्कान की ज्योत्सना ने सारे विश्व को धवल बना दिया है, तेरे दृष्टिपात से चारों ओर पीयूष की वर्षा हो रही है। तेरे सुष्ठु तन से कठोरता का संबंध कैसे हो गया, यह अभी तक समझ में नहीं आया।' [59] निश्चय ही लौकिक साहित्य में शारीरिक रूप-विन्यास एवं स्वभावगत सौन्दर्य के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग किया गया है।

कृष्ण भक्त शाखा के सखी संप्रदाय और राधावल्लभी संप्रदाय में भी राधा-कृष्ण के दिव्य सौन्दर्य के आधार पर ही धार्मिक विश्वासों को पुनर्स्थापित किया गया है। आचार्य शुक्ल ने भक्ति की परिभाषा इस प्रकार दी है-'भक्ति धर्म की रसात्मक अनुभूति है।' [60]

मध्ययुगीन साहित्य में सौन्दर्यबोधः- यह रसात्मकता राधावल्लभ संप्रदाय में अपने

चरमोत्कर्ष पर पहुंच गई। इस संप्रदाय के भक्त कवि राधा-कृष्ण के रति रूप के भाव को ग्रहण करके उनके सौन्दर्य का गान आत्मविभोर होकर करते हैं।

देवर्षि नारद के भक्ति सूत्र में सात प्रकार की भक्तियों का निरूपण किया गया है। इनमें से एक सारूप्य भक्ति भी है और सारूप्य भक्ति आध्यात्मिक सौन्दर्य का ही दूसरा नाम है। दूसरा स्थान रूप भक्ति को दिया गया है।[61] वास्तव में भक्ति भी रति का ही उदात्तीकरण है। सौन्दर्य के माध्यम से भक्त की वृत्तियों का परिष्कार किया जाता है। 'भक्ति भाव और रति भाव के आधार पर ही भोज जैसे दार्शनिकों ने भक्ति श्रृंगार और मोक्ष श्रृंगार का सूत्रपात किया।'

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के कवियों ने सौन्दर्य तत्व का भलीभांति निरूपण किया है। वे सौन्दर्य और प्रेम के अमर गायक थे। विद्यापति का नाम इसी संदर्भ में लिया जाता है। विद्यापति के सौन्दर्य अनुराग को मात्र कामुकता समझना ठीक न होगा क्योंकि उनके काव्य में वर्णित स्वच्छ आनन्द और आह्लाद का सुकमार सौन्दर्य कामुकता से काफी आगे है। उन्होंने राधा-कृष्ण के रूप-चित्रण द्वारा सौन्दर्य के संबंध में सटीक टिप्पणी की है- 'उनके लिए सौन्दर्य सत्ता गम्भीर (किन्तु मधुर) पीड़ा का संचार करने वाली शाश्वत शक्ति की द्योतक है।'[62] वे सौन्दर्य में कुछ ऐसे आकर्षण का अनुभव करते हैं जो जीवनपर्यन्त अपने आकर्षण में बांधे रखने में समर्थ है। उदाहरणार्थ:-

'जनम अवध हम रूप निहारल, नयन न तिरपत खेल।'[63]

विद्यापति ने अपने काव्य में लोकभाषा का प्रयोग कर अभिव्यंजना की सशक्तता को बढ़ाकर परवर्ती कवियों के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। निर्गुण भक्ति साधना में आध्यात्मिक सौन्दर्य के रहस्यमय बिम्ब अधिक मिलते हैं। कबीर ब्रह्म में लीन होकर ही उस आनन्द का अनुभव करते हैं और उस आनन्द को रहस्यमयी उक्तियों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं:-

लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल।[64]

सुन्दरता और आंतरिक दिव्य सौन्दर्य जायसी ने पद्मावती के माध्यम से अनुभव किया। उनकी मान्यता है कि उस अखण्ड सौन्दर्य से ही शेष जगत ने सौन्दर्य और अस्तित्व को प्राप्त किया।

'नयन जो देखा कंवल भा, निरमल नीर शरीर।
हँसत जो देखा हंस भा, नखत ज्योति नग हीर।।'[65]

तुलसी ने सीता-राम और सूर ने राधा-कृष्ण के रूप-भाव और कर्म के सौन्दर्य को गृहण कर भक्ति ज्ञान का समन्वित रूप प्रस्तुत किया है। तुलसी ने राम की छवि का इतना मनोहर वर्णन किया है जो अनेक कामदेवों को लज्जित करता है:-

'कोटि मनोज लजावन हारे।' [66]

और सूर नेत्र न होते हुए भी रूप-रस पर आसक्त हैं:-

'खंजन नयन रूप-रस माते।' [67]

रीति काल में काव्य सौन्दर्य के ऐन्द्रिय तथा भोग पक्ष का विस्तृत विवेचन किया गया। इस युग में कृष्ण और राधा के माध्यम से स्त्री-पुरुष की अनेक भाव-भंगिमाओं का सुन्दर अंकन किया गया है। देव ने इसकी परिभाषा देते हुए कहा है:-

'देखत ही जो मन है, सुख अँखियन को देइ।
रूप बखाने ताहि को जग चेरी करि लेइ।।' [68]

मतिराम ने कहा है:-

'कुन्दन को रंग फीको लगे, झलके असि अंगन चारु गोराई,
आँखिन में अलसान चितौनि में मंजु विलासन की सरसाई।
को बिन मोल बिकाने नहीं, मतिराम लखे अँखियान लुनाई,
ज्यों-ज्यों निहारिये नेरे है नैननि, त्यों-त्यों खरी निकसै है निकाई।।' [69]

मतिराम नायिका के रूप-सौन्दर्य को ही सही सौन्दर्य मानते हैं। बिहारी ने रुचि और सौन्दर्य के संबंध को पहचानते हुए कहा था कि :-

'समै-समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोय,
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होय।' [70]

इस प्रकार इस युग के कवियों ने बाह्य रूप सज्जा और काम व्यापारों को ही अधिक महत्ता प्रदान की। उन्होंने सौन्दर्य के अन्त:पक्ष की ओर अपना ध्यान आकृष्ट नहीं किया तथा साहित्य के कला और अलंकार पक्ष के निरूपण को ही अपना सर्वस्व सौंप दिया।

आधुनिक समीक्षाओं के अनुसार:- पश्चिमी विचारकों को यह भ्रम हो गया था कि भारत में कभी भी सौन्दर्य पर चर्चा नहीं की गई । इसी भ्रम को दूर करने के लिए रस सिद्धान्त पर पुनर्विचार करके उसकी पुनर्स्थापना की आवश्यकता बढ़ गई। 'रस' और 'सौन्दर्य' पर सन्देह करने वालों की दृष्टि में 'रस केवल काव्य की आत्मा है।' पश्चिमी विचारकों ने सभी कलाओं को सौन्दर्य में ही समाहित किया है, और इसी कारण उनकी दृष्टि में सौन्दर्य के स्थान पर रस का प्रयोग दोषपूर्ण है। वैदिक परंपरा का

रस अभिन्न अंग है। वेद में वर्णित सभी प्रकार के दैहिक और आध्यात्मिक आनन्द का प्रतीक है। भरत ने रस को नाट्य का प्राण माना है, परन्तु उनका नाट्य काव्य नहीं बल्कि पंचम वेद था। इसी कारण नाट्य में :-

'न तत्ज्ञानं न तप्छिल्पं न सा विद्या न सा कला,
न स योगो नतत्कर्म, यन्नाट्येऽस्मिन दृश्यते।' [71]

इस तरह नाट्य में सभी कुछ समाहित है। जिस नाट्य में सभी तत्व समाहित हैं यदि उसकी आत्मा रस है तो रस से अलग सौन्दर्य की सत्ता कहाँ हो सकती है। इसी आधार Âú**के.सी.पाण्डेय** ने सौन्दर्यशास्त्र को मूल नाट्यशास्त्र माना है। [72] नाट्य तथा काव्य में रस के अनुसार कोई विशेष अन्तर नहीं है। संस्कृत के नाट्य भी उच्चकोटि के होते थे। इसी कारण नाट्यशास्त्र में वर्णित रस को काव्यशास्त्र ने ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है। रस सम्पूर्ण ललित कलाओं के प्राण रूप में स्वीकार किया जाता रहेगा। अत:-' रस सिद्धान्त के रूप में सौन्दर्य शास्त्र का विकास शताब्दियों पहले हो चुका था और आधुनिक काल में यह अपने चरम रूप में पहुँच गया।'

डॉ. आनन्द कुमार स्वामी ने सौन्दर्य को अविभाज्य बताया है। सौन्दर्यानुभूति में श्रेणियां नहीं होतीं। सौन्दर्य की परिभाषा के समान इसका वर्गीकरण भी कठिन है, फिर भी सौन्दर्य के स्वरूप के आधार पर भारतीय एवं पाश्चात्य चिन्तकों ने सौन्दर्य को वर्गीकृत करने का प्रयास किया है। कुछ विचारकों के वर्गीकरण संबंधी विचार दृष्टव्य हैं:-

एडम मुलर के अनुसार सौन्दर्य दो प्रकार का होता है-

1. सामान्य सौन्दर्य (जनरल ब्यूटी)
2. विशिष्ट सौन्दर्य (इनविडुअल ब्यूटी) [73]

पियर एण्ड्रे ने सौन्दर्य के तीन रूप बताये हैं:-

1. दिव्य
2. प्राकृतिक
3. कृत्रिम [74]

पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्री **ब्रेडले** ने सौन्दर्य की पाँच कोटियां मानी हैं:-

1. सुन्दर
2. चारु
3. ललित
4. भव्य

5. उदात्त [75]

विंकलमेन ने सौन्दर्य के भेद निम्न रूप में किये हैं:-

1. रूप सौन्दर्य
2. विचार या प्रत्यय का सौन्दर्य
3. अभिव्यक्ति का सौन्दर्य [76]

एरिक निटुअन ने सौन्दर्य दो प्रकार का बताया है:-

1. प्रकृतिगत सौन्दर्य
2. कलागत सौन्दर्य

कलागत सौन्दर्य को उसने मानव निर्मित सौन्दर्य कहा है। [77]

सुमित्रानन्दन पंत ने चिदम्बरा की भूमिका में सौन्दर्य के चार भेद निरूपित किये हैं:-

1. नैसर्गिक सौन्दर्य
2. सामाजिक सौन्दर्य
3. मानसिक सौन्दर्य
4. आध्यात्मिक सौन्दर्य [78]

निराला ने सौन्दर्य के दो रूप बताये हैं:-

1. वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य
2. आत्मनिष्ठ सौन्दर्य

प्रथम का प्रतिफल सुख में होता है, द्वितीय का आनन्द में। सुख या आनन्द का स्थूल प्रतीक सौन्दर्य है अतः सौन्दर्य की परिभाषा में हम यही कह सकते हैं कि सौन्दर्य स्थूल से उत्पन्न सूक्ष्म की वह सहज परिणिति है जिसकी प्रगति सुख या आनन्द की ओर है। सुख इन्द्रियों का विषय है और आनन्द अन्त:करण का........अतः सौन्दर्य इन्द्रिय या अन्त:करण जनित रागात्मक मनोवेग के विश्राम में है। [80]

सूर्यप्रसाद दीक्षित ने ग्यारह प्रकार के सौन्दर्य की स्थापना की:-

1. रूप सौन्दर्य
2. गन्ध सौन्दर्य
3. ध्वनि सौन्दर्य
4. वयः सौन्दर्य
5. गति सौन्दर्य
6. शिल्प सौन्दर्य

7. रस सौन्दर्य

8. स्पर्श सौन्दर्य

9. प्रकृति सौन्दर्य

10. वर्ण सौन्दर्य

11. मनःसौन्दर्य [81]

खण्डेलवाल ने विषय निरूपण की दृष्टि से सौन्दर्य के चार भेद किये हैं:-

1. शारीरिक सौन्दर्य
2. मानसिक सौन्दर्य
3. प्राकृतिक सौन्दर्य
4. कलागत सौन्दर्य

साहित्य की सीमा में जितना भी सौन्दर्य कल्पित किया जा सकता है, वह सब इन भेदों में आ जाता है। [82]

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी मानव निर्मित सौन्दर्य को लालित्य कहते हैं और इसे केवल चक्षुदोष नहीं मानते। उनके अनुसार इसका ग्रहण चेतना के अन्य स्तरों पर होता है। [83]

सौन्दर्य के उक्त विभेदों और अध्ययनगत सुविधा को ध्यान में रखकर तत्वतः सौन्दर्य के चार भेद स्वीकार किये गये हैं:-

1. मानवीय सौन्दर्य

(**क**) नारी सौन्दर्य

(**ख**) शिशु सौन्दर्य

2. दिव्य सौन्दर्य

3. प्रकृति सौन्दर्य

(**क**) आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण

(**ख**) प्रकृति का उद्दीपनगत रूप

(**ग**) प्रकृति का मानवीकरण

(**घ**) प्रकृति का अलंकारिक विधान

(**ङ**) प्रकृति का प्रतीक विधान

(**च**) रहस्यमयी अभिव्यक्ति हेतु प्रकृति रूपांकन

(**छ**) पृष्ठभूमि नियामक रूप में प्रकृति रूपांकन

4. शिल्प सौन्दर्य [84]

शिल्प सौन्दर्य वास्तुकला का ही एक रूप है। इसकी अनुभूति में अडिग सत्यों का अनुभव विद्यमान है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सौन्दर्य दीप्ति, कांति, लालित्य, कोमलता तथा रस का पर्याय है। उसका अपना एक समग्र रूप है जो सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् से अनुप्राणित है। इसी कारण सौन्दर्य एकरसता नहीं, सरसता है। अत: जीवन में जो कुछ भी श्रेयस्कर है, वही सत्य है और वही शिव तथा सौन्दर्य है।

वैदिक साहित्य, लौकिक साहित्य, मध्ययुगीन साहित्य तथा आधुनिक सीमाओं के आधार पर सौन्दर्यबोध का अर्थ एवं व्याख्या स्पष्ट करते हुए मैं कह सकती हूँ-

गीता में कृष्ण ने कहा है:-

'नतु मां शक्य से द्रष्टुभनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्य ददामि ते चक्षुः पश्यमेयोगमैश्वरम्।'[85]

अर्थात तुम इन नेत्रों से मुझे नहीं देख सकते, इसलिए मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ उससे मेरे यागैश्वर्य को देखो।

अत: सम्पूर्ण सौन्दर्यबोध उपर्युक्त पंक्तियों पर ही आधारित है। जैसे-जैसे दृष्टि खुलती है वैसे-वैसे सौन्दर्य के विविध पक्ष हमारे सामने आते चले जाते हैं। सौन्दर्य सर्वत्र है उसे निरखने की दृष्टि चाहिये। सौन्दर्यबोध देखने से अधिक दर्शन पर आधारित होता है।

बोध और हमारी इन्द्रियों के मध्य परस्पर संबंध होता है। साधारण बोध और सुन्दर बोध में काफी अन्तर होता है। साधारण बोध एक सीमा के अन्दर घटित होता है और सुंदर बोध हमें सीमा से परे ले जाता है। कला में सुंदरता रूप से प्रारम्भ होकर अपने उस चरम रूप तक पहुंच जाती है जहाँ कुछ भी असुंदर नहीं रह जाता, सर्वत्र उसी सौन्दर्य के ही अनेक रूप दिखाई पड़ते हैं। सुन्दर वस्तु का रूप अन्यन्त व्यापक और गतिशील होता है। सुन्दर को देखते ही वह हमारी आँखों में बस कर चेतना की नदी में मिल जाता है। जब हम उसके बोध में चिन्तन मनन करने लगते हैं तो हमारी चेतना उस सुन्दर वस्तु के अतिरिक्त किसी और का ज्ञान नहीं रखती। हम उस सौन्दर्य में इतने गहरे उतर जाते हैं कि हमें स्वयं अपना भी ध्यान नहीं रहता। उस आनन्दलोक में सौन्दर्य का जो पुष्प खिलता है, उसका रस बिरला ही अनुभव कर सकता है। किसी भी सुन्दर वस्तु का अनुभव हम अपनी इन्द्रियों के माध्यम से करते हैं किन्तु चिन्तन के बिना इन्द्रियां अधूरी हैं। श्री अरविन्द ने लिखा है- 'एक अर्थ में हमारा सकल अनुभव मनोमय होता है, क्योंकि हम इन्द्रियों के द्वारा जो कुछ ग्रहण करते हैं उसका तब तक कोई मूल्य या अर्थ नहीं होता जब तक वह इन्द्रियाश्रित मन की भाषा में अनूदित न हो जाये।'[86]

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार–'सौन्दर्य बोध के लिए समस्त मन के प्रयोग की ही आवश्यकता होती है। उच्चतर अन्तर्दृष्टि की सहायता के बिना हम सौन्दर्य को पूरी तरह हृदयंगम नहीं कर सकते।' [87]

शोपेन हावर का मानना है कि कलाकार की आँखों से देखते हैं।

वास्तव में सौन्दर्य बोध हमारी सम्पूर्ण चेतना का विषय है। जिस तरह इसे मन और इन्द्रियों से अलग नहीं किया जा सकता उसी तरह इसे टुकड़ों में भी नहीं बाँटा जा सकता। इसके आस्वादन के समय हमारी समस्त चेतना प्रभावित होती है और बोध को जगाने व उसे प्रगाढ़ करने के संबंध में सुन्दर वस्तु का रूप, भोग अभिव्यक्ति, उसके उपादान, संतुष्ट मन, लय, गति, विशालता, विस्तार, संगति आदि का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

'सौन्दर्य को अनुभूति से पृथक नहीं किया जा सकता। वस्तुतः आस्वादन ही सौन्दर्य का सार है। यह हमारी चेतना का विशिष्ट और उत्कट व्यापार है। हमारी चेतना के आलोक के पड़ते ही वस्तु से सुन्दरता की किरणें फूट पड़ती हैं। इससे हमारी चित्ति एक नवीन आलोक से भर जाती है। हम उसमें मग्न हो जाते हैं। इस प्रकार सौन्दर्यानुभूति हमारी चेतना की ही परिणिति है। सौन्दर्य बोध में रूप और रस दोनों का ही समावेश रहता है। उसके सम्यक अवबोध से ही प्रक्रिया को समझा जा सकता है।' [88]

'सौन्दर्य शोभा छवि का आधार होता है। इसके भावन से हमारी अन्तःसत्ता की तदाकार परिणिति हो जाती है। उसमें एक लय, एक संतुलन, एक व्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। बाहर अवस्थित वस्तु का एक आध्यात्मिक रूप हमारी अन्तःचेतना पर खचित हो जाता है। यह क्रिया सहज होती है। फिर अन्तःपटल पर खचित रूप के भावन से हमारे शरीर का पुलकित होना, मन का बार–बार उसके ध्यान में लीन होना, इन्द्रियों का बार–बार मानसिक रूप के अधिष्ठान की ओर दौड़ना, यह सब चलता रहता है। कवि इन्हीं प्रक्रियाओं को कला में ढाल लेता है। संक्षेप में यही सौन्दर्य बोध की प्रक्रिया है।' [89] इसका सुन्दर उदाहरण गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में पुष्प–वाटिका प्रसंग में प्रस्तुत किया है।

'सौन्दर्य बोध में रूप की अवस्थित बहुत दूर तक मानी गई है। कला–शास्त्र में इसका प्रयोग बहुत व्यापक अर्थ में किया जाता है। संस्कृत और हिन्दी काव्य ग्रंथों में रूप को सौन्दर्य के अर्थ में प्रस्तुत किया गया है। किसी वस्तु के विभिन्न उपादानों से रूप की सृष्टि होती है। असल में रूप में ही वह सब कुछ निहित है जो मानवीय ज्ञान के कारण वेद्य है। इसमें चाक्षुस रूप के अतिरिक्त गन्ध, आस्वाद, प्राण, स्पर्श सब कुछ आ जाते हैं।' [90] काव्य

में प्रत्येक विभाव का कोई न कोई रूप अवश्य होता है। प्रस्तुत का रूप खड़ा करने के लिए कवि को अप्रस्तुत विधानों को चुनना पड़ता है। इनका भी अपना रूप होता है। फिर काव्य की प्रत्येक विधा का अपना रूप होता है। फिर रसात्मक बोध के विविध आयाम होते हैं। उनका आधार रूप होते हैं। अप्रस्तुत विधानों का रसात्मक बोध में यही महत्व होता है कि उनकी सहायता के बिना ह्रदय में अरूप का बोध कराने वाले रूप जगते ही नहीं। इस प्रकार सौन्दर्य बोध में रूप तत्व आदि से अन्त तक व्याप रहता है। अरूप रतन को पाने के लिए रूप सागर में डूब देनी ही पड़ती है। असीम की अनुभूति के लिए सीमित, रूपवान जगत या वस्तुओं का सहारा लेना ही पड़ता है। बाह्य वस्तुओं के प्रसंग में ही सौन्दर्य का अनुभव होता है। सौन्दर्य की आंतरिक चेतना भी बाह्य वस्तुओं के रूप में साकार होती है। सौन्दर्य का यह रूप वस्तु तत्व का आकार है। रूप का आकार बाह्य और सामान्य होने के नाते सौन्दर्य का रूप भी बाह्य और वस्तुगत है। सामान्यत: बाह्य तत्व के रूप में अथवा उसके निमित्त के भाव में सौन्दर्य साकार होता है।[91] रूप के द्वारा तत्व का स्वरूप सार्थक होता है, बिना इसके भावों की अभिव्यक्ति हो ही नहीं सकती। रूप के माध्यम से विश्व के विषय और कला की कृतियां अवगति का विषय बनती हैं।[92]

सौन्दर्य बोध में रूप की अवस्थिति की अनिवार्यता को मानते हुए आचार्य शुक्ल लिखते हैं-'जब हमारी इन्द्रियां देखने में प्रवृत्त रहती हैं तब रूप हमारे प्रतीत होते हैँ, जब वृत्ति अंतरमुखी होती है। सौन्दर्य रूप से पृथक नहीं है, सौन्दर्य का स्वरूप भी रूपमय है। सुन्दर, मधुर, भीषण, क्रूर लगने वाले रूपों या व्यापारों से भिन्न सौन्दर्य, माधुर्य, भीषणता या क्रूरता कोई पदार्थ नहीं। सौन्दर्य की भावना जगना सुन्दर-सुन्दर वस्तु या व्यापारों का मन में आना ही है। बिना इस रूप भावना के सौन्दर्य का बोध ही नहीं हो सकता।'[93]

इस प्रकार सौन्दर्य बोध की भावना में रूप का महत्वपूर्ण स्थान है। सौन्दर्य बोध में रूप तत्व के महत्व को रेखांकित करते हुए श्री अरविन्द ने कहा है कि-'रूप अभिव्यक्ति है , न कि शून्य में किये गये मनमाने आविष्कार। रूप को रूपहीन का अन्तर्जात शरीर अनिवार्य आत्म प्रकटन कहा जा सकता है, और यह बात केवल बाह्य आकारों के संबंध में नहीं अपितु मन और प्राण के उन अदृष्ट रूपायणों के संबंध में भी सत्य है जिन्हें हम केवल अपने विचार के द्वारा ग्रहीत करते हैं और संवेद्य रूपों के संबंध में भी सत्य है जिनकी संचित आंतरिक चेतना की सूक्ष्म पकड़ ही हो सकती है।'[94]

बोध की गति बाधा नहीं बनती। इसका सम्बन्ध तर्क-वितर्क से नहीं रहता है। डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा ने इसका स्पष्ट उल्लेख करते हुए कहा है-'रसास्वाद में सौन्दर्य बोध का

स्थान और प्रकार क्या होता है, यों तो जीवन की किसी भी पुष्ट अनुभूति में बोध सौन्दर्य का बोध कैसे होता है। रसास्वादन के क्षण में हमारा संपूर्ण कलेवर और इन्द्रियां चेष्टा करती हैं। इन्द्रियों की चेष्टा से रसिक सौन्दर्य का साक्षात्कार करता है। क्योंकि इन्द्रियां सौन्दर्य के रहस्य का उद्घाटन नहीं कर सकती हैं इसलिए सौन्दर्य को ग्रहण करने के लिए बुद्धि का प्रचण्ड उन्मीलन चाहिये।' यह कैसे होता है? इसी का उत्तर देते हुए शर्माजी आगे कहते हैं– 'सौन्दर्य का आधार रूप है। रूप अवययों और अंगों के विन्यास में गोचर होता है। अंगों के परस्पर विशिष्ट सम्बन्ध से एक ऐसा गुण उदित होता है जो पृथक-पृथक अंगों में विद्यमान न होते हुए भी उसके विन्यास में स्पष्ट झलकती है। इसी गुण का नाम रूप है। अंगों की अनेकता में रूप एक ही होता है, जैसे अनेक रेखा और रंगों के संयोजन में चित्र एक ही रहता है । अतएव रूपबोध के लिए अनेक की एकता का ग्रहण होना चाहिये। एकता के बोध के बिना सौन्दर्य की साक्षात प्रतीति संभव नहीं है।' [95]

यह ज्योतिषमान बोधतत्व वास्तुकला से लेकर काव्य कला में क्रमशः वर्द्धमान होता हुआ भास्कर अर्थों के रूप में प्रकट होता है। साहित्य में अर्थ स्फोट के कारण ज्योतिष्मान तत्व अधिक रहता है। जहाँ शब्द है वहाँ अर्थ अवश्य रहता है। जहाँ अर्थ है वहाँ बुद्धि रहती है। अतएव स्थापत्य से चलकर साहित्य तक आते-आते बोध तत्व प्रबल हो उठता है। साहित्य का विशाल अंतराल ज्योतिष्मान तत्वों की दीप्ति से झिलमिलाता रहता है। [96]

डॉ. रामानन्द तिवारी ने सौन्दर्यबोध में सचेतानुभूति को प्रधानता दी है। यह अनुभूति सत्य की अवगति समान तटस्थ और उदासीन नहीं होती। इसके बोध में अवगति के साथ-साथ अनुराग तथा आकर्षण होता है। हम सुन्दर वस्तुओं को अपनाना चाहते हैं, इसके विपरीत सत्य के तत्वों के प्रति हमारा ऐसा मोह नहीं होता। [97]

सौन्दर्यबोध की व्याख्या करते हुए **रामशंकर द्विवेदी** ने लिखा है–'काव्य का सत्य अनुभूति का सत्य है। भाव अनुभूति और रस का प्राण है। हमारी भावदृष्टि पड़ते ही सब कुछ सुन्दर हो जाता है। सुन्दर रूपों की टकराहट से हमारे हृदय में भाव लहरियां जगमगा उठती हैं। जो रूप हमारी रागात्मक उद्‌बुद्ध करने में जितने समर्थ होते हैं उन्हें उतना ही सुन्दर कहा जाता है और जो हृदय जितना संवेदनशील और भावप्रवण होता है उसे उतना ही सहृदय। असल में सौन्दर्य बोध की प्रक्रिया अत्यन्त उलझी हुई और संकुल है। इसे उत्तरोत्तर विकसित सोपानों में आने वाले विविध उपादानों को अलगाया नहीं जा सकता। जलतरंग की घंटियों की तरह जलतरंग की घंटियों की तरह सब मिलकर उस प्रक्रिया को पूरा करते हैं। सौन्दर्य का बोध रूप बोध से चलकर हमारे हृदयसागर में उतर जाना चाहता

है। इसी तरह अनादिकाल से प्रतिष्ठित रमण करने की इच्छा रूप में साकार होना चाहती है। रूप भाव में पर्यवसित होना चाहता है और भाव रूप में साकार। सौन्दर्य और हमारी रागात्मक चेतना में ऐसा संबंध है जैसे पुष्प और उसके सौरभ से आकृष्ट होने वाले भौंरे में।' [98]

रूप, बोध, सौन्दर्य और कल्पना, ये चारों तत्व मिलकर सौन्दर्य को एक घोल के रूप में तैयार करते हैं। सर्वप्रथम इसका प्रभाव हमारी इन्द्रियों पर पड़ता है, फिर कल्पना के द्वारा मन उस वस्तु को कुछ देर अपने सामने रखना चाहता है। तत्पश्चात उसके प्रस्फुटन के बाद भावन व्यापार प्रारम्भ होता है। इसी सब में डूबता-उतराता मन अपनी चरम अवस्था में पहुंच जाता है। इस प्रकार सौन्दर्य बोध हमारे जीवन में घटित होता है। सौन्दर्यबोध हमारे मन, इन्द्रियों, बुद्धि, कल्पना पर रम्य प्रभाव डालता है। इस पर भी कुछ दृष्टि डालें- 'सौन्दर्य का प्रभाव सर्वप्रथम शरीर की बाह्य आभ्यांतरिक चेष्टाओं के बिना संभव नहीं। सौन्दर्य से प्राप्त आनन्द और प्रसन्नता की छाप मुख पर स्पष्ट झलकने लगती है। हमारे यहाँ अनुभवनों को चर्वणा व्यापार में इसीलिए इतना महत्व दिया गया है।' [99]

सौन्दर्यबोध के समय होने वाली शारीरिक चेष्टाओं को **डॉ. सुरेन्द्रनाथ गुप्त** ने भी स्वीकार किया है- 'संध्याकालीन दृश्य तथा रंगों की छटा के दर्शन से हमारे अक्षिपटल तथा स्नायु संस्थान पर विभिन्न प्रकार के प्रभाव दृष्टिगत होने लगते हैं।' [100] डॉ. शर्मा ने सौन्दर्य के प्रभाव की गंभीरता को चेतना के विभिन्न तलों पर पड़े प्रभावों के आधार पर मापने का प्रयास किया है। उन्होंने प्रभावों को नापने के लिए गांभीर्य, गति, दीप्ति, परिपाक, विस्तार और इन्हीं से निकले हुए कुछ अन्य मान- माधुर्य, ओज और प्रासाद को ग्रहण किया है।[101]

रसिक सुन्दर वस्तुओं के प्रभाव को प्राप्त करने के लिए आँखें खेलता, कान लगाता है। शारीरिक अंगों में गति उत्पन्न करता है, फिर ध्यानस्थ होकर उसका अनुभव करता हुआ बिलकुल मूल में पहुँच जाता है, तभी सौन्दर्य का बोध होता है। इस प्रकार सुन्दर वस्तु, उसका दृष्टा, उसकी परिष्कृत रुचि, ये तीन तत्व मिलकर सौन्दर्य को काफी हद तक स्पष्ट कर देते हैं। किन्तु सम्पूर्ण सौन्दर्य बोध निम्न दोहे में समाहित है:-

'क्रीड़ाते लोक रचना सखाते चिन्मयः शिवा।
आहारस्ते सदानन्दो वासस्ते हृदयं सताम्।।' [102]

अर्थात यह लोक उनकी क्रीड़ा है, चिन्मय उसके सखा हैं, सदानन्द उनका आहार है और वाक् अर्थ की आश्रयभूमि सज्जन हृदय ही उनका निवास है। प्रस्तुत श्लोक में सौन्दर्य

बोध सम्बन्धी अधिकांश तत्व समाहित हैं। कवि जो कुछ भी रचता है वह उसकी प्रतिभा का ही खेल है। उस आनन्द का अनुभव वह स्वयं करता है। जब कवि की अनुभूति अपने व्यक्तिगत क्षेत्र से निकलकर सृजनधर्म का पालन करती हुई रचना के रूप में नर्तन करने लगती है और उसका आनन्दानुभव करने के लिए दूसरा सह्रदय होता है तभी उस कवि की कृति सार्थक होती है। तुलसी के राम सीता के अलौकिक सौन्दर्य को देखकर कहते हैं:– 'जासु विलोक अलौकिक शोभा। सहज पुनीत मोर मन क्षोभा।।' [103]

सौन्दर्य दिव्य और अलौकिक होता है। इसका अवलोकन करने के लिए शिव दृष्टि की आवश्यकता पड़ती है। सौन्दर्य की कोंपल जहाँ भी फूटती है उसका प्रभाव हमारे ह्रदय पर जरूर पड़ता है, और उसकी अनुभूति मात्र से ही हमें आनन्दानुभव होता है। एक स्थल पर रवीन्द्रजी ने लिखा है:–

'जाबार दिने एक इथाटि बले सेन याई।
या देखेछि या पेयेछि तुलना तारनाई।।
एइ ज्योति समुद्र माझे जे रक्तदल पदम्राजे।
तारि मधुपान करेछि धन्य अभिताई।।' [104]

अर्थात जाने के दिन मैं यह बात कहकर जाना चाहता हूँ कि जो कुछ देखा, जो कुछ पाया उसकी किसी से तुलना नहीं की जा सकती। इस ज्योति के समुद्र में जो रक्तदल कमल विराज रहा है , उसके मधु का मैंने पान किया है, इसलिए मैं धन्य हूँ। कवि ने जिस अपूर्व सौन्दर्य का अनुभव किया है और स्वयं को धन्य बताया है, उसी अभूतपूर्व सौन्दर्य का वर्णन कवि ने उपर्युक्त पंक्तियों में किया है। अत: संक्षेप में कहा जा सकता है कि सौन्दर्य से जिस आनन्द की अनुभूति उत्पन्न होती है उसे मापा नहीं जा सकता, तौला नहीं जा सकता। वह प्रत्येक क्षण में अपना अलग ही रूप धारण करता है तथा बुद्धि भी उस सौन्दर्य की थाह नहीं पा सकती। वह उलझकर परेशान हो जाती है। फिर भी उसे आनन्द का आलोक मिलता है, नवीन रहस्यों का उद्घाटन होता है। गायक की उठती हुई तान, चित्रकार की तूलिका एक नवीन और अभूतपूर्व वेदनाओं तथा स्फूर्तियों से आत्मा के सागर को आनन्द से भर देती है। अत: आनन्द की अनुभूति अनन्त, अखण्ड तथा अभूतपूर्व है, यही सौन्दर्य का बोध है।

पाश्चात्य मत:– भारतीय काव्य शास्त्र में जिस तरह सौन्दर्य की आत्मपरक और देहपरक व्याख्याएं उपलब्ध हैं, उसी प्रकार पश्चिमी सौन्दर्य चिन्तन धारा में वस्तुवाद के साथ आत्मवादी चेतना का भी विकास हुआ है। पाश्चात्य दर्शन का विशाल भवन

सुकरात, प्लेटो और अरस्तू के वस्तुवादी चिन्तन की नींव पर निर्मित है। इन्होंने अपनी दृष्टि कला एवं सौन्दर्य के बाह्यरूप पर ही रखी है, किन्तु नव्य अफलातूनवादी जार्ज सेन्टायन, सन्त आगस्टाइन प्रभृति कुछ विद्वानों ने सौन्दर्य के आंतरिक पक्ष पर अपनी दृष्टि रखी है।

ग्रीक चिन्तन :- प्लेटो ने अपने गुरु सुकरात के विचारों को अपनाया है। सुकरात के अनुसार सौन्दर्य का साम्राज्य क्षणभंगुर है। सौन्दर्य में उपयोगितावाद का प्रारम्भ सुकरात ने ही किया। उनके अनुसार- 'वस्तु अपनी उपयोगिता से ही सुन्दर लगती है। निरुपयोगी सौन्दर्य की भी सत्ता हो सकती है इसे मैं स्वीकार नहीं कर सकता।' [105] अनुकरण की अवधारणा भी परवर्ती विचारकों को सुकरात की ही देन है। सुकरात को विश्वास नहीं है कि अदृश्य भावना का भी अनुकरण किया जा सकता है। [106] इस प्रकार सुकरात कलाकार को शिल्पी के समान मूर्त रूपों के अनुकर्ता का पद प्रदान करता है।

प्लेटो ने कला-निरपेक्ष सौन्दर्य को आदर प्रदान किया है। उनके अनुसार- 'शुद्ध सौन्दर्य प्रज्ञा का प्रकाशन है।' [107] तथा- 'सच्चे सौन्दर्य से शुद्ध निस्वार्थ आनन्द की प्राप्ति होती है।' [108] प्लेटो ने अपने सारे विवेचन में सौन्दर्य को कला की दासी बनने से बचाने का महत्वपूर्ण प्रयास किया। यदि यह संभव हो जाता तो शायद सौन्दर्य शास्त्र की वर्तमान भ्रांतियों से रक्षा हो जाती।

अरस्तू सौन्दर्य की उपयोगिता और शिक्षा का माध्यम नैतिकता को मानते थे, इस कारण उन्होंने अपने अलंकारशास्त्र में सौन्दर्य की नैतिकवादी परिभाषा प्रस्तुत की है- 'सौन्दर्य वह श्रेय है जो अपनी श्रेयता के कारण ही सुन्दर है।' [109] सौन्दर्यानुराग को अरस्तू जन्मजात गुण नहीं मानते थे। उनका विश्वास था कि शिक्षा के द्वारा विद्यार्थी में सौन्दर्य वृत्ति उत्पन्न की जा सकती है। [110] उनका विचार था कि अनुकरण सौन्दर्य का आधार है जिसमें आकारों का समीकरण एन्द्रिय बोध को विकसित करना है।

नव्य अफलातूनवादी सौन्दर्य:- नव्य अफलातूनवादी दार्शनिक **प्लाटिनस** सौन्दर्य के वस्तुगत रूप को अस्वीकार नहीं करते किन्तु वे आकार की रचना और सौन्दर्य सृजन दिव्य विचार की कार्यशीलता का फल मानते हैं। उनके अनुसार - 'वस्तुगत समीकरण नहीं अपितु उस समीकरण पर खेलते हुए आध्यात्मिक कान्ति वस्तुगत समीकरण से पूर्णत: पृथक नहीं, किन्तु वास्तविक महत्व इसी का है।' [111]

सन्त आगस्टाइन का विचार है कि- 'सौन्दर्य किसी भी यथार्थ पदार्थ के विभिन्न भागों की वह परस्पर सहमति है जिसमें रंगों की विशिष्ट मधुरता रहती है..... किन्तु यह

मधुरता कितनी महान होगी, यदि उसमें से नैतिक पवित्रता उस प्रकार उद्‌भासित हो जिस प्रकार सूर्य अपने परम पिता के साम्राज्य में चमकता है।' [112] इस प्रकार की आध्यात्मिक शब्दावली का प्रयोग करके सन्त सौन्दर्य की अवधारणा को वस्तुगत से खींचकर रहस्यात्मकता की ओर लिये जा रहे हैं।

शेफ्टस्वरी सौन्दर्य को संसार में निहित चेतना की अभिव्यक्ति कहते हैं। उन्होंने सर्वप्रथम सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् को पश्चिमी जगत में समन्वय करने का प्रयास किया– 'जो सुन्दर है वह सम और सुडोल है, जो सम और सम और सुडोल है वह सत्य है और जो सुन्दर और सत्य है वह अन्ततः शिव है।' [113] शेफ्टस्वरी के इस त्रि–समन्वय का खण्डन करते हुए ह्चेसन ने कहा है कि– 'कला का लक्ष्य सौन्दर्य है और उस सौन्दर्य के परिज्ञान में जो प्रकृति हमारी सहायता करती है, उसका नैतिक बुद्धि से विरोध भी संभव है।' [114] आंग्ल अनुभववादी दार्शनिक डेविड ह्यूम के अनुसार– 'सौन्दर्य उस क्रमबद्धता और विभिन्नताओं में सम्बन्ध निर्माण का नाम है जो या तो हमारी मूल प्रकृति के कारण अथवा संस्कारों के कारण अथवा अकारण ही हमारी आत्मा को आनन्द तथा संतुष्टि प्रदान करता है।' [115]

ह्यूम का यह कथन किसी परिधि तक सत्य ही प्रतीत होता है कि– 'सौन्दर्य बुद्धि के समान ही परिभाषा के बंधन से मुक्त है। केवल रुचि और संवेदनों के द्वारा ही उसे पहचाना जा सकता है।' [116]

बामगार्टन को सौन्दर्य–दर्शन परंपरा में ऐतिहासिक महत्व प्राप्त है। उसी ने सौन्दर्य शास्त्र के लिए सर्वप्रथम एस्थेटिक शब्द का प्रयोग करके क्रमबद्ध मीमांसा का मार्ग प्रशस्त किया था। कला और सौन्दर्य का गठबंधन करने वाला यह नाम (एस्थेटिक) प्रदान करके बामगार्टन ने कला के हित में सौन्दर्य की संभावना को अक्षुण्य बना दिया। कुछ विचारकों की धारण है कि इससे सौन्दर्य भावना का अपकार हुआ है। सौन्दर्य की समस्या इस गठबंधन के परिणामस्वरूप और अधिक उलझ गई और कला विरत सौन्दर्य के सम्बन्ध में विचारों की परंपरा पश्चिम में समाप्तप्रायः हो गई।

बामगार्टन के अनुसार– 'एन्द्रियबोध अर्थात अनुभूति और संवेग की परिपूर्णता ही सौन्दर्य है।' [117] अमरीकी विचारक मेयरस्केपिरो ने सौन्दर्य में परिपूर्णता बोध की पुष्टि में कहा है कि– 'परिपूर्णता,सम्बद्धता और भाव व वस्तु में एकता को सौन्दर्य की एक अनिवार्य स्थिति माना जा सकता है।' [118]

एडमण्ड वर्क और **लार्ड केम्ज** ने सौन्दर्य के क्षेत्र का विस्तार करते हुए उदात्त को भी

उसीमें समाहित कर लिया है। बर्क ने अपने उदात्त और सौन्दर्य नामक प्रबंध में आनन्द की खोज को मानव की मूलवृत्ति के रूप में मान्यता प्रदान की है– 'सौन्दर्य का सम्बन्ध आनन्द वृत्ति से है और आनन्द की खोज मनुष्य की सामाजिक प्रकृति है।' [119] इस प्रकार वर्क ने सौन्दर्य बोध के तन्तु को वस्तु तत्व से खींचकर मनस्तत्व से जोड़ा और सौन्दर्य के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक चिन्तन को प्रेरणा दी। उदात्त और सौन्दर्य की अभिन्नता का प्रतिपादन करते हुए वे 'लान्जाइनस' के ऋणी है।

उदात्त को ही सौन्दर्य का महानतम रूप मानने वालों में **विंकलमैन** का योगदान उल्लेखनीय है। यद्यपि विवेचन अधिक मौलिक नहीं है किन्तु उसकी प्रतिभा में स्वच्छन्दतावाद के कुछ ऐसे बीज निहित थे जिसका प्रतिफलन 'क्रोचे के अभिव्यंजनावाद' में हुआ है। वे उदात्तशैली अथवा ग्रैंडस्टाइल को सौन्दर्य का प्रतीक बताते हुए कहते हैं कि– 'यह ग्रैंडस्टाइल आत्मा के विशिष्ट और सवाक् मौन की अभिव्यंजना है।' [120] सौन्दर्य–सृजन के सम्बन्ध में अपनी अभिव्यंजना सम्बन्धी विचारधारा को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि– 'अभिव्यक्ति के बिना सौन्दर्य व्यक्तित्वविहीन है और सौन्दर्य के बिना अभिव्यक्ति नीरस।' [121]

अठारहवीं सदी के प्रथम दशक तक पश्चिमी सौन्दर्य जगत सौन्दर्य के विषय में अनेक भ्रांतियों को जन्म दे रहा था। जर्मन दार्शनिक कान्ट ने अपनी सूक्ष्म प्रतिभा का प्रयोग करके पूर्ववर्ती भ्रांतियों का निराकरण किया। अत: सौन्दर्यशास्त्र के संस्थापक होने का श्रेय कान्ट को प्रदान किया जाता है। हीगेल का कथन है कि– 'उसने क्रिटीक ऑफ जजमेंट में पहली बार सौन्दर्य के सम्बन्ध में कुछ बुद्धिमतापूर्ण शब्द पाये।' [122] तभी कान्ट को सौन्दर्य शास्त्र के साम्राज्य में महत्वपूर्ण पद पर आसीन करने की घोषणा है।

कान्ट से पहले ही सौन्दर्य की सुखवादी, उपयोगितावादी और बुद्धिवादी विचारधारा पनपने लगी थी। इन तीनों भ्रांतियों का कान्ट ने दृढ़तापूर्वक खंडन किया। उसने सौन्दर्य को एक चित्र की अवस्था माना– 'एन्द्रिय बोध से ऊंचा जो एक भावबोध है सौन्दर्य उसी की अभिव्यंजना है।........और यह अभिव्यंजना प्रतीकात्मक है।' [123] शिलर ने सौन्दर्य के क्षेत्र में वस्तुतत्व और भाव तत्व के समन्वय का मार्ग अपनाया– 'सौन्दर्य को हम इन्द्रियों के माध्यम से ग्रहण करते हैं, अत: वह आकार हैं, अनुभव करते हैं अत: वह जीवन है, संक्षेप में सौन्दर्य हमारी स्थिति भी है क्रिया भी।' [124] शिलर ने गेटे को लिखे पत्र में वस्तु और भाव की इसी परस्पर निर्भरता पर बल दिया था– 'कविता और कला की दो शर्तें हैं, इन्हें यथार्थ के ऊपर भी उठना है तथा ऐन्द्रियता के भीतर भी रहना है।' [125]

शेलिंग का मानना था कि सौन्दर्य व कला के प्रश्न को दर्शन की परिधि में लाकर

उलझा दिया गया है। कला और दर्शन दो विरोधी तत्व हैं– 'कला से यदि उसका वस्तु तत्व छीन लिया जाये तो वह अपना कला तत्व त्याग करके दर्शन बन जायेगी और यदि दर्शन से उसका आत्मतत्व छीन लिया जाये तो वह कला बन जायेगा।' [126] किन्तु वे अपनी सौन्दर्य की परिभाषा में वस्तु तत्व में भाव तत्व को स्वीकृति प्रदान करते हैं– 'सौन्दर्य असीम आकारों में असीम का प्रतिनिधित्व करता है।' [127]

इस अवधि तक पश्चिमी क्षेत्र में सौन्दर्य सम्बन्धी विपुल सामग्री एकत्र हो चुकी थी। किन्तु सौन्दर्य शास्त्र के सुव्यवस्थित निर्माण के लिए एक कुशल शिल्पी की आवश्यकता थी जो समस्त उपादान का उचित उपयोग करके सुदृढ़ भवन का आकार प्रदान करे। हीगेल की प्रतिभा ने यह कार्य अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया और उनका आदर्शवाद एक सर्वोच्च चेतना की आधारभूमि पर स्थित है।– 'सौन्दर्य इसी सर्वोच्च चेतना का हमारी ज्ञानेन्द्रियों के समक्ष प्रकटीकृत रूप है।' [128] प्राकृतिक सौन्दर्य को ही गेल अधिक सम्मान नहीं देते थे– 'केवल आत्मा और तत्सम्बन्धी वस्तुएं ही सुन्दर होती हैं, प्रकृति का सौन्दर्य तो आत्मा के सौन्दय की छाया मात्र है।' [129]

क्रोचे का अभिव्यंजनावादी सौन्दर्यः- सौन्दर्य शास्त्र के क्षेत्र में क्रोचे ने शुद्ध आत्मवादी दृष्टिकोण लेकर पदार्पण किया। वे बाह्यरूप के सौन्दर्य का सर्वथा निषेध करते थे और अभिव्यंजनावादी सौन्दर्य को मान्यता प्रदान करते थे। उनके अनुसार कलाकृति का मस्तिष्क उस कृति में है जो उसका सृजन अथवा पुनः सर्जन करता है। [130]

क्रोचे की दृष्टि में सौन्दर्य का शास्त्रीय निरूपण करना अथवा परिभाषा प्रस्तुत करना भी संभव नहीं है– 'वस्तुओं को सुन्दर कहना एक विरोधाभास है, क्योंकि सौन्दर्य कोई मौलिक तत्व नहीं है। वस्तुओं से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। उसका सम्बन्ध मनुष्य की मानसिक सक्रियता से है, उसकी आत्मिक शक्ति से है।' [131] इस पर भी यदि सौन्दर्य के बाह्य आकारों को कुछ नाम देना ही है तो – 'सफल अभिव्यक्ति को सौन्दर्य कहा जा सकता है।' [132]

अन्य आंग्ल विचारकों के अनुसारः- कलागत सौन्दर्य और प्राकृतिक सौन्दर्य के मध्य जो अन्तराल हीगेल ने उपस्थित कर दिया था उसका समाधान शॉपनहावर ने प्रस्तुत किया। शॉपनहावर उदात्त और सौन्दर्य में कोई अन्तर स्वीकार नहीं करते। उनकी सौन्दर्य सम्बन्धी अवधारण उदात्त की ऊँचाई का स्पर्श करती अनुभव होती है– 'सौन्दर्य हमें जिजीविषा के अभिशाप से मुक्त करता है और हमारे मन को एक उच्च चेतना से सम्पन्न बनाता है।' [133]

कुरूप और सुरूप का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए कुछ विचारकों में दोनों में तात्विक अन्तर को अस्वीकार करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही थी। यद्यपि कला के सौन्दर्य को निखारने में कुरूपता का काफी महत्व है किन्तु फिर भी कुरूपता कभी सुन्दरता नहीं बन सकती। दोनों का यह निश्चित अन्तर कोई भी सौन्दर्यप्रेमी पहचान सकता है। सोलगर ने दोनों के अन्तर पर विशेष बल देते हुए कहा है कि– 'कुरूप सौन्दर्य का विरोधी है और पूरी तरह उससे भिन्न भी।' [134]

रस्किन के अनुसार सौन्दर्य व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है। उनका कथन है कि– 'केवल सौन्दर्य में ही रहना अच्छे स्वास्थ्य का लक्षण नहीं है।' [135] गेटे के अनुसार – 'सौन्दर्य वह आदिम भाव है जो कभी स्वयं प्रकट नहीं होता परन्तु उसका प्रतिबिम्ब सृजनशील मन की सहस्त्रों विधि उक्तियों में उद्भासित होता रहता है और जो इतना ही वैविध्यपूर्ण है जितनी स्वयं प्रकृति।' [136]

गेटे सौन्दर्य को व्याख्या निरपेक्ष अतीन्द्रिय भावदृष्टि मानते हैं जिसकी विविधता कलाकार के अन्तःकरण में उद्भासित होती रहती है।

प्रसिद्ध विचारक **कैरिट** का कथन है– 'सौन्दर्य ऐन्द्रिय बोध वाले विषयों में निवास नहीं करता, बल्कि वह विशिष्टता पर निर्भर करता है।' [137] स्वच्छन्दतावादी अंग्रेज कवियों ने सौन्दर्य के विषय में स्वानुभूति के साक्ष्य पर जो कुछ कहा उसके आलोक में सौन्दर्य एक भाव समृद्धि के रूप में हमारे सामने प्रकट होता है। टामस बैले आल्डिच का विश्वास है कि – 'सौन्दर्य एक शाश्वत सत्ता है।' [138] शैले का मत है कि सौन्दर्य मानव चेतना को अभिभूत करने वाली शक्ति का नाम है और इस अनुभूति के फलस्वरूप बाह्य आकार छाया बिम्बों के समान तिरोहित होने लगते हैं। [139] ब्राउनिंग की मान्यता है कि– 'सरल सौन्दर्य ईश्वर के द्वारा मानव को दी गई श्रेष्ठतम निधि है।' [140] कीट्स की दृष्टि में– 'सौन्दर्य एक स्थाई आनन्द है जो समय के प्रवाह में घटता नहीं, अभिवृद्धि ही प्राप्त करता है।' [141] सैफो ने सुन्दरम् और शिवम् की एकता का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि– 'जो कुछ सुन्दर है वह शिव भी है और जो शिव है वह शीघ्र ही सौन्दर्य को धारण कर लेगा।' [142]

बीसवीं शताब्दी के अधिकतर सौन्दर्यशास्त्री सौन्दर्य की बाह्य सत्ता पर अधिक मुग्ध हैं किन्तु फिर भी कुछ दार्शनिक ऐसे हैं जिन्होंने अपनी विवेचना में सौन्दर्य की विषयपरकता अर्थात अनुभूति पक्ष पर भी अधिक बल दिया है। एल. एबरक्रोम्बे कला और सौन्दर्य शास्त्र के क्षेत्र में बाह्य वस्तुओं के अस्तित्व का पूर्णतया निषेध करते हैं एवं अनुभूति ही उनकी दृष्टि में कला और सौन्दर्य का मूलाधार है। [143]

जॉनड्यूई के अनुसार- 'अनुभूति में व्याप्त गुण ही सौन्दर्य है।' [144] जे. मॉथर ने- 'सौन्दर्य को उच्च मानवीय प्रक्रिया का गुण बताया है।' [145] कला की आध्यात्मिक प्रक्रिया के बाहर भी कहीं सौन्दर्य का अस्तित्व है, बैंचुरी इसे स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार- 'कला का सृजन एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है।' [146] डी.डब्ल्यू.प्राल का कथन है कि- 'सौन्दर्य उन वस्तुओं का गुण है जो हमारे ऐन्द्रियबोध की पकड़ में आ सकें। सौन्दर्य उतना ही विषयगत है जितना कोई भी आकार अथवा रंग हो सकता है।' [147] **टी.एम. ग्रीन** उन्हीं वस्तुओं में सौन्दर्य की स्थिति स्वीकार करते हैं जिनका कोई व्यवस्थि आकार अथवा डिजाइन हो और जो हमें भीतर से संतुष्ट कर सके। [148]

आर.प्राइस के अनुसार – 'निश्चित रूप से स्वयं सौन्दर्य की अपेक्षा क्रम और व्यवस्था को सौन्दर्य का नाम देना अधिक उपयुक्त है।' [149]

इससे स्पष्ट है कि चाहे वस्तुवादी दृष्टिकोण हो या आत्मवादी दृष्टिकोण, किन्तु सौन्दर्य की सत्ता को नकारना संभव नहीं है। शास्त्रीय मीमांसा का विषय बनाने की झोंक में कुछ कलाशास्त्रियों ने उसे अनबूझ पहेली बना दिया है तथा यह विश्वास बल पकड़ता जा रहा है कि सौन्दर्य व शास्त्र अपने-आप में एक असंगति है। आज का सजग विचारक कला व सौन्दर्य के अनिवार्य सम्बन्ध को स्वीकार नहीं करना चाहता, क्योंकि उसे विश्वास है कि सौन्दर्य सम्बन्धी भ्रांतियों का मूल इन दोनों का सम्बन्ध ही है। तालस्ताय ने बहुत पहले कला और सौन्दर्य को एक समरेखा पर रखने से विरोध प्रकट किया था- 'कला की कोई सही परिभाषा नहीं बनाई जा सकती और इसका कारण यह है कि कला की धारणा सौन्दर्य पर आधृत है।' [150] सौन्दर्य का कार्य हमें आनन्द प्रदान करना है, परन्तु वह कला का एकमात्र आधार नहीं हो सकता। वे सौन्दर्य और कला को ही नहीं सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् की विभिन्नता पर भी बल देते थे- 'सौन्दर्य की धारणा शिव से असम्बद्ध है, बल्कि उसकी विरोधी भी है, क्योंकि शिव अधिकतर वासनाओं पर विजय है, जबकि सौन्दर्य हमारी वासनाओं का मूल है.......हम जितना अधिक सौन्दर्य पर समर्पित होते जाते हैं उतना अधिक शिव से दूर होते जाते हैं।......सत्यम् अधिकतर भ्रम का पर्दाफाश करता है और मिथ्या प्रतीति को नष्ट करता है जो कि सौन्दर्य की एक प्रमुख शर्त है। सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् तीन एकदम पृथक शब्दों और विचारों का एक में ग्रथन एकदम असंभव है क्योंकि अर्थ की दृष्टि से तीनों शब्दों का सामंजस्य नहीं है।' [151] आज का पश्चिमी विचारक सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् के समन्वय को एक भाषायी झमेला कहकर अस्वीकार करने लगा है। **टी.एस. मूर** का कथन है कि- 'सौन्दर्य, सौन्दर्य है, शिव, शिव

है अथवा जैसे पीला, पीला है।'[152] प्रसिद्ध काव्यशास्त्री **आई.ए. रिचर्ड्स** काव्य तथा कलागत सौन्दर्य में सत्य की खोज की निरर्थकता सिद्ध करते हैं- 'कविता भाषा का भावात्मक प्रयोग करती है। प्रत्यक्षतः अधिकांश कविता का कलेवर ऐसी उक्तियों से बनता है जिनकी सत्यता की जांच करने का प्रयत्न अत्यन्त मूर्ख मनुष्य ही करेंगे। काव्य-सत्य ऐसी वस्तुएँ हैं ही नहीं जिनकी जांच की जा सके।'[153] इस प्रकार प्राच्य कलाएं जैसी भी हैं उसी रूप में रूपायित करने का प्रयत्न करती हैं।

पौर्वात्य मतः- 'भारतीय सौन्दर्य दृष्टि व्यंजना प्रधान है। यह वस्तु या रूप को ही सब कुछ नहीं मानती। रूप या वस्तु तो सौन्दर्य के वाहक मात्र हैं। कलायें व्यंजनापूर्ण होकर भी सार्थक होती हैं। इसलिए भारतीय सौन्दर्यबोध प्रतीकों पर आधारित है। रूप के द्वारा ही अरूप की व्यंजना करने में ही इसकी सार्थकता है। यहाँ खण्ड-खण्ड सौन्दर्य एक अखण्ड पीठ पर आधारित है, सजीव है, एक ही तत्व से स्फुरित है।'[154] श्री अरविन्द के अनुसार- 'एक महती कला वस्तुओं के बौद्धिक सत्य का ही प्रतिनिधित्व करके संतुष्ट नहीं होती। वह एक ऐसे गहनतर तथा मौलिक सत्य की खोज करती है जो केवल इन्द्रियों अथवा तर्कबुद्धि की दृष्टि से छूट जाता है। वह उसके अन्तर की आत्मा होता है। वह एक ऐसा अदृश्य सत्य होता है जो उसके बाह्य रूप अथवा प्रक्रिया की नहीं वरन् आत्मा की वस्तु होता है।'[155] श्री अरविन्द सौन्दर्य की खोज को मानव की सहज प्रवृत्ति मानते हैं- 'इसका निवास हमारे जीवन की जड़ों में होता है। यह खोज प्रारम्भ से लेकर अन्त तक एक निश्चित लक्ष्य की ओर गतिशील रहती है। इसके माध्यम से हमारी आत्मा परम सुन्दर तक पहुंचना चाहती है। जब वह इस वैश्व परम सौन्दर्य का, सौन्दर्य की इस आत्मा का, किसी भी छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी चीज में इसकी अभिव्यक्ति के भाव का, चाहे वह एक पुष्प या रूप का ही सौन्दर्य हो और चाहे वह किसी चरित्र, कर्म, घटना, मनुष्यजीवन, कूची या छेनी के स्पर्श अथवा मन की ज्योति का तथा सूर्यास्त के रंगो या तूफान की महत्ता का सौन्दर्य और बल हो- संस्पर्श प्राप्त कर सकता है। केवल तभी हमारे अन्दर की सौन्दर्य भावना वास्तविक एवं पूर्ण रूप से संतुष्ट होती है।'[156]

मानवीय कलाओं के वैशिष्ट्य का **डॉ. आनन्द कुमार स्वामी** ने स्पष्टता से विवेचन किया है। उनके अनुसार- 'भारतीय कलाओं का वैशिष्ट्य भारतीय जीवन दर्शन का ही एक अंग है और भारतीय जीवन दृष्टि-दर्शन पर आधारित है। भारत ने जीवन के लक्ष्य और उसके अर्थ को समझने के लिए लगातार घोर परिश्रम किया है। यूरोप के लिए दर्शन ही सब कुछ है जबकि भारत के लिए दर्शन जीवन के लक्ष्य को समझने और सत्य से

साक्षात्कार का एक साधन मात्र है।' [157] डॉ. विमल कुमार के अनुसार – 'सौन्दर्य शास्त्र काव्य शास्त्र का ही विकसित एवं कला-चैतन्य समन्वित रूप है।' [158] डॉ. निर्मला जैन ने भी इसी मान्यता को बल प्रदान किया है- 'वस्तुतः रस सिद्धान्त भी भारतीय मनीषा द्वारा निर्मित और विकसित सौन्दर्य शास्त्र ही है।' [159]

भारतेन्दु और द्विवेदीजी के समय में साहित्य और कला के समक्ष सौन्दर्य सृजन का महान लक्ष्य नहीं था। उस युग का कवि कला और काव्य का प्रयोग वर्तमान परिस्थितियों से जूझने के लिए एक शस्त्र के रूप में कर रहा था। तात्पर्य यह नहीं कि उस युग की कविताएं व रचनायें नीरस थीं। भारतेन्दु कहते हैं कि- 'नाटकों में सौन्दर्य की रक्षा हेतु विरोधी रसों को बचाना भी बहुत आवश्यक कार्य है, अन्यथा होने से कवि का मुख्य उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है।' [160] अतः भारतेन्दु कवि का मुख्य उद्देश्य सौन्दर्य सृजन को ही मानते हैं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि सौन्दर्य पर यदा-कदा ही अटकती थी। उन्हें सपाट उपदेशात्मक, उपयोगी काव्य रूप रुचिकर थे, किन्तु रसज्ञ-रंजन में वे रस की चर्चा 'अर्थ-सौरम्य' के नाम से करते हैं- 'अर्थ-सौरम्य ही कविता का प्राण है।'[161] **श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय** ने 'कवि को सौन्दर्य का उपासक, भाव का भूखा तथा रस का रसिक कहा है।' [162] आचार्य दास ने रस-रमणीयता तथा सौन्दर्य की समान धर्मिता का प्रतिपादन किया है- 'रस की उत्पत्ति का अर्थ है एक आनन्दपूर्ण मानसिक अवस्था का उत्पन्न होना। रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द काव्य है। यह परिभाषा रस-गंगाधर नामक ग्रंथ की है। रमणीय अर्थ का आशय है सौन्दर्य का पाठक या श्रोता के मन में आनन्द उत्पन्न करना।' [163]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार रस आत्मा की मुक्तावस्था है और सौन्दर्य को वे रस से अभिन्न मानते हैं- 'कुछ रूप-रंग की वस्तुएं हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती हैं कि उनका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना में परिणत हो जाते हैं। हमारी अन्तःसत्ता की तदाकार परिणित ही सौन्दर्य की अनुभूति है।' [164]

शुक्लजी की इस परिभाषा से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे वे सौन्दर्य के वस्तुपक्ष पर अधिक बल दे रहे हों। समीक्षक होने के अतिरिक्त वे उच्चकोटि के कवि तथा चित्रकार भी थे। कला और आधुनिक प्रवृत्तियों में उन्होंने सौन्दर्य के विषय में अधिक सूक्ष्मता से विचार किया है। इस निबन्ध में उन्होंने आत्मवादी और देहवादी दोनों का समन्वय प्रस्तुत किया है- 'सौन्दर्य बाह्यरूपों में भी होता है और दर्शक के मन में भी......; सुन्दरता मनःस्थिति पर निर्भर करती है।' [165]

बाबू गुलाबराय के अनुसार – 'सौन्दर्य भावक्षेत्र का समन्य है....सौन्दर्य रस का वस्तु पक्ष है।' [166] सौन्दर्य की वस्तुगत अभिव्यंजना को भरत ने भी रस ही कहा था और उससे प्राप्त आनन्द को जीवन की महानतम सिद्धि। सौन्दर्य सृजन को गुलाबराय कवि तथा कलाकार का दायित्व मानते हैं– 'सौन्दर्य की सृष्टि करना कवि व कलाकार का काम है। संसार में इस सौन्दर्य की कमी नहीं। कलाकार इस सौन्दर्य पर अपनी प्रतिभा का आलोक ढालकर इसे जनता के लिए सुलभ और ग्राह्य बना देता है।' [167]

वस्तुतः बंगला तथा आंग्ल साहित्य के प्रभाव से हिन्दी में भी मानवतावाद को समस्त सौन्दर्य का आधार कहा जाने लगा। स्वयं 'रस–सिद्धान्त' भी मानवतावाद की दृढ़ भूमि पर स्थित है। **रवीन्द्रनाथ ठाकुर** ने सौन्दर्य को नवीन मानवतावाद की रक्षा तथा निर्वाह में सहायक बताया है। सच्चा मानवतावाद व्यक्ति के अहं का विसर्जन, मनोवृत्तियों का संयमन तथा शालीनता का ग्रहण ही है। सौन्दर्य साधना में इन सब लक्ष्यों को सरलता से पाया जा सकता है– 'सौन्दर्य ने जगत के साथ हमारे सम्बन्ध को प्रयोजन का सम्बन्ध न बनाकर आनन्द का सम्बन्ध बना दिया है।' [168] रवीन्द्रनाथ के अनुसार सौन्दर्य हमारी आत्मा को शेष जगत के साथ जोड़ता है। सौन्दर्य से प्रेरित इस सम्बन्ध का आधार आनन्द है, प्रयोजन नहीं।

डॉ. नगेन्द्र ने इसी समन्वय को चित्तवृत्तियों की अन्वित कहा है। सौन्दर्य हमारी बिखरी हुई चित्तवृत्तियों को एकसूत्रता प्रदान करता है– 'वास्तव में अपने व्यापक अर्थ में रस सौन्दर्य का ही पर्याय है। सौन्दर्य अपने तत्वरूप में रमणीय अर्थबोध का ही नाम है– और रमणीयता वह है जिसमें सहृदय का चित्त रमण करे अर्थात जो उसकी आनन्द चेतना का विषय हो। इस प्रकार सौन्दर्य की कल्पना रस के बिना नहीं हो सकती। सुन्दर और सरस में भेद नहीं किया जा सकता।' [169] रस और सौन्दर्य की अभिन्नता के साथ–साथ डॉ. नगेन्द्र यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि – 'रसवाद का आधार व्यापक रूप से मानवतावाद ही है।' [170]

इसी मानवतावाद ने काव्य के क्षेत्र में छायावाद को अवतरित किया। छायावाद की सौन्दर्यचेतना में मानवतावाद का स्वर घुल–मिल गया। छायावाद के व्याख्याता **आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी** ने सौन्दर्य और मानवता को एक ही कोटि में रखा– 'प्रयोजन से अतीत पदार्थ का नाम सौन्दर्य है, प्रेम है, भक्ति है, मनुष्यता है।' [171] उन्होंने मानवता के उच्च मूल्यों में सौन्दर्य को मूर्धन्य स्थान प्रदान किया साथ ही उसे रस के समान प्रयोजनातीत कहकर रस और सौन्दर्य की अभिन्नतो को भी स्वीकार किया है। उनके

अनुसार सौन्दर्य तत्व भी नित्य शाश्वत तथा सार्वजनीन है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सौन्दर्य चर्चा करते समय उसे कवि की मूल प्रेरक शक्ति कहते हैं। साथ ही सौन्दर्य वस्तु में न होकर व्यक्ति की अपनी रुचि में ही है, ऐसा उनका दृढ़ विश्वास है– 'कवि सौन्दर्य से प्रेरणा पाता है लेकिन दो व्यक्ति किसी एक वस्तु के सौन्दर्य की मात्रा पर शायद ही एकमत हों। स्पिनोजा ने कहा था कि कोई वस्तु सुन्दर है, इसलिए वह सुन्दर होती है। अर्थात सौन्दर्य हमारी रचना है, जिसकों हम चाहते हैं वह सुन्दर है।' [172] **जैनेन्द्र** भी सौन्दर्य को नितान्त व्यक्तिगत अनुभूति मानते हैं। वे सौन्दर्य के स्थान पर रूप शब्द का प्रयोग करते हैं– 'रूप तो देखने वालों की आँखों में है, वैसे वह कहीं नहीं है, अध्यापक के लिए जो लड़की निकम्मी है, प्रेमी के लिए वह अप्सरा है। [173]

डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा रस को सौन्दर्यानुभूति के पर्याय के रूप में मान्यता प्रदान करते हैं– 'वास्तव में सौन्दर्य कोई ठोस वस्तु नहीं है, उसका तत्व रसास्वाद की क्रिया है।' [174] सौन्दर्य की इन व्याख्याओं का निष्कर्ष है– 'सौन्दर्य हमारे जीन में अणु-अणु में व्याप्त है। वह हमारी आत्मा की अनुभूति होने के कारण प्रेम, विश्वास तथा श्रद्धा आदि की भांति तात्विक विश्लेषण की वस्तु नहीं।' अतः– 'सौन्दर्य आत्मा की सरलतम अनुभूति है, वह अपनी ही चरम और सरल अवस्था अनुभव है।' [175]

डॉ. शिवदान सिंह चौहान के अनुसार–'संतुलन की संपूर्णता को व्यापक अर्थों में सौन्दर्य बोध कह सकते हैं।' [176] महादेवी वर्मा को विश्वास है कि सौन्दर्य हमारे ह्रदय को उल्लास से आन्दोलित कर देता है तथा अखण्ड सामंजस्य का द्वार हमारे अन्तर्जगत में खोल देता है– 'यदि एक सौन्दर्य अंश या सामंजस्य खण्ड हमारे सामने किसी व्यापक या अखण्ड सामंजस्य का द्वार नहीं खोल देता तो हमारे ह्रदय का उल्लास से आन्दोलित हो उठना सम्भव नहीं।' [177]

जयशंकर प्रसाद ने सौन्दर्य को मानव चेतना का उज्ज्वल वरदान कहा है। उनकी दृष्टि में जीवन और जगत के सभी सुन्दर सपनों का आधार सौन्दर्य बोध ही है। [178] उन्होंने सौन्दर्य की तन्द्रिल तहों के झीने आवरण को रहस्यात्मकता प्रदान की है। [179] प्रसादजी आनन्द को जीवन का लक्ष्य मानते हैं और आनन्द के उच्च लक्ष्य तक पहुंचने के लिए व्यक्ति को सौन्दर्य पथ का पथिक बनना होता है।

डॉ. छोटेलाल दीक्षित ने वर्तमान साहित्य की परख सौन्दर्य के आधार पर करने का आग्रह किया है। जिस प्रकार रस अपने आप में पूर्ण तथा अखण्ड है उसी प्रकार मानव की सौन्दर्यानुभूति भी पूर्ण है। वे रस और सौन्दर्य की अपृथकता पर बल देते हैं– 'सौन्दर्य

पूर्णता की खेज है एवं यह सत्यम् और शिवम् से अभिन्न है।' [180]

डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय सौन्दर्य के वस्तुपक्ष को ही प्रामाणिक सत्य मानते हैं- 'सौन्दर्य एक प्रकार बोध है जो हमें सुन्दर वस्तु कृति को देखकर होता है। यदि वस्तु नहीं है तो सौन्दर्य भी नहीं है।' [181] डॉ. नामवरसिंह ने छायावादी सौन्दर्य चेतना पर विचार करते समय इसी ओर संकेत किया है- 'रूप-विन्यास तो आंतरिक सौन्दर्य भावना का परिणाम होता है।' [182] डॉ. उपाध्याय से भी अधिक वस्तुवादी स्वर डॉ. रामविलास शर्मा का है- 'रस न तो अलौकिक है और न सुखण्ड। साहित्य में अमर सौन्दर्य, अखण्ड और अलौकिक रस की चर्चा व्यर्थ है।' [183]

वस्तुतः **डॉ. रामविलास शर्मा** की सौन्दर्य सम्बन्धी भावना भी अन्य विषयों की भांति भौतिकवाद के स्थूल तत्वों पर आधारित है, अतः उनकी समीक्षा में रस और सौन्दर्य जैसे अनुभूतिपरक तत्वों के लिए अवकाश नहीं है।

नई कविता के प्रतिनिधि समीक्षक और सृष्टा श्री अज्ञेय सौन्दर्य चेतना को अत्यन्त व्यापक तथा गत्यात्मक चेतना के रूप में स्वीकार करते हैं- 'सौन्दर्य को केवल मधुर कोमल में सीमित कर देना अत्यन्त संकुचित दृष्टिकोण का परिचायक है। सौन्दर्य चेतना एक व्यापक चेतना है और गत्यात्मक भी, जो परिस्थिति के अनुरूप विकसित होती रहती है। जिस प्रकार मधुर कोमल उसका रूप है उसी प्रकार अनगढ़ और परुष भी।' [184]

नई समीक्षा में सौन्दर्य को एक उच्च नैतिक मूल्य के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। श्री अज्ञेय का कथन इस सम्बन्ध में उद्धरणीय है-'उच्च कोटि का नैतिक बोध और उच्च कोटि का सौन्दर्य बोध कम से कम कृतिकार के साथ-साथ चलते हैं।' [185] कलाकार का नैतिक बोध सुधार, उपयोग अथवा उपदेश से स्वतंत्र पवित्र दृष्टि और सुसंस्कृत अभिरुचि का द्योतक है। सौन्दर्य के साक्षात्कार के लिए डॉ. रवीन्द्रनाथ के शब्दों में सर्जक और भोक्ता दोनों में ही इस नैतिक बोध की सत्ता अनिवार्य होती है- 'विश्व के समस्त सौन्दर्य महिमा के अन्तःपुर में जो सती लक्ष्मी विराज रही है, वे हमारे सामने ही हैं, किन्तु पवित्र हुए बिना हम उन्हें हम देख न पायेंगे......। यदि सौन्दर्य का उपभोग करना चाहो तो लालसा का दमन करके, पवित्र होकर, शान्त होकर करो।' [186] जब सूर्योदय और विद्युत सौन्दर्य का साक्षात् अनुभव कल्पना-स्मृति और विचार भावना को जन्म न देकर अपने विशेष गुणों के द्वारा रस उत्पन्न करते हैं तब हमारे जगत की साधारण वस्तुएं भी आनन्द का सागर प्रतीत होने लगती हैं। उस समय इसे हम सुन्दर कहते हैं। सुन्दर वस्तुओं के सौन्दर्य से हृदय प्रसन्न होता है, जीवन की गति कुछ समय के लिए स्थगित हो जाती है,

शरीर की प्राणालिकाओं में नवीन रस संचार हेने लगता है, आनन्द के आँसू उमड़ पड़ते हैं। यह अनुभूति किसी वस्तु की अनुभूति से उत्पन्न आनन्द का नाम है।

अतः सौन्दर्य व्यापक एवं महत्वपूर्ण है। सौन्दर्य बोध से हृदय सरस और जीवन उन्नत होता है। मन की नवीन चेतना और कल्पना को सजीवता प्राप्त होती है। रचनात्मक शक्ति व कला का जन्म होता है, वस्तुतः इस व्यवस्थित विचारमाला को ही सौन्दर्य कहते हैं।

निष्कर्षतः **डॉ. राजकुमारी** के स्वर में स्वर मिलाकर मैं कह सकती हूँ कि भारतीय और अभारतीय दोनों सौन्दर्य चिन्तन ने प्रतिभा के प्रकाश से सौन्दर्य के देह पक्ष और आत्म पक्ष दोनों को पूर्ण रूप से नहीं किन्तु आंशिक रूप से अवश्य आलोकित किया है। अपनी आध्यात्मिक चिन्तन शैली के फलस्वरूप भारत में सौन्दर्य को रस की संज्ञा प्रदान की गई है और उसे आत्मा का आनन्दास्वाद कहा गया। पश्चिम में यथार्थवाद के मोह ने सौन्दर्य को 'ब्यूटी' की संज्ञा प्रदान की जो इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त सुखबोध का दूसरा नाम है। पश्चिमी दर्शन में सौन्दर्य में मूलतः एक बोध है जो हमें ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त होता है। पूर्व में सौन्दर्य एक (रस) अनुभूति है, जो मनुष्य की आत्मा को लौकिक सुख-दुःख से मुक्त करती है। कलागत सौन्दर्य को आकार प्रदान करते वक्त कलाकार में जो विशेष शक्ति अनिवार्य है उसे भारतीय काव्य शास्त्र 'प्रतिभा' कहता है। प्रतिभा का आशय है- 'आत्मा का विशेष चेतना शक्ति से आलोकित हो उठना।' पश्चिम में प्रतिभा के स्थान पर 'जीनियस' शब्द का प्रयोग होता है। जीनियस मूलतः प्रेत शक्ति अथवा प्रतात्मा को कहते हैं जो व्यक्ति को अपने पंजे में जकड़कर इस प्रकार कार्य कराती है जैसे व्यक्ति अपने होश-हवाश में नहीं है, अपने से बाहर है या पागल हो गया है। आज पश्चिम में कलाकार के बारे में इस प्रकार की बातें होती हैं कि 'वह अपनी जीनियस के चंगुल में है' अथवा 'वह एक पागल जीनियस है।' [187] अपने मूल अर्थ में जीनियस चाहे जो हो आज उसने आरम्भिक अभिप्राय को त्यागकर प्रतिभा का रूप धारण कर लिया है। विभिन्न प्रकार की शब्दावली के प्रयोग से दोनों के मार्ग भिन्न प्रतीत होते हैं किन्तु मानव आत्मा का मूल तन्तु तो दोनों में एक ही है। दोनों विभिन्न काल और विभिन्न दिशाओं में भ्रमणकर एक ही केन्द्रबिन्दु पर ठहर जाते हैं। यदि समन्वित दृष्टिकोण अपनाया जाये तो सौन्दर्य एक चेतना है, जो आंशिक रूप से हमारे इन्द्रियबोध, रुचि, संस्कार तथा संसर्ग बोध का फल है। वह एक ऐसा संश्लिष्ट भाव है जो विरोधी वृत्तियों को अन्वित करके मानव आत्मा को आनन्द से अभिभूत करने की क्षमता से सम्पन्न है। सौन्दर्य से प्राप्त होने वाला आनन्द निश्चय ही निस्वार्थ है और वह किसी पूर्व निश्चय का फल नहीं है।

संदर्भ सूची

1. काव्यलोचन में सौन्दर्य दृष्टि, डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, पृष्ठ 217
2. काव्यलोचन में सौन्दर्य दृष्टि, डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, पृष्ठ 215
3. यो वाधते ददाति सुनर वसु स धत्ते आक्षित श्रव (ऋ ग्वेद 1.4.4)
4. अयो महिव्यक्षति चक्षसे तयो ज्योतिष्कणोति सू नरी (ऋ ग्वेद 7.81.1)
5. चेम्बर्स ट्वेन्टीएथ सेन्चुरी डिक्शनरी (संस्करण 1954) पृष्ठ 10
6. कला क्या है : तालस्ताय (रूपान्तरकार - इन्दुकांत शुक्ल) पृष्ठ 51
7. चिन्तामणि भाग-1, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 224-225
8. रस सिद्धान्त, डॉ. नगेन्द्र , पृष्ठ 336
9. सम्मेलन पत्रिका, 6 पौष, ज्येष्ठ, शक सं. 1891, डॉ. छोटेलाल दीक्षित
10. दीपशिखा, भूमिका, महादेवी वर्मा, पृष्ठ 11
11. निराला की सौन्दर्य चेतना, अंजु शर्मा, पृष्ठ 29
12. छायावाद का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन, डॉ. कुमार विमल,पृष्ठ 110
13. निराला की सौन्दर्य चेतना, अंजु शर्मा, पृष्ठ 35-36
14. अनुसंधान और आलोचना, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ 15
15. त्वद्विश्वा सुगम सौमगान्याग्ने वियन्ति वनिनो न वया:
    श्रष्यृ रयिवृा जो वृत्त तुर्ये दिवो वृष्टि रीदयोरी तिरिमण। (ऋ ग्वेद सायण भाष्य,पृष्ठ 6.13.1)
16. आनन्दवेद, अरविन्द
17. यो न पितरो हत्सु पीतः अमृत्योमर्त्या अविवेश (ऋ ग्वेद सायणभाष्य, पृष्ठ 12)
20. सत्यम् श्री ज्योति सोमः (ऋ ग्वेद सायणभाष्य, पृष्ठ 9.113.9)
21. श्रीवैं सोमः (शतपथ 1.3.9)
22. रसो वै सः हयेवामं लब्धनानन्दी भवति (तैत्तिरियोपनिषद)
23. हिन्दी शब्द सागर, भाग-4, संपादक-श्यामसुन्दर दास, पृष्ठ 305
24. वाचो मधु पृथ्वी देहि मध्यम (ऋ ग्वेद पृष्ठ 12.1.16)
25. मधुमय वसंत जीवन वन के ....(कामायनी, काम सर्ग), जयशंकर प्रसाद
26. हिन्दी अनुशीलन (धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक), मई 1960 , पृष्ठ 337
27. हिन्दी अनुशीलन (धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक), मई 1960 , पृष्ठ 421
28. यथा बीजाद भवेदं वृक्षों, वृक्षात् पुष्पं फलं यथा
    तथा मूलो रसो सर्वे तेग्योः भाव्य वस्थिता। (नाट्यशास्त्र, षष्ठोपध्याय, श्लोक 10-12)
29. हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम्, भूमिका, डॉ. नगेन्द्र , पृष्ठ 65
30. साहित्य और कला, डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा , पृष्ठ 56
31. तेन रस एव वस्तुतः आत्मा, सस्त्वलंकार ध्वनि तु सर्वथां रस प्रति पर्यवस्येते। (ध्वन्यालोक लोचन,पृ. 86)
32. दुष्टपूर्वाः अपिह्यर्थाः काव्ये रस-परिगृहात
    सर्वे नवा इव भान्ति मधुमास इव द्रुमा। (ध्वन्यालोक 419)
33. तस्य विशेषे रस वेश वैशद्य सौन्दर्य काव्य निर्माण क्षनत्वन् (ध्वन्यालोक)
34. अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापतिः।
    ययस्मे रोचते विश्व तपेव परिवर्तते॥ (ध्वन्यालोक , पृष्ठ 5.30)
35. सहृदय हृदयाहल्लादि शब्दार्थ मयत्वमेव काव्य लक्षणम् । (ध्वन्यालोक , पृष्ठ 23)
36. सुकुमारता हि वैमल्यापार पर्याय । (अभिनव भारती, भाग-2, पृष्ठ 339)
37. सत्वोदेकाद खण्ड स्वप्रकाशानन्द चिन्मयः ।

स्वाकार वदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः ॥ (साहित्य दर्पण , विमलटीका, 312-3)
38. रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्द काव्यम्। (जगन्नाथ, रस गंगाधर , पृष्ठ 10)
39. रमणीयता च लोकोत्तरा हलादजनक ज्ञान गोचरता। (जगन्नाथ, रस गंगाधर , पृष्ठ 10)
40. सौन्दर्यमलंकाराः (भामह काव्यालंकार)
41. वक्राभिधेय शब्दोक्ति वाचां त्वलङ्कृति।
सौन्दर्यभलंकारः भामह काव्यालंकार -13.26
42. हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम् , डॉ. नगेन्द्र , भूमिका , पृष्ठ 12
43. विशिष्टापद रचना रीतिः , काव्यालंकार सूत्र 1.2.7
44. कवेः कर्म काव्यम् , हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम् , वृत्ति 1.2
45. स्वभावः मूर्हिनः वर्तते , हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम् , वृत्ति 1.2
46. शब्दार्थों सहितौ वक्र कविं व्यापार शालिनि,
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यत द्विदाह्लाद कारिणि। (हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम् , वृत्ति 1.2)
47. व्यवहार परिस्पन्द सौन्दर्य व्यवहारिणिः,
सत्कामा धगमादेव नूतनो चित्य मापेत। (हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम् , वृत्ति 1.4)
48. निरन्तर सोद्गार गर्भ सन्दर्भ निर्भरा
गिरिः कवीनाम् जीवन्ति न कथामात्र आश्रिता। (हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम् , वृत्ति 4.11)
49. साहित्य शास्त्र का पारिभाषिक शब्दकोश , राजेन्द्र द्विवेदी , पृष्ठ 197
50. पन्त की सौन्दर्य चेतना का विकास (सौन्दर्य चेतना : एक विकास), राजकुमारी ,पृष्ठ 21
51. काव्य में सौन्दर्य और उदात्त तत्व , शिवबालक राय , पृष्ठ 102
52. काव्य में उदात्त तत्व , डॉ. नगेन्द्र ,पृष्ठ 44, 52, 53
53. उदात्त : सिद्धान्त और शिल्पन , प्रो. जगदीश पाण्डेय , पृष्ठ 1
54. तच्च संस्मृस्य संस्मृस्य रूपमत्यद्भुतं हरेः
विष्मयो में महाराजन्हष्यामि च पुनः पुनः। (श्रीमद्भगवत् गीता)
55. उदात्त : सिद्धान्त और शिल्पन , प्रो. जगदीश पाण्डेय , पृष्ठ 1
56. श्रीमद्भगवत् गीता, 6.45
57. रूपोच्चयेन विधिना मनसा कृतानु । (अभिज्ञान शाकुन्तलाम्, अंक 2)
58. घृत क्षीर द्राक्षा मधु मधुरिमा कैरपिपदेः
विशिष्यानात्येयो भवति रसना मात्र विषयः
तथा ते सौन्दर्यपरम् शिव दृङ्मात्र विषयः
कथाकारः ब्रूमः सकल निगमागम गोचर गुणे। (शंकराचार्य)
59. स्मित ज्योत्सनामिस्ते धवलयति विश्वं शशीमुखी
दृशते पीयूष द्रवभिव विमुचन्ति परितः
वपुस्ते लावण्यम् किरति मधुरम् दिक्षु तदिदं
कुतस्ते पारुस्यम् सतनु माद्य गुणितम् । (धनञ्जय : दशरूपक 4. 43)
60. चिन्तामणि भाग-1 , आचार्य रामचन्द्र शुक्ल , पृष्ठ 5
61. नारद भक्ति सूत्र , सूत्र सं. 82
62. चिन्तन-अनुचिन्तन , भगतसिंह राजुरकर , पृष्ठ 80
63. विद्यापति पदावली
64. कबीर
65. पद्मावत् मानसरोदक खंड , पृष्ठ 110
66. रामचरित मानस
67. सूरसागर

68. रस-विलास , देव
69. मतिराम
70. बिहारी सतसई
71. नाट्यशास्त्र , भरत , 1-116
72. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र , केसी पाण्डेय
73. व्हाट इज आर्ट , टालस्टाय , पृष्ठ 95
74. व्हाट इज आर्ट , टालस्टाय , पृष्ठ 95
75. व्हाट इज आर्ट , टालस्टाय , पृष्ठ 95
76. व्हाट इज आर्ट , टालस्टाय , पृष्ठ 95
77. द मीनिंग ऑफ ब्यूटी एरिक निउटन , पृष्ठ 28-50
78. चिदम्बरा , सुमित्रानन्दन पंत , भूमिका भाग, पृष्ठ 19
79. निराला की सौन्दर्य चेतना , अंजु शर्मा , पृष्ठ 24
80. साहित्य शास्त्र , डॉ. रामकुमार वर्मा , पृष्ठ 18
81. छायावादी कवियों का सौन्दर्य विधान , डॉ. सूर्यप्रकाश दीक्षित ,पृष्ठ 35.70.228
82. जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला , डॉ. रामेश्वर खण्डेलवाल , पृष्ठ 290
83. कालिदास की लालित्य योजना , आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 55
84. विद्यापति का सौन्दर्य बोध , डॉ. रामसृजन पाण्डेय ,पृष्ठ 2
85. गीता : अध्याय-11 , श्लोक सं. 8
86. दिव्य जीवन : प्रथम ग्रंथ , श्री अरविन्द साहित्य संग्रह-1970, पृष्ठ 73
87. जीवन की आध्यात्मिक दृष्टि, डॉ. राधकृष्णन (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ 201
88. साहित्य और सौन्दर्यबोध (रवीन्द्र और निराला के संदर्भ में), डॉ. रामशंकर द्विवेदी ,पृष्ठ 140
89. साहित्य और सौन्दर्यबोध (रवीन्द्र और निराला के संदर्भ में), डॉ. द्विवेदी ,पृष्ठ 140
90. रस मीमांसा , आचार्य शुक्ल , पृष्ठ 213
91. सत्यम् शिवम् सुन्दरम् , डॉ. रामानन्द तिवारी ,पृष्ठ 945
92. सत्यम् शिवम् सुन्दरम् , डॉ. रामानन्द तिवारी ,पृष्ठ 848
93. रस मीमांसा , आचार्य शुक्ल , पृष्ठ 211
94. दिव्य जीवन , द्वितीय ग्रंथ , श्री अरविन्द , पृष्ठ 49
95. रस और रसास्वादन , हरद्वारी लाल शर्मा , पृष्ठ 83
96. रस और रसास्वादन , हरद्वारी लाल शर्मा , पृष्ठ 86
97. सत्यम् शिवम् सुन्दरम् , डॉ. रामानन्द तिवारी ,पृष्ठ 879-880
98. साहित्य और सौन्दर्यबोध (रवीन्द्र और निराला के संदर्भ में), डॉ. रामशंकर द्विवेदी ,पृष्ठ 144
99. साहित्य और सौन्दर्यबोध (रवीन्द्र और निराला के संदर्भ में), डॉ. रामशंकर द्विवेदी ,पृष्ठ 149-150
100.सौन्दर्य तत्व , डॉ. दासगुप्ता , अनुवाद डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित ,पृष्ठ 102
101. रस और रसास्वादन , हरद्वारीलाल शर्मा, पृष्ठ 175
102. ललिता सहस्रनाम
103. रामचरित मानस , पुष्पवाटिका प्रसंग
104. गीतांजलि , रवीन्द्रनाथ टैगोर
105. हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स , बर्नाड वोसान्क्विट , लन्दन-1949, पृष्ठ 45
106. हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स , बर्नाड वोसान्क्विट , लन्दन-1949, पृष्ठ 49
107. हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स , बर्नाड वोसान्क्विट , लन्दन-1949, पृष्ठ 45
108. हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स , बर्नाड वोसान्क्विट , लन्दन-1949, पृष्ठ 50-51
109. हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स , बर्नाड वोसान्क्विट , लन्दन-1949, पृष्ठ 63

110. कोटिड बाइ बर्नाड वोसान्क्विट इन हिज हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स ऑन पेज 63
111. कोटिड बाइ बर्नाड वोसान्क्विट इन हिज हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स ऑन पेज 116
112. कोटिड बाइ बर्नाड वोसान्क्विट इन हिज हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स ऑन पेज 136
113. फिलॉसफी ऑफ द ब्यूटीफुल , विलियम नाइट , पार्ट 1, पृष्ठ 165
114. क्रिटिकल हिस्ट्री ऑफ द एस्थेटिक्स , स्कॉलर , पृष्ठ 286
115. हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स , बर्नाड वोसान्क्विट , लन्दन-1949, पृष्ठ 179
116. हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स , बर्नाड वोसान्क्विट , लन्दन-1949, पृष्ठ 179
117. पंत की सौन्दर्य चेतना का विकास, डॉ. राजकुमारी ,पृष्ठ 28
118. आर्ट एण्ड फिलॉसफी , ए सिम्पोजियम , एडीटर-सिडनी हुक ,पृष्ठ 3
119. कोटिड बाइ बर्नाड वोसान्क्विट इन हिज हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स ऑन पेज 203
120. हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स , बर्नाड वोसान्क्विट , लन्दन-1949, पृष्ठ 178
121. पंत की सौन्दर्य चेतना का विकास, डॉ. राजकुमारी ,पृष्ठ 39
122. पंत की सौन्दर्य चेतना का विकास, डॉ. राजकुमारी ,पृष्ठ 39
123. पंत की सौन्दर्य चेतना का विकास, डॉ. राजकुमारी ,पृष्ठ 39
124. हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स , बर्नाड वोसान्क्विट , लन्दन-1949, पृष्ठ 290
125. हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स , बर्नाड वोसान्क्विट , लन्दन-1949, पृष्ठ 291
126. हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स , बर्नाड वोसान्क्विट , लन्दन-1949, पृष्ठ 319
127. हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स , बर्नाड वोसान्क्विट , लन्दन-1949, पृष्ठ 319
128. हीगल्स एस्थेटिक्स , 1. 141
129. हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स , बर्नाड वोसान्क्विट , पेज 430
130. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका , पृष्ठ 267
131. वैनेडेटो क्रॉस , एस्थेटिक्स डगलस एनलाइज ट्रांसलेशन लन्दन, 1909,पृष्ठ 159
132. वैनेडेटो क्रॉस , एस्थेटिक्स डगलस एनलाइज ट्रांसलेशन लन्दन, 1909,पृष्ठ 159
133. पंत की सौन्दर्य चेतना का विकास, डॉ. राजकुमारी ,पृष्ठ 41
134. पंत की सौन्दर्य चेतना का विकास, डॉ. राजकुमारी ,पृष्ठ 41
135. कोटिड बाइ बर्नाड वोसान्क्विट इन हिज हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स ऑन पेज 448
136. पाश्चात्य काव्यशास्त्र की भूमिका , सम्पादक-श्रीमती सिन्हा,पृष्ठ 9
137. इन्ट्रोडक्शन टू एस्थेटिक्स , ई.एफ. कैरिट ,पृष्ठ 125
138. ए शैडो ऑफ नाइट : ऑलड्रिच
139. द विच ऑफ एटलस : पी. शैले
140. फ्रा लिथो लिप्पी : आर. ब्राउनिंग
141. पंत की सौन्दर्य चेतना का विकास, डॉ. राजकुमारी ,पृष्ठ 43-44
142. फ्रॉग मैन्ट्स शैफो , पृष्ठ 101
143. एन ऐसे टुवर्ड्स ए थ्योरी आफ आर्ट , एवरक्रोम्बे , पृष्ठ 90
144. आर्ट एज एक्स्पीरियन्स , ड्यूई न्यूयार्क , पृष्ठ 226
145. कन्सरनिंग ब्यूटी , जे. मॉथर , पृष्ठ 2
146. हिस्ट्री ऑफ आर्ट क्रिटीसिज्म , एल. बैंचुरी , पृष्ठ 301
147. एस्थेटिक जजमेन्ट , डी.डब्ल्यू. प्राल , पृष्ठ 22
148. द आर्ट एण्ड द आर्ट ऑफ क्रिटिसिज्म , टी.एम.ग्रीन , पृष्ठ 7
149. रिव्यू ऑफ द प्रिन्सिपल क्वेश्चन इन मोरल्स , आर. प्राइस
150. कला क्या है ? तालस्ताय रूपान्तरकार इन्दुकान्त शुक्ल , पृष्ठ 77

151. कला क्या है ? तालस्ताय रूपान्तरकार इन्दुकान्त शुक्ल , पृष्ठ 97-98
152. द आर्ट एण्ड द आर्ट ऑफ क्रिटिसिज्म , टी.एस. मूर , पृष्ठ 32
153. प्रिन्सिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म , आई. ए. रिचर्ड्स , पृष्ठ 267
154. साहित्य और सौन्दर्य बोध (रवीन्द्र , निराला के संदर्भ में) , डॉ. द्विवेदी ,पृष्ठ 117
155. श्री अरविन्द साहित्य संग्रह , मानक चक्र खण्ड-6 , पृष्ठ 156
156. श्री अरविन्द साहित्य संग्रह , मानक चक्र खण्ड-6 , पृष्ठ 162-163
157. द डांस ऑफ शिव , डॉ. आनन्द कुमार स्वामी , पृष्ठ 22-23
158. सौन्दर्य शास्त्र के तत्व , कुमार विमल , पृष्ठ 16
159. रस सिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र (भूमिका) डॉ. निर्मला जैन
160. नाटक (समीक्षा ग्रंथ) भारतेन्दु , पृष्ठ 36
161. रसज्ञ रंजन , आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी , पृष्ठ 120
162. बोलचाल , अयोध्या सिंह उपाध्याय हरओध,पृष्ठ 56
163. साहित्यालोचन , श्याम सुन्दर दास , पृष्ठ 44
164. चिन्तामणि भाग-1, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ,पृष्ठ 224-225
165. कला तथा आधुनिक प्रवृत्तियां आचार्य शुक्ल , पृष्ठ 54
166. सिद्धान्त और अध्ययन , डॉ. गुलाबराय ,पृष्ठ 82
167. सिद्धान्त और अध्ययन , डॉ. गुलाबराय ,पृष्ठ 83
168. रवीन्द्र नाथ के निबन्ध , अनुवादक-अमृतराय, पृष्ठ 273
169. रस सिद्धान्त , डॉ. नगेन्द्र , पृष्ठ 336
170. रस सिद्धान्त , डॉ. नगेन्द्र , पृष्ठ 336
171. आधुनिक साहित्य , आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, पृष्ठ 38
172. हमारी साहित्य समस्याएं , हजारी प्रसाद द्विवेदी , पृष्ठ 34
173. साहित्य का श्रेय और प्रेय, जैनेन्द्र , पृष्ठ 8
174. साहित्य और कला , हरद्वारी लाल शर्मा , पृष्ठ 35
175. साहित्य और कला , हरद्वारी लाल शर्मा , पृष्ठ 19
176. आलोचना , अक्टूबर-1953 , पृष्ठ 21
177. दीपशिखा , महादेवी वर्मा , पृष्ठ 37
178. कामायनी , जयशंकर प्रसाद , पृष्ठ 112
179. चन्द्रगुप्त मौर्य , जयशंकर प्रसाद , पृष्ठ 11
180. सम्मेलन पत्रिका , भाग 55 , संख्या1-2
181. साहित्य संदेश , जून 1962 , लेख- सौन्दर्य का मौलिक आधार, डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
182. छायावाद , डॉ. नामवर सिंह
183. संस्कृति और साहित्य , राम विलास शर्मा , पृष्ठ 202
184. तार-सप्तक (भूमिका) , अज्ञेय
185. आलोचना त्रैमासिक , अक्टूबर 1953, लेख- आलोचना और नैतिक मान , अज्ञेय
186. रवीन्द्र नाथ के निबन्ध, अनुवादक-अमृतराय,पृष्ठ 274
187. आर्ट एण्ड फिलॉसफी : ए सिम्पोजियम , एच. डब्ल्यू. जॉन्सन , पृष्ठ 29

तृतीय परिच्छेद

सौन्दर्य की परिभाषा

तृतीय परिच्छेद

सौन्दर्य की परिभाषा

सौन्दर्य की परिभाषा :- 'काव्य साहित्य तथा समस्त ललित कलाओं का मूल आधार सौन्दर्य है।'[1] सौन्दर्य शास्त्र का जन्म लगभग 18 वीं शती में माना जाता है। सौन्दर्य शास्त्र के सभी विचारक सौन्दर्य को कलाओं का सर्वस्व मानते हैं। सामान्य: सौन्दर्य किसी वस्तु और उसके किसी गुण से सम्बधित है। इस गुण का बोध आँखों के माध्यम से होता है। किसी वस्तु के प्रति आकर्षण या विकर्षण होने पर हम उसे सुन्दर या असुन्दर कहते हैं। अर्थ-विस्तार की दृष्टि से सुन्दर शब्द का प्रयोग 'चक्षुरिन्द्रिय' के अतिरिक्त वस्तुगत विशेषताओं के लिये भी होता है। अत: सौन्दर्य लक्ष्यार्थ रूप में प्रयोग किया जाता है। सौन्दर्य का लक्ष्यार्थ है:- इस शक्ति से सम्पन्न वस्तु या व्यक्ति। अत: आकर्षक और सुन्दर वस्तु का उपयोग अथवा सान्निध्य आनन्ददायी होता है।

आकर्षण सृष्टि संचालन की प्रमुख शक्ति है। जिसे दर्शन या साहित्य में आत्मा कहा जाता है। विज्ञान के सन्दर्भ में वही शक्ति है। मनोविज्ञान में शक्ति को सार तत्व माना गया है। भौतिक विज्ञान की दृष्टि से प्रत्येक अणु में अमित 'शक्ति' का निवास है। एक प्रकार से वस्तु शक्ति का ही प्रतिरूप है; साथ ही वस्तु या द्रव्य के प्रत्येक अंश को शक्ति के रूप में परिणित किया जा सकता है। इस प्रकार आज शक्तिवाद की स्थापना हो गई है।[2] अत: साहित्य की शक्ति ही सौन्दर्य है और यही साहित्य की आत्मा।

दार्शनिक आनन्द प्राप्ति को ही मानव जीवन का अन्तिम ध्येय मानते हैं। जैसे:- योगी समाधि में, साधक साधना में, भक्त भक्ति प्रक्रिया में तथा विचारक चिन्तन में ही आनन्द प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं, और इस आनन्द की चरम परिणति परमानन्द में होती है। सौन्दर्य का ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा ही मन तक होता है अत: वह स्थूल है और इसका क्षण-क्षण परिवर्तनशील रूप ही सौन्दर्य की कसौटी है।

काव्य के मध्य स्थित आकर्षण शक्ति ही सौन्दर्य है। भिन्न-भिन्न साधक उपकरणों के द्वारा इस शक्ति को सिद्ध किया जाता है। सौन्दर्य को आकर्षण शक्ति का समानार्थक माना जा सकता है क्योंकि मन अपनी समस्त चित्त वृत्तियों के साथ इसी शक्ति के द्वारा आकर्षित

होता है और आनन्द का उपभोग करता है।

मानव की सच्ची अनुभूतियों से सम्प्रक्त होने के कारण सौन्दर्य सत्य और शिव का रूप होता है। आभास से ही सौन्दर्य की पुष्टि और विस्तार होता है और भावना का रूप धारण करता है तो वह सुन्दर हो जाता है। सत्य अनुभवगत है और सौन्दर्य प्रतीतगत। काव्यगत सत्य शाश्वत होता है और वैज्ञानिक सत्य सिद्धान्तगत। आने वाले वर्षो में यह असत्य भी सिद्ध हो सकते हैं; किन्तु सत्य की उत्कृष्टता की कसौटी तर्क नहीं होती। आकाश की गंगा, अनुराग का लाल रंग आदि सत्य के ही तो आधार हैं जो विभिन्न सौन्दर्य रूपों में प्रकट होते हैं।

शिव सौन्दर्य का ही व्यवहारिक रूप है, और शिव का महत्व मानव जीवन में अधिक है। वह सबके हित को साथ में लेकर चलता है। इसके द्वारा आनन्द की प्राप्ति होती है। यह आनन्द उसकी संवेदनाओं और व्यक्तित्व को समृद्ध करता है। अत: शिव में व्याप्त विपुल सौन्दर्य से प्रेरणा प्राप्त कर कल्पना के द्वारा परिष्कार कर कलाकार आत्माभिव्यक्ति करता है, जो सौन्दर्यपूर्ण होने के कारण रमणीय होती है और रमणीयता के कारण आनन्ददायक। अत: सौन्दर्य अन्त:करण, आन्तरिक अनुभूति और प्रतिभा की देन होता है, जिसमें भावों का उत्कर्ष और अनुभूति की गहनता होती है। इस प्रकार सत्य शिव और सौन्दर्य एक ही वस्तु के तीन पक्ष होते हैं।

इस प्रकार सौन्दर्य को परिभाषित करते समय साधरणतय: यही कहा जा सकता है कि सौन्दर्य नितनूतन है, रमणीय है, प्रतिक्षण आनन्द देने वाला है। सौन्दर्य व्यक्ति के तन-मन-प्राणों में अविरल बहने वाला है। वह भोक्ता के मानस में दिव्य रागिनी बन कर गूंजता है तथा वह हृदय में अपूर्व माधुरी का संचार कर सौन्दर्य की शाश्वत दीप-शिखा को प्रज्ज्वलित करता है। यह जानना आवश्यक प्रतीत होता है कि विवेचन के उपरान्त हम सौन्दर्य बोध के साधनों का अन्वेषण ही नहीं करते रहें, अपितु सौन्दर्य की कतिपय परिभाषायें भी निर्धारित करें जिससे यह विषय और भी अधिक स्पष्ट एवं सहज बन सके। इस सन्दर्भ में हमें भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के अतिरिक्त वैदिक और पौराणिक मतों को भी जानना परमावश्यक है।

सौन्दर्य : वैदिक और पौराणिक युगानुसार :- वैदिक साहित्य आर्यों के सौन्दर्य बोध का पहला प्रस्फुटन है।[3] वैदिक ऋषियों ने अखिल सृष्टि के अनन्त रूप और ऐश्वर्य

का भावन किया और उसे उद्धात्तशैली में अभिव्यक्ति दी। [4] वैदिक मंत्रों में यत्र-तत्र बिखरा सौन्दर्य इस बात का स्पष्ट परिचायक है कि भारतीय चिन्तक प्राकृतिक और मानवीय सौन्दर्य से प्रभावित थे। [5] अत: वेद आर्य जाति के जीवन का विमल दर्पण है। ज्ञान कर्म, और उपासना का उत्कृष्ट रूप यहाँ हमें उपलब्ध है। वैदिक ऋचाओं के अन्तर्गत जिस पौरुष, उत्साह, दीप्ति का दर्शन होता है वह अन्यत्र दुर्लभ है।[6] ऋग्वेद में सौन्दर्य के मधुर पक्ष का उष: सूक्त में और उदात्त पक्ष का मरुत, पुरुष, विष्णु और इन्द्र आदि से सम्बद्ध सूक्तों में चित्रण किया गया उपलब्ध होता है। सौन्दर्य की भावनाओं की अभिव्यक्ति यहाँ धार्मिक भावनाओं से समन्वित होकर हुयी है। वेदों में ॐ,सु, सोम स्वस्ति आदि प्रतीकों का जो प्रयोग हुआ है उसके मूल में उच्चकोटि की सौन्दर्य मीमांसा छिपी हुयी है। [7] वहाँ सौन्दर्य तत्व को स्वस्ति (कल्याण) कहा गया है और स्वस्तिमान होना मनुष्य जीवन का एक मात्र लक्ष्य होता है:- 'कर्त्त: न स्वस्तिभत: '[8]

यद्यपि वेदों में सौन्दर्य का पृथक सूक्त दृष्टिगोचर नहीं होता किन्तु सौन्दर्य के विभिन्न प्रतीकों पर दृष्टि अवश्य पड़ती है। जो वैदिक ऋषियों के सौन्दर्य ज्ञान को स्पष्ट करते हैं। 'उनका मन सौन्दर्य और उदात्त तत्व को गृहण करने के लिये सदा उत्सुक रहता था और उन्होंने उसका साक्षात्कार भी किया था।'[9] 'पिशेल' और 'ओल्डन वर्ग' जैसे जर्मन विद्वानों ने भी ऋग्वेद में वर्णित सौन्दर्य के प्रतीकों का संकलन किया है। रूप, हिरण्य-गर्भा, चारु, श्रेष्ठ, महनीय, प्रिय, कल्याण, अद्भुत आदि शब्दों के व्यवहार में सौन्दर्य-बोध और मोद -आमोद, भुद, प्रमुद, नंद, आनन्द आदि के प्रयोग के पीछे सौन्दर्यानुभूति ही विद्यमान है। [10]

इन शब्दों के प्रयोग को देख कर यह स्पस्ष्ट रूप से निश्चित हो जाता है कि वैदिक कालीन ऋषियों की दृष्टि सौन्दर्यान्मुखी थी। वैदिक साहित्य के विद्वान फतेह सिंह के अनुसार-'ऋग्वेद की ऋचाओं में परामनोविज्ञान और मनोविज्ञान सम्बन्धी सर्वोत्कृष्ट विचार उपलब्ध हैं। सौन्दर्य इन दोनों का विषय है।' [11] 'निसर्ग की सुषमा के केन्द्रों ने भारत में वैदिक ऋषियों ने सौन्दर्य का समझा ही नहीं, उसके भेदों पर भी ध्यान दिया है।' [12]

सृष्टि के चारों ओर प्रसरित सौन्दर्य में सौन्दर्य नियन्ता को खोजते हुये पौराणिक युग के मनीषियों ने सौन्दर्य का दर्शनिक चिन्तन किया है। पुराण वस्तुत: भारतीय, सौन्दर्य चिन्तन के स्त्रोत हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि पौराणिक युगीन विद्वानों ने आत्मा के सौन्दर्य को खोजते

हुये सौन्दर्य का साक्षात्कार किया था और उसी के द्वारा ईश्वर प्राप्ति का प्रयत्न करते हुये आनन्दवाद के में अभिव्यक्ति दी थी। पुराणों में आनन्दवाद का स्वर अत्यधिक मुखरित है। एक प्रकार से उन्हें आनन्दवादी वाङ्मय भी कहा जा सकता है। छान्दोग्य में आनन्द को रस कहा गया है और पृथ्वी, आप, औषधि, पुरुष, वाक्, श्रृक, साम, उद्गीथ के रस को क्रमश: स्थूल से सूक्ष्म की ओर गमनशील बताया गया है। आनन्द और रस का उल्लेख पुराणों में आत्मा और ब्रह्म के सम्बन्ध में हुआ है। [13] इस सम्पूर्ण जगत् में एक ही मूल चेतना फैली है और उसी को ऋषियों ने 'आत्मा' और 'ब्रह्म' कहा है-

'एकोवशी सर्वभूतान्तरात्मा, एकं रूपं बहुधा य: करोति।' [14]

यह आत्मा अथवा ब्रह्म अनन्त प्रकाश से प्रकाशित रहता है और अनन्त आनन्द का भण्डार है। अत: पौराणिक ऋषियों की दृष्टि केवल आत्मा के सौन्दर्य की ओर ही उन्मुख रही है। आत्मज्ञान के भावात्मक रूप में आनन्द की कल्पना की गई है। पुराणों में आत्मज्ञान आनन्दमय है। वहाँ ब्रह्म के आनन्द स्वरूप की प्रतिष्ठा अत्यन्त तीव्रता के साथ ही गई है। [15]

विद्वानों के अनुसार पुराणों में आनन्द शब्द का प्रयोग और उसी की व्याख्या भारतीय धार्मिक सौन्दर्य बोध को और अधिक पुष्ट करती है। [16] ऋषियों ने ब्रह्म के जिस स्वरूप का विवेचन प्रस्तुत किया है, उसके दो लक्षण है- प्रकाश और आनन्द। गोचर रूप में वह प्रकाश है और अनुभूति के स्तर पर आनन्द रूप है इसी आधार पर आचार्यों ने आगे चलकर रस को 'स्वप्रकाशानन्द' कहा है। [17]

इस तरह वैदिक काल से लेकर धर्मोत्तर पुराण ग्रंथों में हमें सौन्दर्य सम्बन्धी अनेक उल्लेख उपलब्ध होते हैं, तदन्तर लौकिक संस्कृत युग में यह विचार धारा और अधिक सुन्दर ढंग से प्रवाहमान होती हुयी प्रतीत होती है। उस समय भी सौन्दर्य के लिये शोभन, रुचिर, रमणीय आदि शब्द प्राप्त होते हैं। अमर कोशकार ने भी सौन्दर्य को 'चारु और रुचिर' के अर्थ में प्रयोग किया है। [18] सुन्दर का शब्दान्तर से प्रयोग हमें भारवि के 'किरातार्जुनीय' से प्राप्त होता है। [19] काव्य में परम सत्ता के आध्यात्मिक एवं अलौकिक सत्ता के लिये सौन्दर्य वाचक अनेक शब्द प्रस्तुत किये गये हैं। निम्नलिखित श्लोक इसका प्रमाण है:-

तदैव रम्यं रुचिरं नवं-रवं ;

तदैव शश्वन्मनसो महोत्सनं।

तदैव शोकाष्दिशोषण नृणा,

यदुत्तम श्लोक यशोनुगीन से। [20]

बाल्मीकि रामायण में भी राम को द्युतिमान समति भंग्तांग स्निग्ध वर्ण तथा सुलक्षण आदि विशेषणों से स्मरण किया गया है। बाण और कालिदास ने भी अपनी रचनाओं में सौन्दर्य के अनुपम चित्र खींचे हैं।

अत: निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वेदों और पुराणों में आध्यात्मिकता को प्रमुखता दी गई है और सौन्दर्य के पर्यायों का उल्लेख करके आध्यात्मिकता का निरूपण किया गया है। समग्र रूप में उन्होंने सौन्दर्य को परमात्मिक रूप में देखने की चेष्टा की है।

सौन्दर्य के सम्बन्ध में कतिपय संस्कृत विद्वानों की सूक्तियाँ भी प्रस्तुत हैं:-

वामन ने अलंकार को काव्य का आवश्यक धर्म मानते हुये कहा है-'काव्यं ग्राह्यमलंकरात्' अर्थात् काव्य अलंकार सौन्दर्य के कारण ही ग्राह्य है। [22]

रूप गोस्वामी-'अंग प्रत्यंग का यथोचित्-सन्निवेश ही सौन्दर्य है।' [23]

भारवि-'सौन्दर्य को स्वाभाविक मानते हैं।' [24]

जगन्नाथ-'रमणीयता में आह्लाद तत्व समाहित रहता है और यह तत्व ही सौन्दर्य का मूल स्त्रोत होता है।' [25]

कालिदास-'कविकुल शिरोमणि रमणीयता में सौन्दर्य के दर्शन करते हैं।' [26] उनके अनुसार स्वाभाविक में ही सौन्दर्य होता है उसे अलंकारों की आवश्यकता नहीं। [27] एक और स्थल पर वे अपना मत यो देते हैं- 'सच्चा सौन्दर्य वह है जो पापवृत्ति की और अग्रसर न होकर सात्विकता की प्रेरणा प्रदान करता है।'[28]

कालिदास ने अपने इन्हीं कथनों को अभिव्यक्ति देते हुये 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' में शकुन्तला और 'कुमार सम्भवम्' में पार्वती के सौन्दर्य वर्णन में आध्यात्मिकता, पवित्रता, वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य का मणिकाँचन योग प्रस्तुत किया है।

सौन्दर्य : पौर्वात्य विद्वानों के अनुसार:- सौन्दर्य एक ऐसा दिव्य तत्व है जो मानवीय चेतना को मानव के जन्म लेते ही आकर्षित करने लगता है। रुचि भेद के कारण सौन्दर्य चिन्तन में अन्तर दिखाई पड़ता है। इसी अन्तर के कारण सौन्दर्य की परिभाषाओं में विविधता आ गई है। अत: भारतीय विचारकों की सौन्दर्य की परिभाषाओं पर अपनी एक दृष्टि डालें -

बिहारी - नित्य नवीनता में सौन्दर्य को स्वीकारते हैं । [29]

विद्यापति - सौन्दर्य सहज और अरूप है। [30]

सुमित्रानन्दन पंत - सत्यम् , शिवम् , सुन्दरम् के समुच्चय को ही सौन्दर्य मानते हैं। सत्य ही प्रज्ञा के रूप में प्रोद्भासित होकर अन्तःकरण में प्रेम का स्वरूप धारण कर लेता है तथा यही लोकसेवा में मंगलमय बन जाता है। [31]

डॉ. रामस्वरूप खरे की दृष्टि में :- जो तत्व मन को दयार्द्र कर दे , अन्तःकरण में स्नेह सुधा की सरिता सरसा दे , जिसे देखकर नेत्रों को आनन्द की परमोपलब्धि हो और अकृत्रिम एवं अकलुष प्रेम प्रादुर्भूत हो उठे तथा जिसके कल्याणकारी विधान में सारी सृष्टि गत्यात्मक हो सके, वह मानव जीवन का शृंगार तथा सत्य का वाचक अनुपमेय सौन्दर्य है। [32]

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार **प्रेमचन्द्र** के अनुसार-'हमने सूरज का उगना और डूबना देखा है, उषा और संध्या की लालिमा देखी है, सुन्दर सुगन्ध भरे फूल देखे हैं, मीठा बोलने वाली चिड़ियाँ देखी हैं तथा नाचते हुये झरने देखे हैं; यही सौन्दर्य है।' [33]

वास्तव में सौन्दर्य एक ऐसा तत्व है जिसका दर्शन ज्यों - ज्यों किया जाता है, त्यों-त्यों इसकी चाह तीव्रतम् होती चली जाती है। दर्शक को कभी तृप्ति नहीं मिलती।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेद्वी के मतानुसार सुन्दरता सामंजस्य में होती है और सामंजस्य का अर्थ होता है - किसी चीज का बहुत अधिक और किसी चीज का बहुत कम न होना । इसमें संयम की बड़ी जरूरत है । इसलिये सौन्दर्य प्रेम में , संयम में होता है, उच्छृंखलता में नहीं। [34]

सौन्दर्य को और अधिक स्पष्ट करते हुये द्विवेद्वी जी ने आगे कहा है कि-'उदाहरण के लिये किसी वन या पर्वत की शोभा ले ली जाये तो उसका मतलब यही होता है कि वहाँ रंग का सामंजस्य होता है, ऊँचाई- नीचाई बेनाप नहीं हो पाई है, सभी में एक मीठा सम्बन्ध है; कोई किसी को दबा नहीं रहा है, मगर श्मशान की स्वर स्त्रोता नहीं, अपनी हड्डियाँ, कंकालों, नरमुण्डों और चिता भस्म के साथ वीभत्स होती है। क्योंकि उसमें सामंजस्य नहीं होता और सुन्दरता सामंजस्य में होती है।'[35]

प्रसाद की कामायनी के विषय में हजारी प्रसाद द्विवेद्वी का मत है -' प्रसाद के समान सौन्दर्य के प्रेमी कवि बहुत विरले हैं, और पार्थिव सौन्दर्य को स्वर्गीय महिमा से मण्डित करके प्रकट करने की सामर्थ्य तो इतना और किसी में नहीं।'[36]

इस सन्दर्भ में आधुनिक युग की सुप्रसिद्ध कृति 'कामायनी' के उद्धरण देने का लोभ संवरण मैं नहीं कर पा रही हूँ। दो सौन्दर्य चित्र प्रस्तुत हैं -

समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती आनन्द अखण्ड घना था। [37]

तथा -

'नील परिधान बीच सुकमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघवन बीच गुलाबी रंग।। [38]

आचार्य शुक्ल के शब्दों में -'सौन्दर्य बाहर की कोई वस्तु नहीं है, मन के भीतर की वस्तु है। यूरोपीय कला समीक्षा की यह एक बड़ी ऊँची उड़ान या बड़ी दूर की कौड़ी समझी गई है, पर वास्तव में यह भाषा के गड़बड़झाले के सिवा और कुछ नहीं है। जैसे वीर कर्म से पृथक वीरत्व कोई पदार्थ नहीं, वैसे ही सुन्दर वस्तु से पृथक सौन्दर्य कोई पदार्थ नहीं। कुछ रूप रंग की वस्तुयें ऐसी होती हैं जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिये हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती हैं कि उसका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की ही भावना के रूप में परिणत हो जाते हैं। हमारी अन्त:सत्ता की यही तदाकार परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है। जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान से या भावना से तदाकार परिणति जितनी ही अधिक होगी, उतनी ही वह वस्तु हमारे लिये सुन्दर कही जायेगी।'[39]

डॉ. हंस कुमार तिवारी सौन्दर्य के विशिष्ट बोध को स्वीकार करते हैं- 'वास्तव में सौन्दर्य एक विशेष बोध है जिसके पीछे ज्ञान आनन्द क्रियात्मक वृत्ति आदि का सामंजस्य है। इसलिये इसका कोई सर्वमान्य लक्षण देना सम्भव भी नहीं। इस सौन्दर्य का आनन्द भी एक स्वतन्त्र कोटि का है जो कि अनुभववेद्य है। न तो वह प्रत्यक्ष अनुभूति हो सकता है, न प्रमाणित। लेकिन सौन्दर्य की उपलब्धि होती है।'[40]

श्री लीलाधर गुप्त ने सौन्दर्य प्रकृति के कुछ दृश्यों अथवा कलाकृतियों तथा मानव मन के मध्य एक विशिष्ट सम्बन्ध का द्योतक है। [41]

डॉ. हरिवंश लाल सिंह के अनुसार -'स्थूल सूक्ष्म जगत में आत्मा की अभिव्यक्ति ही सौन्दर्य है।' [42]

डॉ. दास गुप्त ने सौन्दर्य को परिभाषित करते हुये लिखा है कि -'अन्त: - बाह्य की युगपत की क्रिया के द्वारा ही सौन्दर्य की सृष्टि होती है।' [43]

लालता प्रसाद सक्सेना-'सौन्दर्य मन आत्मा एवं प्रकृति अथवा वस्तु जगत के बाह्य रूपाकार की वह विशेषता है जो प्राणी को आनन्द विह्वल अथवा आत्म-विभोर करने की क्षमता रखती है।' [44]

डॉ. सम्पूर्णानन्द जी कुछ इस तरह कहते हैं कि -'कुछ ऐसे भी विषय हैं जिनको देखकर हृदय में रस का संचार होता है........हम इन सबमें जो मनोहारिता पाते हैं उसको सौन्दर्य कहते हैं।' [45]

भगवती चरण वर्मा के अनुसार-'जहाँ तक मेरा मत है, हम जिसके अभ्यस्त हैं, या हम जो कुछ भी चाहते हैं ; वह सब सुन्दर है। सुन्दरता को मैं मानव का गुण मानता हूँ।' [46]

सौन्दर्य एक संश्लिष्ट इकाई है, सौन्दर्य प्रकृति में है, मनुष्य के मन में भी। उसकी अनुभूति व्यक्तिगत होती है और समाजगत भी। व्यक्ति समाज का अंग है इसलिये न तो समाजनिरपेक्ष व्यक्ति की सत्ता होती है और न समाज निरपेक्ष सौन्दर्यानुभूति की संम्भावना होती है। [47]

'प्रकृति तथा मानव जीवन और ललित कलाओं के आनन्ददायक गुण का नाम सौन्दर्य है।'[48]

प्रस्तुत परिभाषा में **राम विलास शर्मा जी** ने आनन्द देने वाले गुण पर विशेष बल दिया है। डॉ. शर्मा ने अपने एक निबन्ध में सौन्दर्य के विषय में आगे लिखा है-'सौन्दर्य की वस्तुगत सत्ता होती है, इसलिये शुद्ध सौन्दर्य नाम की कोई चीज नहीं होती है , और शुक्ल जी के शब्दों में सुन्दर वस्तु से अलग सौन्दर्य नहीं होता।'[49]

हरद्वारी लाल शर्मा के अनुसार-'अपनी अनुभूति स्मृति कल्पना आदि के द्वारा आनन्द को उत्पन्न करने वाले वस्तु के गुण को सौन्दर्य और वस्तु को सुन्दर कहते हैं।[50]

डॉ. शर्मा ने अपनी ग्रन्थ 'सौन्दर्य-शास्त्र' में सौन्दर्य को और अधिक विश्लेषित करते हुये लिखा है -'सौन्दर्य के सम्पूर्ण अनुभव में सुन्दर वस्तु का पार्थिव रूप और इसका आनन्दमय आध्यात्मिक रूप इतने संश्लिष्ट रहते हैं कि इनके वियुक्त करने से ये दोनों विलीन हो जाते हैं। कोई वस्तु स्वत: सुन्दर नहीं होती जब तक आनन्द का अनुभव नहीं है और आनन्द का स्वत: वस्तु के रूप बिना अनुभव सौन्दर्य का अनुभव नहीं होता। सौन्दर्यानुभूति में पार्थिव रूप और आध्यात्म रूप का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि यदि एक चेतन आत्मा है तो दूसरा उसका रूपवान शरीर है, सुन्दर वस्तु मूर्तिमती अनुभूति है और

अनुभूति स्वयं वस्तु के सौन्दर्य से स्वरूप पाती है। [51]

दशरथ ओझा ने सौन्दर्य की व्याखा करते हुये कहा है कि -'सौन्दर्य को हम केवल आँखों से नहीं देख सकते, उसके लिये मानसिक दृष्टि की भी आवश्यकता है। मन की अनेक तरंगे हैं। केवल बुद्धि और विचार से ही काम नहीं चल सकता, उसके साथ हार्दिक भावों को भी जोड़ना चाहिये। धर्म बुद्धि का भी बल लगाना चाहिये। ऐसा करने से आध्यात्मिक दृष्टि खुल जाती है और कलाकार दिव्य-दृष्टा हो जाता है। यहीं सौन्दर्य के साथ मंगल का मेल होता है। मंगलमय वस्तु सदा हमारा भला करे, वही मंगलमय है। वास्तव में मंगलमय वस्तु का रूप ही यह है कि वह हमारी आवश्यकता भी पूरी करे और देखने में भी सुन्दर हो। फूल जब अपनी वर्ण गन्ध की प्रगल्भता को फूल की मधुरता में परिणत करता है, तब उस परिणिति में ही सौन्दर्य और मंगल का मेल होता है। मंगल की भांति सत्य का भी सौन्दर्य से मेल होना चाहिये। जब सत्य और सुन्दर एक हो जाते हैं तब चरम सौन्दर्य के दर्शन होते हैं।' [53]

बाबू गुलाब राय के अनुसार -'धार्मिक भाव-मिश्रित भय उत्पन्न करने वाली वस्तुओं को उदात्त कहा गया है, सुन्दर नहीं। सुन्दर वस्तु वह है, जिसमें रमणीयता के साथ-साथ माधुर्य भी हो। रमणीयता का अर्थ है -क्षण-क्षण में उत्पन्न होने वाली नवीनता। माधुर्य का अर्थ है चित्र को द्रवित करने वाला आह्लाद।'[54]

बांग्ला भाषा के पारखी एवं विश्व कवि **रवीन्द्र नाथ टैगोर** ने सौन्दर्य में विश्व तत्व की प्रतिष्ठा करते हुये स्वीकारा है-'सौन्दर्य की मूर्ति ही मंगल की मूर्ति है और मंगल की मूर्ति ही सौन्दर्य का वर्ण स्वरूप है।'[55]

अत: सत्य के साथ हम मंगलमय के पूर्ण सामंजस्य को देख सके तो फिर सौन्दर्य हमारे लिये अगोचर नहीं है।.....मंगलमय वस्तु हमारा भला करती है ; इस लिये हम उसे भली कहते हैं। वास्तव में जो भी वस्तु मंगलमय होती है वह हमारी आवश्यकताओं को पूरा करती है और सुन्दर भी होती है। [56]

'कवीन्द्र रवीन्द्र सत्य को ही सौन्दर्य स्वीकारते हैं।'[57] वे सौन्दर्य पर बल देते हुये कहते हैं कि -'सौन्दर्य के साक्षात्कार के लिये व्यापक दृष्टि की आवश्यकता है.....दृष्टि की संकीर्णता सौन्दर्य प्रतीत को कुरूप और सुरूप दो टुकड़ों में बाँट देती है मनुष्य जब स्वार्थ या भोगेच्छा की प्रवृत्तियों से सर्वथा निरपेक्ष होकर वस्तुओं को देखता है,तभी वह सौन्दर्य का सच्चा रूप

देख सकता है । यह सौन्दर्य सर्वत्र है, तभी वह अनुभव कर सकता है कि हमें अरुचिकर प्रतीत होने वाली सब वस्तुयें आवश्यक तौर पर असुन्दर नहीं होती उनका सौन्दर्य उनकी सच्चाई पर निर्भर होता है।'[58]

डॉ. बी. एल. आज्ञेय के अनुसार-'योग की सविकल्प समाधि की दशा ही सौन्दर्य की अवस्था है।'[59]

इलाचन्द्र जोशी ने सौन्दर्य के सम्बन्ध में लिखा है कि - 'सौन्दर्य का कोई निश्चित मानदण्ड न होने पर भी उसका झुकाव और विकास एक विशेष आदर्श की ओर होता है । वह आदर्श है-आत्मा, हृदय और मस्तिष्क का संयोग, सुन्दर, मंगल और सत्य का सामंजस्य।'[60]

डॉ. शकुन्तला वर्मा के शब्दों में-वस्तु समाज देश और काल के दृश्य अथवा अदृश्य संस्कार से भावित मानव अन्त: करण की अनुकूल रोचकता ही सौन्दर्य है।'[61]

जैनेन्द्र के कथनानुसार -'वह सुन्दर कैसा जो शिव भी नहीं है और शिव तो अनिवार्य सुन्दर है ही।'[62]

डॉ. नन्ददुलारे वाजपेई के शब्दों में -'व्यष्टि सौन्दर्य एक सार्वजनिक स्वावलम्बी काव्य-चेतना की जन्मदात्री है। इसे मैं प्राकृतिक आध्यात्म कह सकता हूँ। समष्टि सौन्दर्य बोध उच्चतर अनुभूति है।'[63]

डॉ. सुरेश त्यागी-'वस्तु के पक्ष में सौन्दर्य यदि बाह्य रूपकार की समुचित संयोजना है तो व्यक्ति के पक्ष में वह एक आनन्दमयी अनुभूति है।'[64]

छोटेलाल दीक्षित का कथन है कि -'सौन्दर्य वह है जो अविकल्प रूप से पूर्ण हो, जो बिना इच्छा जागाये ही हमें आनन्दित करे जिसमें आकर्षित करने की क्षमता हो, जो हमारी इन्द्रियों को अभिभूत कर सके, जिसको देखकर हमारी चेतन विचारगति रुक जाये अथवा जिसको सदैव बनाये रखने की इच्छा जागृत हो।'[65]

डॉ. राम कुमार के अनुसार -'सौन्दर्य स्थूल से उत्पन्न सूक्ष्म की वह सहज परिस्थिति है जिसकी प्रगति सुख या आनन्द की ओर है । सुख इन्द्रियों का विषय है और आनन्द अन्त: करण का ।......अत: सौन्दर्य इन्द्रियजनित या अन्त:करण जनित रागात्मक मनोवेग के विश्राम में है।'[66]

डॉ. फतेह सिंह ने सौन्दर्य को परिभाषित करते हुये कहा है कि -'हमारा मन ही 'सुन'

अनुभूति का दावा होने से सुन्दर है और जिस वस्तु या विभाव द्वारा आकर्षित होकर मन में अनुभूति विभावित होती है उसे सुन्दर कहा जाता है। अत: उस वस्तु या विभाव के आकर्षण को ही सौन्दर्य कह सकते हैं। इसलिये मनोपरिता, मनोज्ञता आदि शब्द सौन्दर्य के पर्यायवाची माने जाते हैं। [67] इस प्रकार सौन्दर्य विषयगत भी है विषयीगत भी है- 'कला की समग्रता तभी सम्भव है, जब ज्ञात और ज्ञेय विषयी और विषय अनुभूति के क्षण में तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। [68]

जो वस्तु मन को भा जाये वही सुन्दर लगती है। इस धारणा को पुष्ट कर रहे हैं **अजित चक्रवर्ती** - 'जब कोई वस्तु सीमित रहती है और अच्छी लगती है, तब वह सुन्दर लगती है, किन्तु जब पूर्णता को प्राप्त कर विश्व-व्यापी और असीम हो जाती है तो महान कहलाती है।'[69]

वास्तव में सौन्दर्य का आधार वस्तु का भौतिक स्वरूप ही हुआ करता है और आध्यात्मिक सौन्दर्य आद्येय।[70]

वस्तु और गुण मानस चेतना ये दोनों तत्व ही सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं, इसलिये-कला किसी वस्तु का सृजन करती है, वह वस्तु हमारे अनुभव की चीज है, जिसे हम सुन्दर कहते हैं। सुन्दर वस्तु के प्रभाव में हमें आनन्द या रस का अनुभव होता है। सौन्दर्य का अधिष्ठान सुन्दर वस्तु का सृजन है और प्रेक्षक उसी वस्तु का रस लाभ करता है। कलाकार और प्रेक्षक दोनों के मध्य में सुन्दर वस्तु की सत्ता विवाद और सन्देह से रहित है।'[71]

इस प्रकार सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने के लिये किसी न किसी कला का आश्रय लेना पड़ता है यह अंग और अंगी का सम्बन्ध है। सौन्दर्य और कला एक दूसरे के पूरक हैं। इसका अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है-'कुछ भी हो सौन्दर्य का ध्येय कलाकार के सम्मुख होता है। सौन्दर्य कला का महत्वपूर्ण अंग होता है और कला से सहृदय को जो प्रतीति होती है, वह सौन्दर्य की होती है।'[72]

इस सन्दर्भ में कतिपय विद्वानों की उक्तियाँ अवलोकनीय हैं :-

-'शुद्ध सौन्दर्य भावना ही काव्यानुभूति की जननी है......सौन्दर्य यथार्थ: हमारे भावों का प्रतिबिम्ब है।'[73]

-'सौन्दर्य तर्कगम्य नहीं, अनुभूतिगम्य है।'[74]

-'अन्तर के चित्र से बाह्य की पूर्ण अनुरूपता ही सौन्दर्य है।'[75]

-'आनन्द और सौन्दर्य मानव जीवन के वरदान और पूरक हैं।'[76]

-'सौन्दर्य साहित्य का निर्माता है तथा सभी कलाओं का उद्‌गम सौन्दर्य ही है।'[77]

साधारण अर्थ में सौन्दर्य सृष्टि का विषय है। हमारे मन में उस वस्तु की समग्रता से उत्पन्न एक और आनन्दोद्रेक की भावना काम करती है उस आनन्द को प्रकट करने के लिये हम उसे सुन्दर कहते हैं।[78]

इस प्रकार भारतीय सौन्दर्य विचारकों और चिन्तकों के सौन्दर्य सम्बन्धी विचारों और उक्तियों पर दृष्टि डालने के उपरान्त कहा जा सकता है कि रुचि, परिवेश, चिन्तन एवं संस्कार के कारण उनकी सौन्दर्य सम्बन्धी परिभाषाओं में विविधता आ गई है। किन्तु फिर भी उन्होने सौन्दर्य की सम्पूर्ण परिभाषा देने का प्रयत्न किया है।

सौन्दर्य के सम्बन्ध में ये थी भारतीय विद्वानों के मतों की एक झलक, किन्तु पाश्चात्य विद्वानों का भी दृष्टिकोण जान लेना हमारे लिये परमावश्यक है , अन्यथा यह विवेचन अधूरा ही रह जायेगा। अतः आइये , पाश्चात्य विद्वानों के भी मतों को अवलोकित करते चलें।

सौन्दर्य : पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार :- पश्चिमी विद्वानों के लिये सौन्दर्य एक प्रिय एवं महत्वपूर्ण विषय रहा है। और उन विचारकों ने सौन्दर्य पर गम्भीरता पूर्वक विचार कर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से अपने विचार प्रस्तुत किये हैं , जिसके फलस्वरूप कुछ वर्ग निर्मित हों गये हैं। कुछ विद्वान सौन्दर्य को वस्तु के बाह्य आकार में निहित मानते हैं, कुछ आन्तरिक स्वरूप को महत्व देते हैं और कुछ आध्यात्मिक के स्तर पर मूल्यांकित करते हैं। किन्तु पाश्चात्य सौन्दर्य को हीगेल और क्रोचे की धारणाओं ने सर्वाधिक प्रभावित किया है।

हीगेल की धारणा है कि -'आइडियल की अभिव्यक्ति का प्रयास सौन्दर्य सृजन है, और इसका माध्यम और अनुकरण ही सौन्दर्य हैं।'[79]

जब कि **अरस्तू** की सौन्दर्य विषयक परिभाषा में नैतिकता का आग्रह स्पष्ट है। उनके अनुसार -'सौन्दर्य वह शिव है, जो आनन्दप्रद है क्योंकि वह शिव है।'[80]

इस प्रकार सौन्दर्य सामंजस्य और संतुलन आदि से ऊपर है। यह सौन्दर्य इन्द्रिय का विषय नहीं, प्रज्ञा का विषय है, क्योंकि सौन्दर्य अशरीरी है किन्तु वह शरीरी प्रकट हो सकता है।

ह्यूम के अनुसार -'अंगों की एक ऐसी क्रमिक एवं सुगठित रचना को सौन्दर्य कहते हैं, जो परम्परागत स्वभाव, रीत-रिवाजों, मनोभावों के द्वारा हमारी आत्मा को आनन्द एवं संतोष प्रदान करती है । यह भी मानना है कि सौन्दर्य का अस्तित्व आनन्दप्रद एवं संतोषदायक वस्तुओं में है और आनन्ददायक एवं दुखद प्रभाव सौन्दर्य एवं कुरूपता के ही लक्षण हैं।'[81]

सौन्दर्य को और अधिक स्पष्ट करते हुये ह्यूम ने अपनी पुस्तक 'ओरिजन ऑफ द सेन्स ऑफ ब्यूटी' में लिखा है कि -'सौन्दर्य की एक निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती वह **विदग्धता** की तरह अवर्णनीय है।'[82]

विक्टर कूँ जियाँ सौन्दर्य की विस्तृत धारणा प्रस्तुत करते हैं , वे ईश्वर में ही चरम सौन्दर्य को मानते हैं।

लिवनिक सामंजस्य और सुडौलपन की अभिव्यंजना को ही सौन्दर्य कहते हैं यद्यपि उनमें प्रत्यक्ष रूप से कुछ विरोधी बातों के समावेश की योग्यता रहती है।[83]

हीगेल की दृष्टि में -'पदार्थ में प्रत्यय का प्रकाशन ही सौन्दर्य है वह मानव के माध्यम से पूर्ण या दिव्य सत्ता की अभिव्यक्ति को ही सौन्दर्य मानते हैं।'[84]

जिस ऐन्द्रिय वस्तु के माध्यम से परम तत्व प्रकाशित होता है, वही सुन्दर है। सुन्दर वस्तु हमेशा हमारी इन्द्रियों और मस्तिष्क को आकर्षित कर लेती है।[85]

नाइट की धारणा है कि -' शारीरिक मानसिक व आत्मिक ऐक्य का परिणाम ही सौन्दर्य है।'[86]

कीट के अनुसार-'वही वस्तु सुन्दर है जो बिना किसी उपयोगिता के प्रसन्न करे।'[87]

-'जो सर्वथा अनुरूप हो अभीष्ट परिणाम का उत्तर दे सके तथा जो प्रिय लगे वही सुन्दर होता है।'[88] **-'सुकरात'**

होमगार्थ ने सौन्दर्य के विषय में लिखा है कि -'सौन्दर्य की समता, विविधता सम्मानता, स्पष्टता, जटिलता, और विशालता में है।'[89]

सिसरो - रंगों की एकरूपता, निश्चित अनुकूलता एवं अंगों का अनुपात एक साथ प्रस्तुत हो, तो उसे सुन्दर मानते हैं।[90]

एडमंड वर्क के अनुसार-'आकार की लघुता, समता क्रमिक परिवर्तनशीलता, कोमलता वर्ण प्रदीप्ति तथा शुद्धता को सौन्दर्य के दृढ़ घटकों के रूप में निरूपित किया है।[91]

शेफ्टशबरी के शब्दों में -'विश्व के दैवी जीवन की अभिव्यंजना ही सौन्दर्य है।' [92]

कीट्स- सौन्दर्य ही सत्य है और सत्य ही सौन्दर्य है यही सब कुछ है जो आप जानते हैं और जिसकी इस पृथ्वी पर जानने की आवश्यकता है।[93] कीट्स यह मानता है कि सुन्दर वस्तु हमेशा हमें आनन्द प्रदान करती है।

प्लोटिनस परम शक्ति में शिवत्व की अवस्थिति स्वीकार करता है उनके अनुसार सौन्दर्य ईश्वर के शिवत्व रूप में है। तालस्टाय कहते हैं कि एक तरफ विषयीगत रूप में सुन्दर हम उस वस्तु को कहते हैं जो हमें किसी भी प्रकार का आनन्द प्रदान कराती है, और दूसरी ओर विषयगत रूप में वस्तु की पूर्णता में ही सौन्दर्य की सत्ता को मानते हैं।

बेकन की दृष्टि में -'सौन्दर्य एक विचित्रता लिये अनुपात से युक्त होता है।'[94]

हरबर्ट:- सौन्दर्य किसी वस्तु विशेष की सत्ता पर निर्भर नहीं करता वह तो स्वाभाविक रूप से हमारे मन में विद्यमान रहता है। मैं अमरत्व में ही सौन्दर्य मानता हूँ।'[95]

शेलिंग ससीम से असीम की अभिव्यक्ति को ही सौन्दर्य मानते हैं।

गेटे:- सौन्दर्य वह आदिम विषय है जो स्वयं कभी प्रकट नहीं होता, परन्तु जिसका प्रतिबिम्ब सृजनशील मन की सहस्त्रों विविध उक्तियों में उद्भासित होता रहता है और जो उतना ही वैविध्य पूर्ण है जितनी स्वयं प्रकृति। [96]

एडगर ऐलन पो सौन्दर्य को अनुभूतिजन्य मानता है। उसके अनुसार-'जब मनुष्य सौन्दर्य के विषय में कुछ कहते हैं तो उसका आशय किसी गुण से नहीं वरन् प्रभाव से होता है, उसका आशय आत्मा की तीव्र और शुद्ध उदात्तता से होता है, जो सौन्दर्य की ध्यानजनित अनुभूति से उत्पन्न होती है। [97]

क्रोचे -'सौन्दर्य को मानवीय सौन्दर्यात्मक प्रक्रिया [98] तथा अभिव्यंजना [99] में स्वीकारता है।'

रस्किन के शब्दों में -'बाह्य जगत् में कुछ ऐसे उपादान हैं, जिनके द्वारा ईश्वर के नानाविध गुण हमारे मन में अभिव्यक्त होकर चित्र में सौन्दर्य का संस्कार उत्पन्न करते हैं। इन समस्त उपादानों के माध्यम से ईश्वर ने अपने स्वरूप को जगत में लक्षित करा दिया है।' [100] रस्किन सौन्दर्य का आवश्यक तत्व नैतिकता को मानते हैं। [101] उनके अनुसार सौन्दर्य को आनन्द से युक्त होना चाहिये, उपयोगिता तत्व उसके लिये जरूरी नहीं है। [102] तात्पर्य यह है कि रस्किन सौन्दर्य को ईश्वर की विभूति मानता है।

बामशार्टेन- सौन्दर्य पूर्णता में है, पूर्णता के आविर्भाव में ही सौन्दर्य अवस्थित है।[103]

हास्क - सौन्दर्य के दर्शन नैतिकता में होते हैं।[104]

पिअर, बफिअर, जे. रेनाल्ड, एवं एलसिन ने सौन्दर्य के विषय में कहा है-'प्रतिपादित आदत के सिद्धान्तानुसार जिस वस्तु को हम जिस रूप में देखते रहे हैं वही रूप उसका सौन्दर्य माना जाने लगता है।[105]

एच. एच. परखूरष्ट मानते हैं कि कला का मुख्य ध्येय अपने शब्दों के माध्यम से विश्वसनीय संघर्ष को प्रतिध्वनित करना है। वह प्रत्येक वस्तु सुन्दर है जो किसी सफल माध्यम के सही प्रयोग से उत्पन्न होती है, जो उसे व्यक्त करता है।

गिल्बर्ट मरे-'सौन्दर्य वह वस्तु है जिसे देखते ही उससे स्नेह किया जा सके।'[106]

लोत्से- सौन्दर्य सुख का ही एक विकसित रूप है और उससे भिन्न नहीं। दोनों में यदि कोई भेद है तो इतना ही कि सुख इन्द्रिय गोचर है तथा वह हमारी वैयक्तिक आत्मा को आनन्दित करता है। जबकि सौन्दर्य अन्त:करण गम्य है और हमारी व्यापक आत्मा को मुदित करता है।[107]

'इष्ट बुद्धियों साधनों एवं अनिवार्य नियमों के बीच जो एकता का प्रकाश या सौन्दर्य सुषमा है वही सौन्दर्य है।'[108] **रीड** की दृष्टि में सौन्दर्य यह है -'ज्ञान शक्ति तथा इच्छा शक्ति जो हमारे मन में है, वे वस्तुत: ईश्वरीय शक्तियाँ हैं, और तत्वत: एवं मूलत: सुन्दर हैं। जो वस्तुयें सुन्दर कही जाती हैं, उनमें इन्हीं ईश्वरीय शक्तियों की अभिव्यक्ति है जिस वस्तु में यह अभिव्यक्ति जितनी अधिक होती है, उतनी ही अधिक सुन्दर होती है।'[109]

अत: रीड के अनुसार सौन्दर्य कोई वस्तुओं का गुण नहीं और न ही मानसिक वस्तु है, वह ईश्वरीय शक्ति है जो अन्त:करण गम्य है।

ज्वाइक्रे-'सौन्दर्य किसी आदृश्य शक्ति की अभिव्यक्ति है, वह शक्ति प्राकृतिक अथवा भौतिक उपकरणों द्वारा व्यक्त होती है। यह दृश्य जगत वसन (वस्त्र) है जिसको यह वासी (अदृश्य सत्ता) धारण किये हुये है।'[110]

चर्नाशेब्यकी-'सौन्दर्य ही जीवन है।'[111]

प्लूटार्क -सौन्दर्य एक प्रकार की कलात्मक कुशलता है।'[112]

एक्सन-सौन्दर्य विचारों का प्रवाह है।'[113]

लेसिंग-सौन्दर्य अभिव्यक्ति में नहीं वस्तु विधान और पद्धति में है। इन्होने केवल

कविता और चित्रकला को ध्यान में रख कर सौन्दर्य को परिभाषित किया है।[114]

बोलंस्की- सौन्दर्य सामाजिक जीवन के जीवन्त यथार्थ का प्रतिबिम्ब है, जो हमें आनन्द ही नहीं देता, प्रगतिशील होने की प्रेरणा भी देता है। सौन्दर्य के सम्बन्ध में ऐसी ही धारणा हार्जेन और दो ब्रोल्यूबाब की भी है।[115]

-'सौन्दर्य परिवेश और संगीत का फल है। '- **एडीसन बोसाकें** के अनुसार -'आनन्द ही सौन्दर्य का पर्याय है।' **वाशिंगटन डरविन** के शब्दों में-'आन्तरिक सौन्दर्य ही बाह्य सौन्दर्य का विधायक होता है।'

आई. ए. रिचार्ड के कथनानुसार-'भावात्मक संतुष्टि का नाम ही सौन्दर्य है। '

इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानों ने अनेक दृष्टिकोणों के आधार पर सौन्दर्य को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है परन्तु अपनी विलक्षणता के कारण सौन्दर्य की कोई परिभाषा अथवा धारणा पूर्ण नहीं है। पूर्णता की दृष्टि से उसमें अभाव परिलक्षित होता है।

इस सम्पूर्ण विवेचन से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि सौन्दर्य जो वास्तव में असीम है, उसे किसी सीमा में आबद्ध नहीं किया जा सकता। किसी ने सौन्दर्य को आध्यात्मिक चश्मे से देखा है, तथा किसी ने उपयोगिता और समाजिकता के चशमे से देखने का दुराग्रह किया है तथा कुछ ने मूल्यवादी और रूपवादी दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया है , तो कुछ ने भौतिक और सामाजिक दृष्टि से देखा है। किन्तु समन्वित रूप में हम सबको यही स्वीकार करना पड़ेगा कि - 'सौन्दर्य किसी एक स्थान पर न होकर वस्तु में, दर्शक में, हृदय में, द्रष्टा में, सहृदय में और संस्कार रूप में विद्यमान है। कल्पना की रमणीयता, बुद्धि और भावना के सामंजस्य और रस निष्पत्तिजन्य आनन्द में ही सौन्दर्य की सत्ता विद्यमान है।'[116]

तात्पर्य यह है कि सौन्दर्य एक भावात्मक संज्ञा है, इसका वाणी को द्वारा प्रकटीकरण असम्भव है। इसलिये ये अनिवर्चनीय है। इसका केवल अनुभव ही किया जा सकता है, तथा जो इसका अनुभव प्राप्त कर लेता है तो वह आनन्द के इस विशाल सागर में निमग्न हो जाता है जहाँ सौन्दर्य ही सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है।

संदर्भ सूची

1. प्रिसिंपल ऑफ आर्ट, आर. जी. कलिंगवुड, पृष्ठ - 37
2. डी. नेस द्वारा सौन्दर्य पर लिखित एक लेख से उद्धृत।
3. काव्य में सौन्दर्य और उदात्त तत्व, शिव बालक राय, पृष्ठ - 48
4. समीक्षा के नये आयाम, प्रताप सिंह चौहान, पृष्ठ - 282
5. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, पूर्व पीठिका, फतेह सिंह,
6. काव्य सौन्दर्य में उदात्त तत्व, शिव बालक राय, पृष्ठ - 128
7. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, दो शब्द, फतेह सिंह,
8. ऋग्वेद, 1/90/5
9. काव्य सौन्दर्य में उदात्त तत्व, शिव बालक राय ,पृष्ठ - 48
10. तुलसी साहित्य का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन, मोहन लाल श्रीवास्तव, पृष्ठ - 6 (टंकित शोध)
11. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, दो शब्द, फतेह सिंह
12. सौन्दर्य तत्वः सुरेन्द्र दास गुप्त, अनुवादक : आनन्द प्रसाद दीक्षित, पृष्ठ- 36
13. छन्दोग्य उपनिषद : तृतीय अध्याय
14. कठोपनिषद, 2/2/12
15. तैत्तरीय उपनिषद 3/6/1, वृह्दारण्यक उपनिषद 3/9/28
16. हिन्दी वैष्णव भक्ति काव्य, योगेन्द्र प्रताप सिंह, पृष्ठ - 237
17. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ - 38
18. सुन्दरं रुचिरं चारु सुषमं साधु शोभनम्।
    कान्तं मनोरमं रुव्यं मनोज्ञं मन्जु मन्जुलम्।। 'अमर कोष'
19. 'हितं मनोहारि च दुर्भलम् वच :'। किरातार्जुनीय, भारवि
20. श्रीमद् भागवत पुराण: देवव्यास (समीक्षा के आयाम डॉ. प्रताप सिंह चौहान, पृष्ठ - 293 पर उद्धृत)
22. तुलसी का काव्य सिद्धान्त, गीता गुप्ता, पृष्ठ 187-188
23. अंग प्रत्यंग कानां यः सन्विशो यथोचितम्।
    संश्लिष्ट संधिबधः उज्ज्वल नीलमणि, उद्दीपन प्रकरण (बम्बई-काव्यमाला 95) पृष्ट 274
24. 'न रम्यना हार्यम् पेक्षते गुणम्' - भारवि, किरातार्जुनीयम, चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ - 88
25. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय साहित्य अनुसंधान, पृष्ठ - 13- 14
26. 'अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वम् आकृति विशेषाणाम्।'- अभिज्ञान-शाकुन्तलम्, कालिदास, 1/18
27. 'किमिव हि मधुरावामाकृति विशेषणाम्।' - अभिज्ञान शाकुन्तलम्, कालिदास
28. 'यदुच्यते पार्वति पाप वृत्तिये न रूप भित्यव्यभिचारी तद्भव प्रियेषु सौभाम्य फला हि चारुता।'
    - कुमार सम्भवम्, कालिदास, 5/38
29. लिखन बैठि जाकी सकी, गहि-गहि गरब गुरूर।
    भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर।। बिहारी सतसई, बिहारी
30. सखि देखिय एक अपरूप। सहजहि आनन सुन्दर रे। - 'विद्यापति'
31. वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप
    हृदय में बनता प्रणय अपार
    लोचनों में लावण्य अनूप
    लोक सेवा में शिव अविकार - पल्लव, सुमित्रानन्दन पंत, पृष्ठ- 87
32. 'मन को द्रवीभूत कर जो सरसा दे स्नेह सुधा की धार.
    देख-देख हिय आनंदित हो, उपज उठे नैसर्गिक प्यार।

मंगल मय विधान में जिसके हो उठता गतिमय संसार,
है सौन्दर्य सत्य का वाचक, मानव जीवन का श्रृंगार।'

- अपर्णा महाकाव्य, डॉ. रामस्वरूप खरे, चतुर्थ सर्ग,

33. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन, डॉ. वीणा माथुर, पृष्ठ- 45.
34. कल्पलता, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेद्वी, पृष्ठ - 144-145
35. कल्पलता , डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेद्वी, पृष्ठ- 139
36. बृहद साहित्यक निबन्ध, डॉ. शान्ति स्वरूप गुप्त, पृष्ठ - 1007
37. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ - 302
38. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ - 45.
39. चिन्तामणि, भाग - 1, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ - 164-165
40. हंस कुमार तिवारी-कला से।
41. पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धान्त, लीलाधर गुप्त, पृष्ठ 213
42. सौन्दर्य विज्ञान, हरिवंश सिंह, पृष्ठ 56-57
43. सौन्दर्य तत्व. डॉ. दास गुप्त, पृष्ठ 253
44. भंझन का सौन्दर्य दर्शन, डॉ. लालता प्रसाद सक्सेना, पृष्ठ- 23
45. चिर-विलास, डॉ. सम्पूर्णानन्द, पृष्ठ 209
46. साहित्य की मान्यतायें, भगवती चरण वर्मा, पृष्ठ - 45
47. समालोचक का सौन्दर्य शास्त्र विशेषांक, फरवरी- 58 में सौन्दर्य वस्तुगत सत्ता और सामाजिक विकास निबन्ध से अवतरित
48. समालोचक का सौन्दर्य शास्त्र विशेषांक, पृष्ठ - 176.
49. समालोचक का सौन्दर्यशास्त्र विशेषांक, फरवरी 58 में, 'सौन्दर्य वस्तुगत सत्ता और सामाजिक विकास' निबन्ध से उद्धृत।
50. सौन्दर्य शास्त्र, हरद्वारी लाल शर्मा,पृष्ठ- 10
51. सौन्दर्य शास्त्र, हरद्वारी लाल शर्मा, पृष्ठ -80
52. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास (भूमिका भाग) डॉ. दशरथ ओझा, पृष्ठ - 30-31.
53. वैष्णव कवियों की सौन्दर्य भावना,डॉ. नर्मदेश्वर चतुर्वेदी,- समालोचक सौन्दर्य शास्त्र विशेषांक, फरवरी-1958.
54. सौन्दर्यानुभूति (लेख) बाबू गुलाब राय, समालोचक सौन्दर्य शास्त्र विशेषांक, अंक फरवरी - 1958.
55. आन आर्ट एण्ड ऐस्थेटिम्स, रवीन्द्र नाथ टैगोर, पृष्ठ- 6
56. टैगोर साहित्य, पृष्ठ - 35
57. टैगोर साधना, पृष्ठ - 14
58. रवीन्द्र नाथ टैगोर साधना, पृष्ठ - 125
59. आधुनिक कविता में प्रेम और सौन्दर्य, डॉ. खण्डेलवाल, पृष्ठ - 145.
60. साहित्य संतरण, इलाचन्द्र जोशी, पृष्ठ - 19.
61. आधुनिक काव्य में सौन्दर्य भावना, डॉ. शकुन्तला वर्मा, पृष्ठ - 28.
62. सत्य शिंव सुन्दरं- निबन्ध, डॉ. जैनेन्द्र, पृष्ठ - 166
63.हिन्दी साहित्य बींसवी शताब्दी, नन्ददुलारे बाजपेई, पृष्ठ- 164
64. छायावादी काव्य में सौन्दर्य दर्शन, डॉ. सुरेश त्यागी, पृष्ठ - 26
65. तुलसी का सौन्दर्य बोध, छोटे लाल दीक्षित, पृष्ठ-3
66. साहित्य शास्त्र, भारतीय विद्या-भवन, इलाहाबाद - 1956 डॉ. राम कुमार वर्मा, पृष्ठ-18
67. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, डॉ. फतेह सिंह,पृष्ठ - 126
68. द हिन्दू व्यू ऑफ आर्ट, डॉ. आनन्द कुमार स्वामी, पृष्ठ- 25
69. साहित्य शास्त्र के सिद्धान्त, डॉ. सरोजनी मिश्रा, पृष्ठ-9
70. समीक्षा के आयाम, डॉ. प्रताप सिंह चौहान, पृष्ठ-288
71. काव्य और कला, डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, पृष्ठ- 153
72. सौन्दर्य तत्व और कला सिद्धांत, डॉ. सुरेन्द्रवार लिंगे,पृष्ठ -34

73. काव्य में अभिव्यंजना वाद, डॉ. लक्ष्मी नारायण सुधांशु, पृष्ठ 82
74. हिन्दी काव्य में श्रृंगार परम्परा, महाकवि बिहारी, डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, पृष्ठ-33
75. हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि डॉ. भोलानाथ, पृष्ठ- 361
76. साहित्य शास्त्र के सिद्धांत, डॉ. सरोजनी मिश्रा, पृष्ठ -8
77. हिन्दी कविता में मनोविज्ञान, डॉ. उर्वशी, ज. सूरती, पृष्ट - 102
78. सूरदास की लालित्य योजना, डॉ. परेश, पृष्ठ-1
79. सौन्दर्य शास्त्र के तत्व, कुमार विमल, पृष्ठ- 71
80. सौन्दर्य शास्त्र की पाश्चात्य परम्परा, डॉ. राजेन्द्र प्रताप सिंह पृष्ठ- 28
81. समालोचक सौन्दर्य शास्त्र विशेषांक, अंक-फरवरी 1958 से उद्घृत।
82. ओरिजन ऑफ द सेन्स ऑफ ब्यूटी, ह्यूम, पृष्ठ -1
83. समालोचक, फरवरी 1958 के सौन्दर्य विशेषांक से उद्घृत
84. व्हॉट इज आर्ट, हीगेल, पृष्ठ - 100
85. व्हॉट इज आर्ट, हीगेल, पृष्ठ-100
86. समालोचक, फरवरी- 1958 सौन्दर्य विशेषांक से उद्घृत।
87. हिस्ट्री ऑफ एस्थटिम्स, सेफ्ट सेवरी, पृष्ठ 45
88. सौन्दर्य और रस (लेख) द्वारिका प्रसाद सक्सेना, समालोचक फरवरी- 1958 विशेषांक के पृष्ठ-1 से उद्घृत
89. साहित्य और सौन्दर्य, फतेह सिंह, पृष्ठ - 72
90. सौन्दर्य शास्त्र की पाश्चात्य परम्परा, डॉ. राजेन्द्र प्रताप सिंह, पृष्ठ - 54
91. समालोचक, फरवरी 1958 सं. 340 रामविलास शर्मा, पृष्ठ - 119
92. समालोचक, फरवरी 1958 सौन्दर्य विशेषांक से उद्घृत।
93. समालोचक, फरवरी 1958 सौन्दर्य विशेषांक से उद्घृत।
94. सौन्दर्य शास्त्र की पाश्चात्य परम्परा, डॉ. राजेन्द्र प्रताप सिंह, पृष्ठ - 69
95. आधुनिक काव्य में सौन्दर्य भावना डॉ. शकुन्तला वर्मा पृष्ठ - 7
96. पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परम्परा, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ - 128
97. समीक्षा लोक, भागीरथ दीक्षित, पृष्ठ- 32.
98. द ब्यूटीफुल इस नॉट ए फिजीकल फैक्ट ब्यूटी इज नॉट बिलांग टू द ह्यूमन एस्थेटिक्स एक्टविटी एण्ड दिस इज ए म्यूटल एण्ड स्प्रिटुअल फैक्ट।-फिलॉसफी ऑफ क्रोचे, बिलडनकेर,पृष्ठ- 164
99. बी में डिफाइन ब्यूटी एस एक्सिजफुल एक्सप्रेशन एण्ड बैटर एस सम्सप्रीजन एण्ड नथिंग मोर विकॉस एक्सप्रीसन इस नॉट सक्सिफुल इस नॉट एक्सप्रीजन।
100. सौन्दर्य तत्व, डॉ. दास गुप्त, पृष्ठ -188
101. बाय, ब्यूटीफुल बी गारनली अण्डर स्टैन्ड व्हॉटएवर व्हैन सीन हार्ड एण्ड अण्डरस्टुड डिलाइट्स व्लीसिस बाय क्यूसिंग विथ इन एक्सीएबिल सीजन एण्ड हैव गॉड इस द मोस्ट ब्यूटीफुल ऑफ ऑल थिंग्स।
फिलॉसफी ऑफ ब्यूटी, पृष्ठ - 60
102. द बैन्डिंग ट्रंक वारनिंग टू एण्ड फ्रौम इन द विन्ड अबब द वॉटर फॉल इस ब्यूटी फुल बिकॉस इट इस हैप्पी, थॉग इट इस परफैक्टली यूजलैस टू अस। -फिलॉसफी ऑफ ब्यूटी, पृष्ठ - 115
103. द एपरैन्सी ऑफ परफैक्टिनस एण्ड परफैक्शन आब्यूज टू टैस्ट इन द विड सीनस इज ब्यूटी।
- फिलॉसफी ऑफ ब्यूटी, पृष्ठ - 64
104. सौन्दर्य शास्त्र की पाश्चात्य परम्परा, डॉ. राजेन्द्र प्रताप सिंह पृष्ठ - 73
105. हिन्दी काव्य में श्रृंगार परम्परा और बिहारी, डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त।
106. भंझन का सौन्दर्य शास्त्र , डॉ. लालता प्रसाद सक्सेना पृष्ठ - 22
107. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, डॉ. फतेह सिंह पृष्ठ - 14
108. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, डॉ. फतेह सिंह पृष्ठ - 14

109. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, डॉ. फतेह सिंह पृष्ठ - 15
110.भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, डॉ. फतेह सिंह पृष्ठ - 15
111. सौन्दर्य शास्त्र के तत्व, डॉ. कुमार विमल, पृष्ठ - 93
112.सौन्दर्य शास्त्र के तत्व, डॉ. कुमार विमल, पृष्ठ - 91
113.सौन्दर्य शास्त्र के तत्व, डॉ. कुमार विमल, पृष्ठ - 93
114. लेकिंग्स लैकून, ट्रॉन्सलेटिड बाय ई. सी. वीस्ले।

लेकिंग ने यह विख्यात पुस्तक लैकून की रचना 1760 से 1765 के बीच में की थी, जिस समय यह ब्रेस्लाउ में रहता था उसने इस पुस्तक को बर्लिन में पूरा किया था। और 1766 में प्रकाशित किया था, यह प्रकाशन उसने 'रॉयल लाइब्रेरियन' के पद पर नियुक्ति पाने की आशा से किया था जा व्यर्थ सिद्ध हुआ, कारण उस समय 'लैकून' को महत्वपूर्ण कृति स्वीकार नहीं किया गया। -सौन्दर्य शास्त्र के तत्व, डॉ. कुमार विमल, पृष्ठ- 92

115. वोलांस्की के कलागत मान्यताओं के संक्षिप्त परिचय के लिये द्रष्टव्य
आलोचना, त्रैमासिक अक्टूबर 1953 में 'बोलंस्की की मान्यताओं का विकास' शीर्षक के निबन्ध
पृष्ठ 192-198 पर उद्धृत।
116. महादेवी के काव्य में लालित्य विधान, मनोरमा शर्मा,पृष्ठ - 128

चतुर्थ परिच्छेद

सौन्दर्य : कला और काव्य के परिप्रेक्ष्य में

चतुर्थ परिच्छेद

सौन्दर्य : कला और काव्य के परिप्रेक्ष्य में

सौन्दर्य काव्य और कला के परिप्रेक्ष्य में :- 'हम संसार में आनन्द जितना पाते हैं, सौन्दर्य जितना ही देखते हैं, उतनी ही हृदय में असाध्य प्रतीत और भी अधिक जाग उठती है। देखकर भी देखने की साध किसी तरह भी मिटती नहीं है, मालूम होता है यह अपूर्ण है। हमारा हृदय पूर्ण सौन्दर्य को चाहता है किन्तु वृत्ति के द्वारा उसका आस्वादन कभी किया ही नहीं जा सकता। वृत्ति में तो खंड सौन्दर्य ही आभासित होगा। इसलिये व्याकुलता बनी रहती है, इस साधना में विरह को इसलिये नित्य तत्व माना गया है। रूप की प्यास उसमें कभी मिटती नहीं। वृत्ति पूर्ण सौन्दर्य की प्रतिबन्धक है। सौन्दर्य का जो पूर्ण आस्वाद है, वृत्ति के रूप में विभक्त हो जाता है। वृत्ति से जिस सौन्दर्य का बोध होता है, वह खंड सौन्दर्य है, परिच्छिन्न आनन्द है। पूर्ण सौन्दर्य स्वयं ही अपने को प्रकट करता है, उसे कोई अन्य प्रकट नहीं कर सकता।[1] अत: कृति की सीमा रचकर कवि उसी असीम सौन्दर्य को पाना चाहता है , और उसी तत्व का आस्वादन करना चाहता है।

मनुष्य की सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यंजना के पीछे यही प्रेरणा कार्य कर रही है। इसी का विविध उच्छलन हम साहित्य में देखते हैं। कवि में प्रतिभा का विलास इसी शक्ति[2] का परिणाम है। इसी कारण कवि को उल्टा कहा गया है। प्रतिमा जो 'माँ' है वह आलोक (विजन) का सूचक है और 'प्रति' जगत् के प्रति उसकी प्रतिक्रिया 'एस्थेटिक-रेस्पोन्स' का। कवि की प्रतिमा के आलोक से सारा जगत-विशेष सौन्दर्य प्रभा से आलोकित हो उठता है। पाश्चात्य कल्पना ही काव्य में सौन्दर्य की सृष्टि किया करती है। मिल्टन, प्लेटो, वर्जिल तथा होमर आदि ने प्रतिभा को देवी प्रेरणा, दैवी वरदान माना है।[4] हमारे यहाँ इसी को 'अपूर्व वस्तु'[5] निर्माण क्षमा प्रज्ञा कहा गया है। मनुष्य पूर्ण सौन्दर्य और पूर्ण आनन्द का आस्वाद करना चाहता है, इसलिये अपनी संस्कृति विकास यात्रा में उसने भिन्न कलाओं की रचना की है।

रस , सौन्दर्य और आनन्द तात्विक दृष्टि से एक ही हैं - इसमें कोई भेद नहीं है। इसलिये किसी-किसी ने सौन्दर्य को भी रचना का मूल कहा है।[6]

सौन्दर्यानुभूति जीवन की विशिष्ट अनुभूति है। इसका प्रभाव अमित और आनन्द कारी होता है। यदि यह महत्वपूर्ण भावना न होती तो साधकों ने लीला रस की साधना में अपने आराध्य के

परम स्वरूप की कल्पना कभी न की होती। सौन्दर्य की भावना से हमारी साधारण वृत्ति में यथार्थ का दंश रहता है।[8] सौन्दर्यानुभूति क्षोभ, उद्वेग से रहित परम विश्रामदायिनी होती है। यह हमारी चेतना के लिये आह्लादक और उसे रस के तीर पर उत्तीर्ण करने वाली होती है। **डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा** ने इसे जीवन के लिये परम उपयोगी कहा है।[9] दार्शनिक दृष्टि से तो यह जीवन का परम आधार है। इसलिये कुशल सृष्टा ने सम्पूर्ण सौन्दर्य की जननी पृथ्वी पर दिव्य सौन्दर्य के अक्षय निधान रूप आकाश के नीचे जीवन का आविर्भाव किया है। इससे भी बढ़ कर मनुष्य को सृजन के लिये स्वाभाविक प्रवृत्ति देकर आध्यात्मिक अभिव्यंजना के द्वार खोल दिये हैं।[10]

पर्सी ब्राउन का कथन है-' कि सौन्दर्यानुभूति और सौन्दर्य सृष्टि की चेष्टा मानव जाति की उत्पत्ति के साथ ही है। अंग्रेजी में जिसे 'आर्ट इम्पल्स' कहते हैं, यह मानव मात्र में विद्यमान रहती है, किन्तु इसका विशेष प्रकाशन कलाकार में ही देखा जाता है।[11]

सौन्दर्य चेतना जीवन की अत्यन्त व्यापक चेतना है। सांस्कृतिक सोपानों का विकास इसी का फल है। जीवन का विविध सौन्दर्य मनुष्य को सदा घेरे रहता है। किन्तु मात्र सौन्दर्य चेतना काव्य नहीं है। सौन्दर्य की सान्द्र अनुभूति जब ललित अभिव्यक्ति के माध्यम से प्रकट होती है, तभी काव्य का उन्मेष होता है। यह अभिव्यक्ति प्रतिभा समुद्भूत होती है। वैसे तो मानव मात्र अपनी अनुभूति को, हाव-भाव, प्रसन्नता-उल्लास, सुन्दर उक्तियों के माध्यम से व्यक्त करता है किन्तु वे उक्तियाँ रचना का रूप धारण नहीं करती। अनुभूति रचना में ढल सके इसके लिये विशेष गुणों और शक्तियों की आवश्यकता होती है। कवि और कलाकार इन्हीं से सम्पन्न होता है। सौन्दर्य की अनुभूति होते ही कवि की रचनात्मक शक्तियाँ गतिशील हो उठती है। उन्हीं से उसकी अनुभूति साहित्य में प्रतिफलित होती है। किन्तु प्रथम अनुभूति की छाया से लेकर पूर्ण अन्वित कृति में ढलने के बीच रचना के कई स्तर होते हैं। यह अत्यन्त जटिल उलझी हुई प्रक्रिया है। जिसके विश्लेषण से रचना का रहस्य प्रकट होता हुआ सौन्दर्यबोध काव्य में ढल जाता है। कवि या कलाकार अपनी अपूर्व प्रज्ञा व रचना विधायिनी कल्पना के बल पर यह कर्म कर पाता है।[12]

इस प्रकार सौन्दर्य साधना निखिल के साथ आत्मा के योग का सोपान है। उसकी 'कुक्षि' में अमृत का घट विराजमान है, उस घट पर जीवन और प्राणों के आम्रपल्लव सुशोभित हैं। और सौन्दर्य सुषमामय सामंजस्य साहित्य में प्रकट होता हुआ पाठकों के हृदय की गहराइयों में डूबता जा रहा है।

भारत में काव्य को कला से ऊपर स्थान दिया गया पश्चिम में उसकी गणना कला के अन्तर्गत

की गई है। पश्चिमी समीक्षा शास्त्र के प्रभाव के कारण जब हिन्दी में कुछ आलोचकों द्वारा काव्य को कला मानकर विवेचन किया जाने लगा तब प्रतिक्रिया में भारतीय स्वर भी मुखर हुआ। परिणामस्वरूप काव्य बोध के विषय में एक अव्यवस्था की स्थिति बन गई। तब गुप्त जी ने अपने काव्य साहित्य के द्वारा उस वैचारिक धुन्ध को हटाने का प्रयास किया। उन्होंने इस दृष्टि भेद के मूल में पश्चिम और भारत के सौन्दर्य-बोध की भिन्नता को माना।

गुप्त जी ने भारतीय दृष्टि के अनुसार कला को उप विधा मानकर उसका विवेचन प्रस्तुत किया है वे काव्य में आत्मानुभूति की प्रधानता का स्पष्ट प्रतिपादन करते हैं :-

कला सौन्दर्य की अभिव्यंजना :- काव्य में जो आत्मा की मौलिक अनुभूति की प्रेरणा है, वहीं सौन्दर्यमयी और संकल्पनात्मक होने के कारण अपनी श्रेय स्थिति में रमणीय आकार में प्रकट होती है। यह आकार वर्णनात्मक रचना विन्यास और कौशलपूर्ण होने के कारण प्रेय भी होता है। रूप के आवरण में जो वस्तु सन्निहित है, वही तो प्रधान होगी। [13] आइये अब कला के रूप-सौन्दर्य पर अपनी दृष्टिपात करते चलें।

कला सौन्दर्य की अभिव्यंजना में भरत का नाट्य शास्त्र परवर्ती रचना है जो भारतीय सौन्दर्य दर्शन के लिये प्रस्थान ग्रन्थ माना जाता है। इसका आधार मनोविज्ञान और लोक विज्ञान है जिससे भारतीय कला दृष्टि ने अनेक लोक तत्वों को ग्रहण किया और पचा लिया। परन्तु इसमें कला की 'समग्र' दृष्टि अक्षुण्य है, क्योंकि इसमें काव्य-रूपक-चित्र-मूर्ति-संगीत-नृत्य-सज्जा-श्रृंगार-अभिनय आदि तत्वों को काटा-बांटा नहीं है। ये सब एक ही अंगी के अंग है और वही अंगी नाट्य है। स्पष्ट ही, भरत का नाट्य शास्त्र रस शास्त्र , अलंकार शास्त्र अथवा काव्य शास्त्र नहीं है जिसके लिये वह आधार बन गया है।

माना कि नाटक का प्राण अनुकरण है परन्तु भरत के अनुसार यह कोश अनुकरण नहीं है; वरन् भावानुकरण है, अर्थात् भावों का अनुकरण, अर्थात् चारों प्रकार का अभिनय, परन्तु भावों का अभिनय समूचे तन-मन के वितान में भावों का ज्वार उठता है। भाव शून्य अभिनयकी बात सोचना भी कठिन है। और जब तन - मन में भावों का ज्वार उठता है तो शरीर की रग-रग में लोच-लय जग उठती है,थिरकने लगती है, पद-चाप लहराने लगते है, तन्वंगीलता जैसे नर्तक-नर्तकी रंगमंच पर। मन के चेतन-अचेतन अन्तरालों में भावों की ज्योति और ज्वाला भी जग उठती है। तन-मन की यह झनझनाहट, जो घंटे में चोट मारने के बाद कुछ देर तक होती है, आचार्यो के मत के निर्ह्लाद है। अनुकरण इसी का नाम है, जो नाटक अथवा अभिनय से सिद्ध

होता है, मनोविज्ञान जो सौन्दर्यानुभूति का विवेचन करता है इसको 'रिसोलेन्स रिबनब्रेसन' कहता है। इसका सीधा अर्थ है ध्वनन या प्रतिध्वनन या अनुगूँज। मनोविज्ञान का सत्य यह है कि नाट्य अथवा रंग का अभिनय मंच पर होता है तो दूसरा मन के भीतर चलता है। भरत ने रसानुभूति को 'आग' की अनुभूति माना है। जो तन-मन में सूखे काठ की भांति फैल जाती है। इसी को रस ज्योति और ज्वाला कहते हैं।[14]

तब अनुकरण-भावानुकरण-भावभिनय सचमुच अनुरणन से दूर नहीं हो सकता। अनुकरण के बिना अनुरणन सम्भव नहीं और अनुरण के लिये समस्त तन-मन बज उठना (अनुगूँज) आवश्यक है। अनुकरण और अनुरणन दोनों ही काव्य में निहित तत्व है और दोनों की अन्वित का नाम नाट्क है। यह है कलात्मकता , सौन्दर्यानुभूति, और यही कला की समग्र दृष्टि है। भारतीय कला दृष्टि।[15]

आदिम मानव का भाव जीवन कितना समृद्ध था जिसे देखकर हम सभी चकित हो जाते हैं। विज्ञान हमारी इस आकांक्षा को पूरा करता है। किन्तु जानने की इच्छा से प्रबल है मन में होने की इच्छा, और इस भाव की तुष्टि और समृद्धि कला से होती है। कला ही हमारे अस्तित्व के अचेतन अंधेरों में प्रवेश करती है और पलती है। जिनको लेकर कलाकार उसे रचता है। विज्ञान विश्लेषण तो कर सकता है परन्तु भावों की गहराइयों में नही उतर सकता।

आदिम मानव अत्यन्त कल्पनाशील था। यही कारण है कि उसने संस्कृति के झुटपुटे में अनन्त देवी- देवताओं ,प्रतीकों की रचना कर डाली जिन्हें हम आज भी नहीं भुला पा रहे हैं। और तो और उसने कला के सनातन विधानों को खोज-लिया, जो आज कला को विज्ञान स्वीकार कर रहे हैं, जिससे सिद्ध होता है कि हमारा वह पुराण-पुरुष, आज के पैमानों से असभ्य होते हुये भी संस्कृति की सभ्यताओं में बहुत समृद्ध था, और इसका आधार था उसका सहज कला-प्रेम। दिन भर के आखेट के बाद सरिता सरोवर समुद्र के बालुकामय पुलिनों पर मिल-जुल कर बैठना बहुधा आग के चारों ओर ; निबिड़ निशा की घुप्प अधियाँरी हो, या चन्द्रमा की उजियाली; उछाह हो या शोक का अवसर ; कोई संस्कार हो, अनुष्ठान हो, विवाह हो, जन्म हो, मौत हो; आदिम का नृत्य में थिरक उठना ; बाजों की जयताल युक्त धुनें जो मन मस्तिष्क पर छा जायें ; भावों का अनुकरण करने वाली नृत्य मुद्रायें ; मंत्र जैसी पवित्र ऋचाओं का उद्‌गान ; रंग रेखाओं और मुखौटों से की गई देह सज्जा। यह थी आदिम कला, जिसका शास्त्रीय नाम नाट्य है। इसे सीखने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि यह सहज थी। सच यह है कि कला के सारे विधान

लय-ताल-सन्तुलन-संवाद-समन्वय और समग्रता मनुष्य के तन- मन में समाहित है। सचमुच नाट्य ही जीवन है जिसे हम कलात्मक सुन्दर रूपायित भावाभिव्यक्ति कहते हैं। क्या यह सच नहीं कि हम सब 'नट' है। कारण भावाभिव्यक्ति के लिये हमारी निरन्तर चेष्टा। कला मात्र मनोविनोद के लिये नहीं होती, यद्यपि देखने पर मन का मोदन मामूली बात नहीं है। वह जीवन की विराट् शक्ति है, आज भी, कभी भी। [16]

कला रचना है, इसलिये इसमें लालित्य की, सौन्दर्य की प्रधानता रहती है। लालित्य और सौन्दर्य दोनों आत्मा तथा आनन्द के नित्य सहचर हैं। इसके मूल में है सृष्टि की इच्छा सिसुक्षा। [17] इस सिसुक्षा को शैव दर्शन में सृष्टि रचना (कला) का मूल कहा गया है। कालिदास की लालित्य योजना में **हजारी प्रसाद द्विवेद्वी** ने इसका सूक्ष्म विश्लेषण किया है -

सच्चिदानन्द स्वरूप महाशिव की आदि सिसुक्षा ही शक्ति के रूप में वर्तमान है। प्रलय काल के पश्चात् निष्क्रिय शिव की लीला-प्रयोजन की अनुभूति होने पर यही जगत् को प्रपंचित करती है। शिव की लीला सखी होने के कारण ही उन्हें ललिता कहते हैं। यह लोक रचना उसकी क्रीड़ा विनोद के साथी है। सदानन्द उनका आहार है-आनन्द ही एक मात्र उनका भोजन है और सद्भक्तों का पवित्र हृदय ही उनकी वास भूमि है। [18] लीलास्तवराज में कहा है-

क्रीड़ा ते लोक रचना सखा ते चिन्मय ; शिव :।
आहारस्ते सदानन्दो वासस्ते हृदयं सताम्॥

'ललिता सहस्त्रनाम' में उन्हें 'चित्कला', 'आनन्द कलिका' 'प्रेमरूपा प्रियंकरी', 'कला-निधि' काव्य कला रसज्ञा 'रसशेवधि' कहकर स्तुति की गई है। जहाँ कहीं मनुष्य चित्त में सौन्दर्य के प्रति आकर्षण है, सौन्दर्य रचना की प्रवृत्ति है, सौन्दर्य के आस्वादन का रस है- वहाँ महामाया का यही रूप वर्तमान रहता है, इसलिये सौन्दर्य के प्रति आकर्षण से मानव के चित्त में परम शिवं आदि की क्रीड़ेप्सा ही मूर्तिमान हो उठती है, वह प्रकारान्तर से महाशक्ति के लालिता रूप की ही पूजा करती है, ललित कला और आनन्द की निधि है, वही समस्त प्रेरणाओं में विराजती है।

शैव दर्शन में कला को महामाया का कंचुक भी कहा गया है। पर यह कला का स्थूल रूप है यह शिव के रूप में, रेखा में मूर्तमान प्रकाश करने वाली मानसी शक्ति है। [19]

डॉ. आनन्द कुमार ने माया को अद्वैतवादी अर्थ में न लेकर उसे रचना करने वाली शक्ति 'क्रियेटिव पावर' के अर्थ में लिया है। [20] तुलसी ने भी उत्तर रामचरित में यही संकेत किया है। [21] इसलिये इसका यहाँ यही अर्थ ग्रहीत है। इसी की सृष्टि होने के कारण इस जगत् को

काव्य का देवता कहा गया है।

भवभूति ने वाणी की साधना को आत्मा की कला कहा है। मनुष्य में जिस क्षण आत्मा का उल्लास जाग उठता है उसी समय उसकी अभिव्यक्ति विभिन्न रूपों में साकार हो उठती है। ये रूप कलाओं के विभिन्न प्रकार हैं। मनुष्य अपने को व्यक्त करके अपनी आत्मा का विस्तार करना चाहता है, अपने अमृत रूप को अक्षर ब्रह्म के माध्यम् से प्रत्यक्ष देखना चाहता है। मनुष्य की कलाओं का विस्तार वस्तुत: उसके आत्मविस्तार का ही नाम है। इस विस्तार में अपने को अपनी कला रचना के रूप में बार-बार पा कर मनुष्य आनन्दित हो उठता है। तुलसी ने इसी सत्य की ओर इंगित किया है:-

भाषा बद्ध करबि मैं सौई। मोरो मन प्रबोध जेहिं होई॥ [22]

अत: कहा जा सकता है कि आत्मा में उच्छलित सौन्दर्यानुभूति कलाकार की इन्द्रियों के माध्यम से हृदय में बार-बार उतर सके, इसलिये कलाकार ने कला का सर्जन किया है।

इस प्रकार प्रत्येक कला वृत्ति को सार्थक उद्दीपन का स्त्रोत माना जा सकता है। वह एक सृष्टि है जिसमें चेतना स्वयं साकार होती है। किसी आदि संगीत अथवा अमरीकी इंडियन राग को सुनिये। संस्कृति के ऊँचे धरातल पर, साम संगीत सुनने पर प्रतीत होता है कि ध्वनियों के पीछे जीवन की गम्भीर गुहा से करुण स्वरों में हमें कोई पुकार रहा है। वैदिक साम की स्वर धारा में स्थूल कुछ प्रतीत नहीं होता, वरन् लगता है कि चेतना स्वयं पिघल कर हमारे अन्तर में अमृत ज्योति की धारा के रूप में उमड़ना चाहती है, वेगपूर्वक नहीं शान्त, हौले-हौले। नृत्य-वादित्र-गीत, चित्र-मूर्ति-वास्तु-स्थापत्य आदि कलाओं में चेतना को उद्दीप्त करने की अनोखी सामर्थ्य होती है। प्रत्येक कृति अपने में एक विश्व है, पूर्ण और विराट, किसी का उच्छिष्ट अनुकरण और पुनरावृत्ति नहीं। अतएव नूतन होना, और नूतन का अक्षय स्त्रोत होना कला कृति के लिये सहज है। [23]

कला ही एक ऐसी वस्तु है जो अपनी संवेदनशीलता के साथ हृदय की गहराई में डूबती-उतराती और अपनी सुगंध को चारों ओर बिखेर देती है। इसके बिना हम अपने आपको तन्हा सा अनुभव करते हैं। हमारे जीवन के तनावों को कला रूपायित करती है। और जो काव्य के रूप में मुखरित हो उठता है, तथा वह मानव के रूप बोध और रूप चेतना और रूप लालसा को अर्थ दीप्तियों से पुष्ट करती है। इस प्रकार कला युग का दर्पण है।

कला में मानव सौन्दर्य की अभिव्यक्ति ही कला के निर्माण की मूल प्रेरणा है। कला सौन्दर्य की मानवता ही कला को औचित्य और महत्व देती है और यही मानवता कला सौन्दर्य की अचूक

कसौटी है। इसी कारण यह अधिक मार्मिक होता है। स्वर, वर्ण, शब्द, रेखा आदि इसके पार्थिव माध्यम होते हैं किन्तु इसका आध्यात्मिक माध्यम कलाकार की मानवता है। और वह मनुष्य होने के कारण ही कला द्वारा ही सौन्दर्य की सृष्टि करता है।

कवि अपनी प्रतिभा के माध्यम से ही जड़ को चेतना बनाता है और वस्तु को अपनी मानवता से ओत-प्रोत करके उसे रसास्वादन के योग्य बना देता है अत: कला का सत्य कलाकार की मानव अनुभूति का सत्य है।

'अत: यह स्वीकार करना चाहिये कि कला का मूल स्त्रोत प्रकृति नहीं, पुरुष है, इसलिये कला सृजन की प्रक्रिया अनुकरण नहीं अभिव्यक्ति है।

अत: संक्षेप में कला के रूप सौन्दर्य पर दृष्टिपात करते हुये कहा जा सकता है कि सौन्दर्य कला के क्षेत्र से बाहर नहीं है। वह एक प्राकृतिक सौन्दर्य है, जिसमें रूप भोग अभिव्यक्ति है, उसमें सभी रसों की सरसता है। उसमें पुष्पों के कोमल सौन्दर्य से लेकर नदियों ,समुद्र तक का उदात्त सौन्दर्य विद्यमान है। जो व्यक्ति प्रकृति के इस सौन्दर्य का आस्वादन करने में असमर्थ है, वह कला के मार्मिक सौन्दर्य में अवगाहन नहीं कर सकता।

रूसी दार्शनिक **कैनोचित** का कथन यहाँ कितना समीचीन है-'सौन्दर्य प्रकृति की व्यापक भावना है, जिसकी प्रेरणा से उसका उद्गम और विकास हुआ है।' [24]

हमारे आकाश और उसके पिण्डों का निर्माण, वनस्पति और जीव-जगत् यहाँ तक कि समाज में भी विकास द्वारा प्रकृति के अधिकाधिक सौन्दर्य को व्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है। हमारे देश में कपिल के सिद्धान्त और सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति नहीं है, जो अनेक आभरणों से सज्जित होकर पुरुष के मनोरंजन के लिये मनोहारी नृत्य करती है। प्रकृति स्वभाव से ही मनोहर और सुन्दर है, और पुरुष उसका भोक्ता।

कला प्रकृति सौन्दर्य से बढ़कर एक अनुपम सौन्दर्य की सृष्टि करती है। वह केवल प्रकृति का अनुकरण ही नहीं करती वरन् उसका चित्रण भी करती है। कला के द्वारा ही हृदय में स्वरों के भावों की जगमगाहट लिये हुये संगीत का सृजन होता है, चित्रकार की तूलिका से रंग और रेखाओं का आकार लिये हुए सजीव चित्र निकल आते हैं। एक पत्थर भी कुछ भावों को पाकर सजीव हो उठता है तथा कवि अनेक लोकों के शब्दों में चमचमाहट प्रेम के उन्माद और प्राणों की पीड़ा को भर देता है। वह सुध -बुध को भुलाकर एक अलौकिक आनन्द की ओर ले जाता है। अत: कला का उदय कलाकार के हृदय में होता है,वहीं पलता है और बड़ा होता है। फिर अनेक माध्यमों से व्यक्त होता

है। स्वयं कवि भी अपनी उस अवस्था से परिचित नहीं होता जिसमें कला का उदय और सृजन होता है, किन्तु वह उस संसार की झाँकी को देख लेता है, उसे अस्पष्ट ही सही पर समझ जरूर लेता है।

ये तो थी कला की बात। आइये, अब कुछ दृष्टि काव्य पर भी डालते चलें :-

काव्य सौन्दर्य की अभिव्यंजना :- आधुनिक काव्य का सम्पूर्ण सन्दर्भ नाट्य है। इसे मात्र भणिति कृति निर्मित अथवा शब्दार्थ मान बैठना कला अथवा काव्य के विज्ञानियों को आज मान्य नहीं रहा। इसमें नाट्य के सभी तत्व मिलते हैं। लय ,ताल, छन्द और संगीत से निर्मित काव्य की गति, काव्यात्मक अभिव्यक्ति के लिये अनिवार्य आवश्यकतायें है, न कि रचनाकार की इच्छा के विकल्प। अलंकार-गुण-रीति-वक्रोक्ति और उक्ति की विचित्र भंगिमायें काव्य के अन्तरंग लक्षण है, न कि बाहर से लादी गई सज्जायें। इसकी समूची और सच्ची मीमांसा नाट्य के सन्दर्भ में ही सम्भव है, क्योंकि रस न तो शब्द में रहता है न उसके अर्थ में । वह आंगिक-आहार्य-वाचिक-सात्विक चारों प्रकार के अभिनयों से व्यंजित होता है। रस की व्यंजना जिसे हम रसास्वादन कहते हैं, तन- मन के समूचे वितान में छा जाने वाली एक घटना है। वह पदार्थ-जैसे, शर्बत, तो है ही नहीं। अभिनय के साथ-साथ नृत्य-नृत-संगीत-सज्जा और शृंगार रस की व्यंजना में सहायता करते हैं। नाट्य के सम्पूर्ण सन्दर्भ में से काव्य को काट कर उसकी मीमांसा शव- परीक्षा जैसा लगता है।[25]

यदि काव्य से अभिनय शब्द को निकाल दिया जाये (चारों प्रकार का अभिनय) तो वह सिर्फ शब्दाडम्बर मात्र रह जायेगा, जिसे हम संगीत भी नहीं कह सकेगें। क्योंकि संगीत भी बुद्धि के रास्ते से बच कर सीधा भाव-जगत् तक पहुँच जाता है। भावों का अभिनय संगीत का प्राण है। भरत ने कवि को सीख दी थी :-

शब्दानुदार मधुरान् प्रमदभिनेयान्, नाट्याश्रयान् नु कृतिषु प्रयते कर्तुम।
तै र्भूषिता बहु विर्भान्त हि काव्य बन्धा: पद्माकरा विकसिता इव राज हंसै :।।[26]

अर्थात् कवि को अपनी कृति में उदार और मधुर-शब्दों को लाने का प्रयत्न करना चाहिये। जो प्रमदा द्वारा अभिनय के योग्य हों। इस प्रकार भूषित होकर काव्यबन्ध राजहंसों से युक्त पद्माकर की भाँति शोभायमान हो उठते हैं , और जो नाट्याश्रय हो : नाट्य जिसका आश्रय हो। ऐसे मधुर शब्द।

उर्प्युक्त में भरत ने सब कुछ कह डाला। नाट्य अभिनयों के माध्यम से आस्वादन के योग्य होता

है। अतएव अपनी समग्रता में काव्य की आत्मा उसकी कलात्मकता है। शब्दार्थ= भाषा काव्य गठन के लिये माध्यम् है, ठीक वैसे ही जैसे सुन्दरी की प्रतिमा के लिये शिला, अथवा संगीत के लिये स्वर। परन्तु माध्यम के माध्यम से हम पूरी परिभाषा नहीं कर सकते। कलात्मकता यदि काव्य का प्राण है तो इसकी परिभाषा होनी चाहिये:-

कलात्मकं शब्दार्थरूपं काव्यम्।[27]

आचार्य ने इसीलिये कहा है :-

'अखण्ड बुद्धि समास्वाधं काव्यम्।

काव्य का आस्वादन अखण्ड बुद्धि करती है, खण्डित नहीं। व्यक्तित्व के एकांश से नहीं सर्वांश से रसास्वादन होता है।

यदि रस पदार्थ नहीं, रसास्वादन की घटना है तो यह घटना नाट्य है अर्थात् इसमें भावाभिनय और अनुगूँज दोनों अनुस्यूत रहते हैं। इस दृष्टि से **आचार्य विश्वनाथ** की परिभाषा :- 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं।' चिन्ता के योग्य है काव्य को कलात्मक=नाट्यात्मक= अनुकरण+अनुरणन की समन्विति मानना अधिक संगत होगा, न कि मात्र रसात्मक। यह निष्कर्ष भरत और आधुनिक चिन्तन के समीप है। इसलिये ये विचार उतना ही आदिम भी है, जितना आधुनिक।[28]

'रूपं कलात्मकं काव्यं'

काव्य वह रूप है जो कलात्मक हो।

रूप सृजन है जिसमें अनेक तत्व एकात्मक होकर झलक उठते हैं। सृजन प्रकृति और प्रतिभा के गर्भ में घटित होने वाली वह घटना है ; समान नियमों में आबद्ध[29] जिसका अनुभव हम बीज में अंकुरण से पूर्व की कुलमुलाहट में कर सकते हैं।

कलात्मक रूप काव्य होता है। आलोचन की एक समर्थ अद्यतन धारा काव्य को भाषा[30] तक सीमित रखना स्वीकार नहीं करती। काव्य वस्तुत: कलात्मकता का पर्याय है। काव्य में रूप की झलक सामने उतर आती है, जिसे चर्मचक्षु से तो नहीं देखा जाता किन्तु जिसका मानस[31] प्रत्यक्ष कवि और पाठक दोनों करते हैं। काव्य में वाक्यों का क्रम , अर्थ का गठन यहाँ तक कि उसकी संगति-ये सब ऊर्जास्वित रूप के अधीन हो जाते हैं जिसके बल से मन की आँखे जीवन की आन्तरिक शक्तियों का स्पष्ट साक्षात्कार करने में समर्थ होती हैं।

इस प्रकार कि जीवन स्वयं जग उठे, प्राणों में लय गति का संचार हो जाये, मन की विषमताओं के बीच संगीत की स्वर धारा बह उठे, तार्किकता से ऊपर उठकर बुद्धि ज्योति: स्नात होकर अद्भुत

अन्त:संगीत और सन्तुलन का अनुभव करे- यही काव्यात्मकता है, रूप की कलात्मक अनुभूति, काव्य का साक्षात्कार। [32]

काव्य अनन्त ऊर्जाओं के विभव से भर कर, शब्द, नाद, शिला रेखा-रंग, विस्तार, आयतन न जाने कितने माध्यमों से प्रकट होने के लिये आकुल हो उठता है, और सृजन के क्षण में प्रकट हो जाता है। सृजन-मनोविज्ञान इस रूप को जो आँखों से न देखा जा कर भी देखा जाता है, अथवा जो देखते हुये भी नहीं देखा जाता-काव्य का बीज मानता है ; वह कारण शक्ति जिससे काव्य का प्रादुर्भाव होता है।

काव्य नि:सन्देह जीवन के समान व्यापक है और बाह्य जगत के साथ-साथ वह आन्तरिक जगत् का भी चित्रण करने वाला होता है। यही कारण है कि काव्य हमें सदैव नित-नई प्रेरणायें देता है। वह हमें यथार्थ जीवन की भूमि पर काल्पनिक किन्तु आदर्श जीवन की प्रेरणा देता है। काव्य और जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध माना जाता है।

काव्य जीवन की ललित अभिव्यक्ति है। इसलिये जीवन के मूल में जो प्रेरणायें गतिशील हैं, वही काव्य चेतना की जनक हैं। जीवन प्राणों की धारा का रसमय विलास है। [33] जीवन के मूल में व्याप्त अनन्त सत्ता के ताल-ताल पर नर्तन करती हुयी यह धारा अनादि काल से प्रवाहित होती आ रही है। [34] इस गति के मूल की खोज दर्शन [35] की चिरन्तर साध रही है , और उसके लास्य [36] पर मुग्ध हो कर उसे वाणी देना कवि की साधना है। दोनों के प्रस्थान भिन्न हैं, किन्तु लक्ष्य एक। [37] बुद्धि द्वारा एक विश्व को हृदयंगम करने का नाम कविता है। ...दर्शन हमारी बुद्धि को सन्तुष्ट करता है और काव्य हमारी कल्पना और आत्मा के लिये भोजन प्रस्तुत करता है। [38] भारतीय दर्शन में उसे सत्-चित्-आनन्द कहा है। मनुष्य की आत्मा इसी ब्रह्म का अंश है। [39] काव्य और कलायें ब्रह्म के इसी आनन्द [40] रूप को लेकर चलती हैं।

काव्य का यह रस सहृदय-सापेक्ष्य होता है, व्यक्ति की अनुभूति से स्पंदित होकर भी अवैयक्तिक धरातल पर आस्वादित होता है। यह वैश्विक चेतना ही कृति को विशेष देश-कला से ऊपर उठा देती है। 'अपरितोषाद विदुषा' [41] की आकांक्षा ही कवि के आनन्द को वाणी का परिधान पहना देती है। जैसे स्वभित्ति पर [42] सृष्टि-रचना कर आनन्द लेता है, रमण करने के लिये द्विधा [43] विभक्त होता है उसी प्रकार कवि अपने हृदय की अनुभूति को रूप के माध्यम से दूसरे के हृदय में उतार कर उसे बढ़ाना चाहता है। सिसृक्षा के आनन्द के रस की गति दुहरी होती है। विभाग से रचयिता के हृदय में उठ कर भावक के हृदय में स्थान पाना चाहती है। वहाँ से लौटकर पुन: सर्जक को पुलकित

तृप्त करना चाहती है-तभी वह वृत्त पूरा होता है। भवभूति तो विपुल पृथ्वी और अनन्तकाल तक इसे सराह सके।

इस प्रकार साहित्य रचना के मूल में सिसृक्षा और अभिव्यक्ति का आनन्द दोनों ठहरते हैं। [44]

कलात्मक रूप काव्य होता है। ताजमहल शिलामय वस्तु काव्य है। नटराज धातु में ढाला गया शान्ति और शक्ति का समन्वित-सन्तुलित रूप है, जिसमें क्षण और सनातन, गति और स्थिति, एक ही ठुमक, एक ही लय गति के आरोह-अवरोह श्वासोच्छवास से प्रतीत होते हैं। अजन्ता की गुफाओं के भित्ति चित्रों में रेखा व रंग की भाषा में निबद्ध कविता के स्वर सुने जा सकते हैं। यहाँ कलात्मक रूप है, सृजन है, नूतन है जो मन के गम्भीरतम्, प्रियतम्, सत्यतम् भाव, मूर्तिमान होकर 'प्रभाव' बन गये हैं, वह काव्य है।

शब्दों के झीने आवरण के पीछे अर्थ ज्योति की जो झलक झिलमिलाती है, रूप की जो लौ उठती है, लावण्य की जो लपट फूटती है, वही सचमुच काव्य तत्व है। काव्य का बीज अथवा काव्य की कारण शक्ति ठीक वैसे ही जैसे-शिला सरस्वती महिष मर्दिनी अथवा वीनस नही वरन् इन देवियों की मानस प्रत्यक्ष के योग्य दिव्य झाँकियाँ। यदि शब्दों के रूप में झाँकी नहीं, तो उसे हम जो कहें, काव्य नहीं कह सकते। काव्य न वचन है, न कथन है। कथन चाहे जितने सुन्दर शब्दों-या छन्दों के सुनहरे ताने-बाने से बुना गया हो, काव्य नहीं होता। न कथन ही काव्य होता है। काव्य सृजन के पीछे जो कारण शक्ति रहती है, वह जीवन मन प्राण आत्मा में मन की गहराइयों में गतिमान मूर्तित होने के लिये मचलती हुयी अर्थ ज्योति है। जिसमें संगीत की लयात्मक ध्वनि धारा बहती है। इसे सहृदय कवि और पाठक सुनते हैं, गुनगुनाते हैं, और झूम उठते हैं। काव्य में लय और अनाहत नाद का अन्त:संगीत अनिवार्य तत्व है। अन्तर में सुने जाने वाले इस संगीत में कवि के अखिल अखण्ड जीवन का सारा ओज- तेज- ऊर्जा समाये रहते हैं और इसके अभाव में काव्य का जन्म सम्भव नहीं है। [45]

इस प्रकार शब्द और अर्थ का सुन्दर साहचर्य ही काव्य या साहित्य में मान्य है। यह तत्व ही काव्य सौन्दर्य का जनक है। यह तत्व आगे चलकर इतना सूक्ष्म और विस्तृत हो गया है कि वह काव्य प्राणरस का मुख्य अभिव्यंजक बन गया है। यही आनन्द का जनक हो गया है। इसी से काव्य में रमणीयता उत्पन्न होने लगी यहाँ तक कि साहचर्य जनित शोभारालिता [46] के प्रति उन्मुख कवि व्यापार ही काव्य कहा जाने लगा। अत: इस साहित्य भावना का भी सौन्दर्य बोध में विशिष्ट महत्व है। शब्द और अर्थ का सामान्य साहचर्य तो शास्त्र मात्र का व्यापार है बिना इसके तो अभिव्यक्ति

ही सम्भव नहीं। किन्तु काव्य में यह साहचर्य प्रसिद्ध मार्ग [47] से भिन्न कुछ अलौकिक असमान्य हो जाता है। सामान्य साह्चर्य तो वाती [48] हो जाता है और काव्य वार्ता से भिन्न निरन्तर [49] रसोद्गार गर्भ- सन्दर्भ-निर्भर होता है। यह तो अवयवों से प्रतीयमान लावण्य की तरह शब्द अर्थ के साह्चर्य के द्वारा व्यंजित होता है। [50]

शब्द और अर्थ के साह्चर्य में **डॉ. भगवत् स्वरूप मिश्र** ने सापेक्षिकता, सन्तुलन एवं परस्पर स्पर्धिता के तत्वों की भी अवस्थिति बताई है :-'अपने अनुरूप अर्थ की व्यंजना की आकांक्षा शब्द में तथा उपयुक्त माध्यम चुन लेने की आतुरता अर्थ में सहज है। इस अनुरूपता एवं सन्तुलन, स्पर्द्धिता ही शब्द और अर्थ एवं उसके साहित्य का सौन्दर्य है। पर इस सन्तुलन की शब्द और अर्थ के पारस्परिक औचित्य की चरम सीमा-इसलिये सहित्य के सौन्दर्य की पराकाष्ठा भी काव्य ही है। काव्य में शब्द अर्थ की परस्पर स्पर्द्धिता के सन्तुलन बिन्दु ही शब्द अर्थ की साहित्य भावन के मूर्त होने के स्थल हैं। प्रत्येक उक्ति में सन्तुलन का आभास तो रहता है , पर सामान्य उक्ति में विद्यमान रहने वाला साहित्य या सन्तुलन का अंकुर तज्जनित सौन्दर्य काव्य में विकसित होकर चरम पराकाष्ठा पर पहुच जाते हैं। काव्य की उक्ति में ही वस्तुत: साहित्य भावना पूर्णत: मूर्तिमान हो उठती है। अन्यत्र तो उसके स्वरूप धारण करने की आकांक्षा अथवा विकलता के बीज ही दृष्टिगत होते हैं।'[51] अत: काव्य सुख का स्त्रोत है। इसमें व्याप्त लय, ताल, छन्द, शब्द आदि सीमाओं में न समाने वाला अन्तर्नाद रुधिर मन के अन्त:प्रान्तों में भरने लगता है। काव्य की मस्ती इसी से मिलती है जो कभी- कभी घण्टों तक आँखों में 'सुरूर' बन कर झलकती रहती है। छन्द में लहराती इसकी ध्वनि धारायें संगीत और लय- गति, संगीत के स्वर जालों में लिपटी अर्थ-ज्योति, संक्षेप में इन पंक्तियों के पीछे झिलमिलाता रूप अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा ओज को लेकर पाठक के अन्तर तक पहुँचता है, क्षणिक ही सही वह रूप उसकी आँखों में उतर जाता है, प्राणों में स्पन्दनों को जगाता है, बुद्धि को अभिनव प्रकाश से पूर देता है और मन को सरसा देता है। रूप की यह झलक ही काव्य है।

काव्य में रेखा का चंचल लास और रंगों का उदीप्त विलास भी रहते हैं। रेखा रूप की सृष्टि के लिये बड़ा समर्थ साधन है। रेखा की व्यंजना शक्ति का कोई ओर - छोर नहीं है। जब रूप की लहर उठती है, काव्य की पँक्तियाँ कभी भुजंग प्रयात करती है, साँप सी बल खाती चलती हैं, अथवा मृग सी छंलागें भरती हैं, अथवा शाईल- सी क्रीड़ा करती हैं, कभी वियोग विधुर होकर मन्द हो लड़खड़ाती हैं, अथवा वेदना से व्याकुल हो सम-विषम गति से वियोगिनी सी चलती हैं। काव्य

की अनन्त पद गतियों में रेखा का विन्यास रहता है। जहाँ रूप है, वहाँ रेखा है। जहाँ गति है, वहाँ रेखा है। अतएव काव्य के रूप और लय की कल्पना रेखा की ऊर्जा पर ही आधारित रहती है। रेखाओं में बलखाता, लहराता छन्द उसकी गति विस्तार और विन्यास, जैसे सन्तुलन भार, साम्य, संवाद आदि केवल बुद्धि से नहीं जाने जाते, अपितु हमारा समूचा जीवन्त शरीर संस्थान उन्हें ग्रहण करता है। इस प्रकार रंगहीन काव्य की कल्पना सम्भव नहीं। सच तो यह है कि उत्कृष्ट काव्य हमारी आँखों के लिये रंगों का प्रसाद प्रस्तुत करता है, त्वचा के लिये अनन्त स्पर्श, सूँघने के लिये अनेक गंध, चखने के लिये असंख्य रस, और कानों के लिये अनगिनत ध्वनियाँ। चित्र अपनी सम्पूर्ण रंगीनी को लेकर काव्य में रंग और रस भर देता है। [52]

इस प्रकार काव्य की मिठास को चखने वालों के हृदय में यह अपूर्व आह्लाद होता है। वह स्वाद कैसा है व्यक्त नहीं किया जा सकता, किन्तु जो भावुक व्यक्ति है वह काव्य की गंगा में अवगाहन करते वक्त अपने हृदय तथा अपने आपको बाहरी चीजों से अनजान कर उस अथाह आनन्द सागर में स्वयं को छोड़ देते हैं। यही उनका एक मात्र लक्ष्य रहता है। चाहे वे वीर रस से युक्त काव्य का स्वाद लें या शृंगार का, कारुण्य का, लक्ष्य केवल एक ही है कि उसके आनन्द सिंधु में गोते लगाना। क्योंकि रोमांच भयायक वस्तु के देखने से भी होता है , और अपने प्रिय दर्शन में भी, उसी तरह प्रभु की महिमा गान करते समय सच्चे भक्त के हृदय में ईश्वर के ध्यान मात्र से ही रोमांच हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि काव्य का स्वाद चखने के लिये सहृदयता की आवश्यकता नहीं पड़ती। काव्य का स्वाद लेते वक्त सिर्फ स्वप्रकाश आनन्द ही साथ रहता है। और जब हृदय काव्य का पूरा स्वाद ले लेता है तो उसके हृदय में रस और उसके भाव, अनुभाव इत्यादि भिन्नतम प्रतीयमान होते हैं, जैसे बाल्मीकि के द्वारा रचित रामायण के काव्य पर मुग्ध होकर किसी कवि ने कहा है-

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरूह्य कवितां शाखां वन्दे बाल्मीकि कोकिलम् [53]

परन्तु जब काव्य की उपयोगिता का अवसर आता है, तो तत्काल लोग कह उठते हैं कि-

रामवदाचरणीयं न तु रावणवत्। [54]

अत: उसका आनन्द सत्यमय है। लक्षण उसका स्वप्रकाशानन्द ही है।

काव्य आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है जिसका सम्बन्ध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान सह नहीं है। वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञान धारा है। विश्लेषणात्मक तर्कों से और विकल्प

के आरोप से मिलन न होने के कारण आत्मा की मनन-क्रिया जो वाङ्मय रूप में अभिव्यक्त होती है,वह नि:सन्देह प्राणमयी और सत्य के उभय लक्षण प्रेय और श्रेय दोनों से परिपूर्ण होती है।

इसी कारण हमारे साहित्य का आरम्भ काव्यमय है। वह एक सृष्टा कवि का सुन्दर दर्शन है। संकल्पात्मक मूल अनुभूति कहने से मेरा तात्पर्य है, कि उसे भी समझ लेना होगा। आत्मा की मनन शक्ति की वह असाधारण अवस्था , जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है , काव्य में संकल्पात्मक मूल अनुभूति कही जा सकती है। कोई भी यह प्रश्न कर सकता है कि संकल्पात्मक मन की सब अनुभूतियाँ श्रेय और प्रेय दोनों ही से पूर्ण होती हैं ; इसमें क्या प्रमाण है ? किन्तु इसीलिये साथ ही साथ असाधारण अवस्था का भी उल्लेख किया गया है। असाधारण अवस्था युगों की समष्टि अनुभूतियों में अन्तर्निहित रहती है ; क्योंकि सत्य अथवा श्रेय ज्ञान कोई व्यक्तिगत सत्ता नहीं, वह एक शाश्वत चेतना है, या चिन्मयी ज्ञान धारा, जो व्यक्तिगत स्थानीय केन्द्रों के नष्ट हो जाने पर भी निर्विशेष रूप से विद्यमान रहती है। प्रकाश की किरणों के समान भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के दर्पण में प्रतिफलित होकर वह आलोक को सुन्दर और ऊर्जस्वित बनाती है। [55]

काव्य कोई संकीर्ण व संकुचित वस्तु नहीं है। वह विराट है, अनन्त है , सनातन है। जो है, जिसकी सत्ता है, वह सत्य है,मनुष्य अपने चर्म चक्षुओं से जाज्वल्यमान सत्य को पूरा नहीं देख सकता। किन्तु काव्य ने सत्य की विभा को जोड़ा है। आत्मा का स्पष्ट रूप होने के कारण सत्य प्रिय होता है, हमें आनन्द देता है। आनन्द अक्षय का स्त्रोत होता है। काव्यामृत की कल्पना सम्पूर्ण रूप से भारतीय है, वह एक लयात्मक उद्भावना है। [56]

आइये **अज्ञेय** की बात सुनें :-'कवि काव्य आत्मा का सत्य है। ....यह भी कहना ठीक होगा कि वह व्यक्तिबद्ध नहीं है, व्यापक है, और जितना व्यापक है, उतना ही काव्योत्कर्षकारी है।' [57]

मलयालम कवयित्री **वालमणि अम्मा** आनन्द और अमृत के लिये यहाँ तक कि पर निवृति के लिये दूर नहीं जातीं, क्योंकि सत्य तो जैसा दूर है वैसा निकट है: तद् दूरे, तदु अन्तिके : उनका कवि मानस कहता है:-

मुझे शक्ति दो कि
मैं अपने आनन्द का अंश
औरों को भी बाँट सकूँ। [58]

अतः काव्य वह है जिसमें बाँसुरी की लय हो तथा धूमिल आकाश और मुक्त क्षितिज के नीचे रेगिस्तान में चलते ऊँट की चाल।

काव्य में चैतन्य की धारा अविच्छिन्न बहती है। इस धारा में तरगें होती हैं जो उठती, गिरती आगे बढ़ती हैं, लय गति से। ये तरंगें ऊर्जस्वित् होती हैं, अर्थात् ऊर्जा तरंगे, जिनमें रूप का प्रत्यक्ष होता है। रूप पूर्ण होता है, एक और अनेक का अद्भुत संगम, समंजन, सन्तुलन और विलास। और इस रूप में संगीत की मीठी ध्वनियाँ, नृत्य की रुनझुन, वास्तु का विचित्र विन्यास, चित्र की रंगीनी और मूर्ति की मांसलता। इन सबके ऊपर अनन्त अर्थ ज्योतियों की झिलमिलाती इन्द्रधनुषी छाया। काव्य का यह प्रखर प्रभाव भाषा और शब्दों का अपना प्रवाह नहीं हो सकता, यह काव्य तत्व एक समर्पित मन में उठी चेतना की तरंग है जो मानो अपने अन्तर की प्रचण्ड ऊर्जा के कारण ठहर गई है।

सृष्टि कवि का रचना कौशल इसी में है कि वह अपनी प्रतिभा के बल से शब्दों की रिक्तता में अपनी अनुभूति की ज्योति और ज्वाला भर दे, उनको गति प्रदान करे कि वह जीवन की लय में तरंगायमान हो उठें, नृत्य सा करने लगें, मधु निष्पन्द से भर कर संगीत सम बहने लगे, उपमा, रूपकों की अलंकार विधि से सौकुमार्य और सौन्दर्य की मांसल मूर्तियाँ आँखों के सम्मुख उतार दे। शब्द की शून्यता और रिक्तता में सुन्दर का साक्षात्कार यही काव्य सृजन का अभिप्रेत है।[59]

अतः कहा जा सकता है कि काव्य कविता तथा कृति का अपना अस्तित्व होता है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता होती है कि वह हमारे सारे अस्तित्व को झकझोरता हुआ जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित करता है : काव्य से शरीर में रोमांच, गुद्गुदाहट तथा अश्रुपात तक हो सकते हैं , और साथ ही अद्भुत शान्ति का अनुभव भी। काव्य क्षण-क्षण में अभूतपूर्व तथा मन के नूतन आलोक से चमत्कृत होता हुआ उसका आस्वादन करता है। बुद्धि के लिये ज्योति के अद्भुत स्त्रोत फूट उठते हैं, जीवन एवं जगत की तथा स्वयं अपनी भी नूतन मीमांसा मांसल होकर सामने आती है, क्योंकि तर्क- जालों में जकड़े हुये विचार काव्य में नूतन स्फूर्ति का संचार करते हैं, तथा जीवन को एक निष्कर्ष की ओर ले जाते हैं इसके द्वारा युग चेतना जागृत होती है। दर्शन स्वयं प्रस्तुत होता है। अहंकार सीमित 'स्व' से हट कर विराट् 'स्व' में प्रवेश करता है,तब वह गद्गद् होता है, आत्मलाभ करता है, तथा नूतन प्रेरणाओं से ऊर्जित होता है।

काव्य के द्वारा हृदय में रुधिर 'शान्ति' स्वयं उतर आती है। चित्त प्रसन्न। कविता मात्र आत्मा की मातृभाषा नहीं रहती। उसमें आत्मा का प्रत्यक्ष होता है, चेतना के गम्भीर गर्त में समाया हुआ

अचेतन प्रतीकों में जन्म लेता है। कल्पना सीमाहीन अन्तराल में सृजन की ऊर्जा पर चढ़कर अवगाहन का सुख भोगती हुयी युक्ति और भुक्ति दोनों का एक साथ आस्वादन करती है। भूली हुयी अनेक स्मृतियाँ जग उठती हैं। आशा के नूतन क्षितिज खुल उठते हैं। जीवन के चेतन, अचेतन अन्तरालों में स्पन्दन होता हुआ सत्य स्वयं उसे अनुगुंजित करता है। संक्षेप में काव्य जीवन की एक मंगलमयी विराट घटना है।

इस प्रकार जगत् का सौन्दर्य कला में ढल कर परिवर्तित हो जाता है। आचार्यो ने रसास्वादन के समय प्रमाता की चेतना के गुणात्मक परिवर्तन, उसके व्यक्तित्व की सीमाओं के विगतन, स्व के विस्तार, सत्वोद्रेक तन्मयता और मुक्ति के द्वारा किया है। साधारणतया जगत् का बोध क्षोभकारी, दंश देने वाला, त्रासक और दिक्काल की सीमाओं से परिमित होता है। प्रकृति में बिखरावट, अव्यवस्था करने के लिये अप्रस्तुत विधान का सहारा लेता है।[60] फलत: बिम्ब प्रतीक, रूपक शब्द चयन रीति शैली रचना की पूरी तकनीक गतिशील हो जाती है। इनमें से प्रत्येक का अपना विशिष्ट रूप है। प्रत्येक की निर्मिति अपने आप में एक पूर्ण और जटिल प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया से कवि को गुजरना पड़ता है। जैसे वातावरण परिवेश तथा उससे सम्बद्ध दैनन्दिन प्रचलित अर्थो से गुथें रहते हैं। कवि इन प्रतीकों को उस वातावरण से उठाकर 'रचना' के अपने वातावरण परिवेश में गूंथता है- वहाँ पर उन्हें नवीन अर्थो, अर्थ की परतों से संयुक्त करता है। पहले वातावरण के अर्थो से उन्हें मुक्त कर नवीन भाव- भंगिमा और अर्थ छाया से गर्भित दीप्त करता है।[61] चुके हुये प्रतीकों, अप्रस्तुत विधानों को नई प्राणवत्ता से युक्त करने में ही कवि कर्म की सफलता है। यहाँ पर आकर रचना पूर्ण अन्विति के साथ साकार हो जाती है। यह अन्विति शब्द-चयन लेखन, अन्वयन क्षमता और विशिष्ट तकनीकी कुशलता के कारण हो पाती है। निष्कर्षत: संवेग और संवेदनायें कच्चे माल की तरह होती हैं, इनमें से मर्म को छूने वाली संवेदनाओं को कवि की कल्पना चुन लेती है-फिर विभिन्न उपादात्मक विभावों से इनका रूपायन करती है। तारतम्यता का अभाव रहता है, किन्तु कला में ढलकर यही सुन्दर, संयत, व्यवस्थित, तारतम्यपूर्ण होकर एक लयकारी लयात्मक छवि से संयुक्त हो जाता है। यही कारण है कि जगत् का असुन्दर और भदेश भी हमें कला के संस्पर्श से मोहक और सुन्दर लगने लगता है। तुच्छ वस्तुयें भी हमारा ध्यान खींचने लगती हैं। कलाकार की चेतना ऐसी पारस होती है जिसे छू कर सब कुछ सुन्दर हो उठता है। यही सौन्दर्य का काव्य और कला में प्रतिफलन है।[62]

कला की परिभाषा :- ये हम सभी जानते हैं कि कला का मूल स्त्रोत प्रकृति नहीं पुरुष है;

इसलिये कला सृजन की प्रक्रिया अनुकरण नहीं, अभिव्यक्ति है। अत: अभिव्यक्ति ही कला है। किन्तु कला क्या अभिव्यक्त करती है ? हमारे अनुसार कला मानवता की अभिव्यक्ति है। किन्तु मानवता का अन्तराल विशाल है। वह एक अनन्त आध्यात्म लोक है, जहाँ अनेक वेदनायें स्पन्दन करती है ; बुद्धि का प्रखर प्रकाश अपनी किरणों का विस्तार करता है, भावना के तरल स्त्रोत बहते हैं। इस सम्पूर्ण लोक में कला की अभिव्यक्ति कैसे होती है, इस प्रश्न को लेकर विभिन्न कला मर्मज्ञों ने अपने-अपने उत्तर दिये है:-

पाश्चात्य मत :- काण्ट नामक जर्मन दार्शनिक के अनुसार 'हमारा सम्बन्ध दो लोकों से हैं।' एक है प्रकृति का लोक या बाह्य जगत् जिसमें शब्द, स्वर, गति, रंग, रूप और नाना पदार्थ हैं। इनमें नियमों की कठोरता है। कोई भी प्राकृतिक पदार्थ अपने नियमों का उल्लंघन नही कर सकता। वहाँ परतन्त्रता का पूर्ण प्रभाव है। यह लोक जड़ और स्पन्दनीय है। दूसरा लोक आत्मा का है, जहाँ जीवन और भावना है, जहाँ विचार और विवेक हैं। यह लोक चेतन है, और इसमें मनुष्य स्वतंत्रता का अनुभव करता है। कला इन दोनों -जड़ और चेतन प्राकृतिक और आध्यात्मिक- लोकों का मिलन है। कला के द्वारा चेतन लोक के अनुभव वहाँ का विवेक और स्वतन्त्रता, संगीत, नृत्य, चित्र, मूर्ति और साहित्य का रूप धारण कर जड़ता के लोक में प्रवेश करते हैं। वैसे तो चेतन आत्मा प्रकृति के काल, दिशा और परिस्थितियों के बन्धन से बँधे हुये लोक में पद-पद पर परतन्त्रता का अनुभव करती है , किन्तु कला सृजन और आस्वादन के क्षण में जड़ प्रकृति में-स्वर, गति, रंग, रेखा और प्रस्तरों में-आत्मा के प्रकाश का स्फुरण हो उठता है, जीवन की लहरें तरंगित हो जाती हैं, भावों का आलोक जगमगा उठता है। कला सृजन में आत्मा अपनी स्वाभाविक स्वतन्त्रता का मूर्त रूप में अनुभव करती हैं। कला का उद्देश्य, आदर्श और साफल्य प्रकृति रूप में आध्यात्मिक सत्ता की अनुभूति है। [63]

अरस्तू ने कला को प्रकृति का अनुकरण माना है। उनके अनुसार- 'स्वभाव के माध्यम से मनुष्य विभिन्न वस्तुओं का अनुकरण करता है। कुछ कलाकार रंगों और मूर्तियों के द्वारा अनुकरण करते हैं तथा अन्य शब्दों के द्वारा।'

यदि कला को प्रकृति का कोरा अनुकरण मान लिया जाये तो इसमें नई-नई प्रेरणायें और आनन्द भरने वाला गुण नहीं रह जाता। मनुष्य कल्पनाशील प्राणी होता है। वह प्रकृति के सौन्दर्य से ही सिर्फ तृप्त नहीं हो पाता, वह उसमें कुछ अभाव भी अनुभव करता है। और इस अभाव की पूर्ति कला में होती है। अत: कला को प्रकृति का अनुकरण मात्र नहीं माना जा सकता, इसे हम

प्रकृति की पुनर्कृति कह सकते हैं। अरस्तू जो सर्वज्ञ थे, इस तथ्य को अच्छी तरह समझते थे। इसी से उनकी घोषणा है कि 'आशक्य संभाव्य से घटित हो सकने वाला असंभाव्य कहीं अधिक उत्कृष्ट और संग्रहणीय है।'[64]

इससे यह ध्वनित होता है कि अरस्तू प्रकृति की सभी घटनाओं एवं व्यापारों के अविकल अनुकरण के पक्ष में नहीं थे। अरस्तू की अपूर्ण परिभाषा को **हीगल** ने पूर्ण किया है। उनके अनुसार सृष्टि के उच्च से उच्चत्तर चेतना सम्पन्न प्राणियों में सौन्दर्य बोध का गुण भी उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। ' मानव अपने चारों ओर सृष्टि में जो सौन्दर्य पाता है, वह उससे भी उत्कृष्ट सौन्दर्य कल्पना के सहारे निर्मित करता है। और इस प्रकार कला प्रकृति से श्रेष्ठ है।'[65]

टाल्सटाय के अनुसार- 'कला एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा एक मनुष्य अपनी अनुभूतियों को साभिप्राय रूप से दूसरी के प्रति प्रेषित करता है।'[66]

कला का यह आवश्यक गुण है कि उसके द्वारा कलाकार अपनी अनुभूति में दूसरे को तन्मय कर लेता है, उसके माध्यम से दूसरों के मन में भी वैसा ही भाव जागृत कर देता है। यदि कला में यह गुण है, तभी वह सार्थक है, अन्यथा नहीं। इस मत को प्रेषणीयता वाद कहते हैं।

क्रोचे ने कला को 'अभिव्यंजना' माना है। यह अभिव्यंजना प्रातिभ ज्ञान का व्यापार है। क्रोचे के शब्दों में -'सच्चा प्रातिभ ज्ञान अभिव्यंजना ही है। सौन्दर्य इसी अभिव्यंजना में है। प्रातिभ ज्ञान बाह्य विषयों को- शब्द, रूप गति, आदि अनुभूतियों को- एक आकार- में, एक साँचे में ढालता है। इस प्रकार प्रातिभ ज्ञान ही अभिव्यंजना में मूर्त हो जाता है। जो अपने को अभिव्यंजना में मूर्त न करे वह प्रातिभ ज्ञान नहीं। इसी अभिव्यंजना में प्रातिभ ज्ञान का एक सांचे में, व्यक्त होने में सौन्दर्य है ; सौन्दर्य वस्तु में नहीं होता। यह अभिव्यंजना मूलत: भीतर होती हैं। फिर स्थूल माध्यमों या आधारों द्वारा इसका बाह्य रूपान्तर आदि तो आनुसांगिक है क्रिया है। यदि आन्तरिक अभिव्यंजना पूर्ण न होगी तो बाहरी अभिव्यंजना भी पूर्ण न होगी।'[67]

इस मत की सबसे बड़ी सीमा यह है कि अंततोगत्वा यह अभिव्यंग्य को प्रधान न मान कर अभिव्यंजना प्रकाशन भंगिमा-को ही महत्ता देता है। **कार्ल मार्क्स** की कला सम्बन्धी धारणा यथार्थवादी है। उसकी मूल धारणा यह है कि मनुष्य का जीवन उसकी अपनी चेतना पर अवलम्बित नहीं, बल्कि उसकी चेतना ही उसके सामाजिक जीवन पर आधारित रहती है। अत: कलाकार की चेतना सामाजिक जीवन पर आधारित रहती है। अत: कलाकार की चेतना सामाजिक स्थिति की ही देन है। सामाजिक जीवन की भित्ति समाज की आर्थिक व्यवस्था है, इसलिये कला मुख्यत:

समाज की आर्थिक स्थिति से ही प्रेरणा पाती है। मार्क्स कलाकार की निजी भावना और कल्पना शक्ति को अनुसांगिक मानते हैं। मार्क्स ने भाव देखनेकी स्वस्थ दृष्टि दी। किन्तु यह मत भी अधूरा ही है,क्योंकि यह कला में अभिव्यक्त की प्रक्रिया या कला पक्ष की मीमांसा में प्रवृत नहीं होता।[68]

फ्रायड के अनुसार,कला मानव के अवचेतन मन की प्रवृत्तियों का उन्नत रूप है। इसके द्वारा कलाकार के मन में दबी हुयी वासनाओं का उन्नयन होता है। हमारे नित्य जीवन में बहुत-सी आकांक्षायें- विशेषत: यौन आकांक्षायें समाज के अनेक विधि निषेधों के कारण तृप्त नहीं हो पातीं। ये अतृप्त वासनायें, अवचेतन मन में संग्रहीत हो जाती हैं। साधारण मनुष्य अवचेतन मन की छिपी हुयी प्रवृत्तियों के दमित रहने के कारण अप्रकृतिस्थ बन जाता है ; किन्तु कलाकार में अपनी वासनाओं के उन्नयन की असीम क्षमता रहती है। अपनी इस क्षमता के द्वारा वह अपनी वासनाओं को छद्म रूप में-कला के आवरण में-प्रकट करता है। जिस गर्हित समझी जाने वाली वासना को वह नित्य जीवन में चरितार्थ नहीं कर सकता, उसे वह कला के द्वारा चरितार्थ कर यश का भागी बनता है। अत: कला अवचेतन मन की अतृप्त वासनाओं का समुन्नत रूप है। यह दृष्टिकोण कुछ कलाकृतियों की मूल प्रेरणाओं की व्याख्या कर लेता है ; किन्तु यह संसार की सभी कलाकृतियों की-जिनमें उदात्त भावनायें और प्रेरणायें निहित हैं-व्याख्या करने में असमर्थ है।[69] **शोपेनहावर** नामक दार्शनिक ने कला के आस्वादन में उसकी वेदना , जीवन का स्पन्दन, गीत, तन्मयता और आनन्द की विह्वलता पर विशेष ध्यान दिया। शोपेनहावर जीवन में एक ही वेदना को स्वीकार करता है। वह वेदना है जीवन की इच्छा, किन्तु इस इच्छा का विस्तार निरन्तर होता रहता है। जीवन और मृत्यु के सनातन संघर्ष में जीवन परास्त होता है, मृत्यु की विजय होती है इससे एक अपूर्व पीड़ा का उदय होता है। यह सांसारिक कष्टों की पीड़ा नहीं है, यह आन्तरिक पीड़ा है जो सनातन है और जिसका अनुभव दार्शनिक स्तर पर मनुष्य को होता है। इस पीड़ा को कैसे भुलाये मनुष्य ?(विज्ञान द्वारा) सांसारिक भोगों द्वारा यह सम्भव नहीं।

शोपेनहावर के अनुसार इस महापीड़ा से त्राण मिलता है या तो उपनिषद् के महालय और मोक्ष में उपदेश के अनुसार, या तो बुद्ध के निर्वाण द्वारा जिसमें सभी इच्छाओं का चरम अवसान हो जाता है। जब जीवन की इच्छा ही न रहेगी तो उस निर्वाण और 'मोक्ष' की अवस्था में वेदना का चरमान्त हो जायेगा। शोपेन हावर उपनिषद् की पुस्तकों को सदा अपने पास रखता था और कहा करता था कि इससे जीवन में शान्ति मिलती है, इन्हीं से मृत्यु में भी शान्ति मिलेगी। इसके

अतिरिक्त जीवन की महावेदना को विस्मृत करने का साधन कला है। कला हमें इस लोक से दूर ले जाकर कल्पना और भावना के आलोक-लोक में ले जाती है, जहाँ हमें यह वेदना भूल जाती है। संगीत में यह क्षमता सर्वाधिक है, इसलिये संगीत सब कलाओं का आदर्श है। प्रत्येक कला, शोपेन हावर के अनुसार, अपने चरम विकास की अवस्था में संगीत का रूप धारण करती है। [70]

19 वीं सदी के सातवें दशक में **गोतिये** के उक्त सौन्दर्यवादी सिद्धान्त ने पारनेशियन सिद्धान्त का रूप ग्रहण किया। इसके अनुसार- 'कला स्वयं अपना ध्येय है। [71]

सौन्दर्यवादी विचारधारा के विकास का तृतीय चरण फ्रॉंसीसी प्रतीकवाद की स्थापना है। पारनेशियन आन्दोलन के प्रति यह एक प्रतिक्रिया थी। इसने प्रकृतिवाद को भी ललकारा। [72] पारनेशियन कवि वस्तु का यथातथ्य चित्रण करने के पक्ष में था। प्रतीकवाद इसके विपरीत काव्य में रहस्य-प्रवृति का समर्थक रहा था। वस्तु का स्थान संकेत ले लेता है।

बाबरा के अनुसार- 'प्रतीकवाद सौन्दर्यवाद का रहस्यात्मक संस्करण था।'[73]

इसी श्रेणी में बोदलेयर भलार्मे, वर्लेन, बेलरी आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है। बोदलेयर पारनेशियन सिद्धान्त और प्रतीकवाद के बीच की एक कड़ी था। वस्तुत: **बोदलेयर** सौन्दर्यवादी था। उनके अनुसार- 'काव्य का कोई बाह्य ध्येय नहीं है। यदि उसका ध्येय कुछ अन्य मान लिया जाये तो काव्य क्षयोन्मुख हो जाता है। इसका परिणाम बुरा होता है।'[74]

बोदलेयर का जीवन स्वयं चरित्रहीन था। गोर्मी ने उसकी रचना के विषय में एक बार कहा था कि उसकी कवितायें विषमयी हैं। अपने जीवनकाल में उनके कारण वह पागल और दीवाना कहलाया। मृत्यु के पश्चात् कवि कहलाया और फिर विस्मृत कवि कहलाया और फिर विस्मृत कर दिया गया। बोदलेयर और भलार्मे पर एडगर पो का विशेष प्रभाव पड़ा था। बोलदेयर प्रतीकवाद का विकास भलार्मे और वर्लेन आदि ने किया।

भलार्मे ने प्रतीकवाद का शास्त्र भी रचा। इनके अनुसार 'काव्य का उद्देश्य सूचना देना नहीं अपितु संकेत करना है। वस्तुओं का परिगणन न करके, वह उनका वातावरण प्रस्तुत करता है।'

लूकस के अनुसार- 'मैं कला में उत्तरदायित्व को स्वीकार नहीं करता, जिससे मैं आत्मपीड़न, परपीड़न आदि न्यूरोसिस के सब लक्षणों का प्रदर्शन कर सकूँ। स्नायु व्यक्तिक्रम के रोगी की भाँति मैं वयस्क जीवन के उत्तरदायित्व को अत्यन्त कठोर समझता हूँ तथा एक दूसरी बाल्यावस्था में पलायन पसन्द करता हूँ।'[75]

'कला, कला के लिये' की पराकाष्ठा हमें **जे.के. हिजमैन** के प्रसिद्ध उपन्यास 'ए रेवरस' में मिलती है। इसमें समस्त वातावरण और पात्रों द्वारा अभिव्यक्त विचारधारा में दुष्कर्म, दुष्टतायें, और अनाचार भरे पड़े हैं। इस प्रकार जब इस फ्रांसीसी सौन्दर्यवाद ने इंग्लैण्ड की यात्रा की तो हासोन्मुखी साहित्य का प्रभाव वहाँ के लेखकों और कवियों पर भी पड़ा, पर वहाँ फ्रांस के समान अतिवाद नहीं मिलता। इंग्लैण्ड में साहित्य इतना क्रान्तिप्रिय नहीं हुआ। इग्लैण्ड में 'कला, कला के लिये' सिद्धान्त को लाने का श्रेय **हिसलर** को है। ह्विसलर से पूर्व **रस्किन** की विचार धारा वहाँ चल रही थी। जिसका अभिप्राय था कला का उद्देश्य स्वयं संतोष न हो कर लोक सेवा है। ह्विसलर ने कला के द्वारा उपदेश देने की प्रवृत्ति का घोर विरोध किया। **आस्कर वाइल्ड** ने इस प्रतिक्रिया में योगदान दिया। इनके अनुसार - 'कला-स्वयं अपना ध्येय है।' वाइल्ड ने एक बार कहा था- 'नैतिक दृष्टि से किसी भी पुस्तक को भला या बुरी नहीं कहा जा सकता। पुस्तकें या तो भली-भांति लिखी जाती हैं या बुरी तरह ,यही कहा जा सकता है।'[76]

हालब्रक के अनुसार इस सौन्दर्यवादी-हासोन्मुखी कला की चार मूल विशेषताये हैं -

अ- अप्राकृतिक जीवन के प्रति आकर्षण

आ- कृत्रिमता

इ- अतिवैयक्तिक प्रवृति

ई- कौतूहल [77]

आस्कर वाइल्ड का जीवन भी अत्यन्त अप्राकृतिक था। समाज में भी वह घृणा का पात्र बन गया था। कृत्रिमता से भी उसे बड़ा मोह था। वाइल्ड के 'ए पिक्चर आव डोरियन ग्रे' में पतनोन्मुख दर्शन तथा समस्त आचार-आदर्शों का पूर्ण तिरस्कार मिलता है।

इस प्रवाह के विरुद्ध **वाल्टर पेटर** ने 'कला, कला के लिये' के सिद्धान्त को इंग्लैण्ड में शास्त्रीय पृष्ठभूमि प्रदान की। कवि, उपदेशक,नियामक, आदर्श कर्म के लिये प्रेरक आदि कुछ नहीं। वह हमारे यान्त्रिक जीवन को क्षण-भर के लिये लीक से हटाकर जीवन के महान तथ्यों से साक्षात्कार करता है। इनको परिवर्तन की कोई क्रिया नियन्त्रित नहीं कर सकती। [78]

पेटर ने 'मेरियस द एपेक्यूरियन' की कहानी में कलाकार के लिये वांछनीय जीवन का चित्रण करते हुये स्वीकार किया है कि कलाकार के मस्तिष्क को पूर्णत: परम्परामुक्त या रूढ़ विचारों से रहित होना चाहिये। सौन्दर्य के छोटे-छोटे कम्पन स्पन्दन के प्रति उसे संवेदनशील होना चाहिये। यही दृष्टिकोण **एवीक्यूरिज्य** के दर्शन में भी है। इसके अनुसार जीवन का एक मात्र ध्येय आन्दोपार्जन

हैं। **मेरियस** तीव्र से तीव्र रोमांचों की खोज में रहता है। पर **पेटर** का भोगवाद नितान्त अनियन्त्रित नहीं था। उस पर नियन्त्रण भी था। नियन्त्रण परिष्कृत स्वभाव द्वारा ही सम्भव माना गया है। -कोई बाह्य नियन्त्रण अपेक्षित नहीं है।

पेटर की विचार धारा है कि -' कलाकार के आध्यात्मिक जीवन में ही कला सिद्धान्तों की स्थिति है, इनका कोई अन्यत्र स्त्रोत नहीं है। यदि कला विषयक सिद्धान्तों की खोज करनी है तो किसी सच्चे कलाकार के आध्यात्मिक जीवन का उद्घाटन करना होगा। [79]

भोगवाद पर परिष्कृत स्वभाव का यह नियन्त्रण एक नवीन आयाम का सूचक बना।

इस प्रकार वाइल्ड और पेटर ने फ्राँसीसी सौन्दर्यवाद को परिवर्तित रूप में अपनाया। फ्राँसीसी सौन्दर्यवाद का रहस्यवादी पक्ष और उसकी विस्तृत व्याख्या इनको आकर्षित नहीं कर सकी। पेटर और वाइल्ड 'स्व' से ही इतने सम्बद्ध रहे कि किसी पारलौकिक सत्ता में अपना सम्बन्ध स्थापित न कर सके। आगे चल कर विलियम, वट्लर, यीट्स ने सौन्दर्यवाद के साथ रहस्यात्मकता संलग्न की। यीट्स व टैगोर दोनों ने ही सौन्दर्यवाद के साथ रहस्यवादिता का समावेश किया।

'कला, कला के लिये' का समर्थन स्पिगर्न, क्लाइव, बेल और ब्रेडले ने भी किया। **स्पिंगर्न** ने भी नैतिक -अनैतिक के प्रश्न को कला क्षेत्र में अनुचित कहा। इनका दृष्टिकोण पेटर और वाइल्ड के अनुरूप ही है। वे भी रोमांचों को महत्व देकर आचारणगत आदर्शों या मूल्यों का पूर्ण बहिष्कार करने के पक्ष में हैं। समीक्षक को भी कृति के विषय में अपने रोमांचों को ही व्यक्त करना चाहिये। समीक्षक को कृति से जो आनन्द प्राप्त होता है, वही कृति का यथार्थ मूल्यांकन है। [80]

स्पिगर्न को ज्ञान था कि इस कथन पर आरोप किया जा सकता है कि यह तो कृति का मूल्यांकन नही, आलोचक की अपनी अभिव्यक्ति है। उसने कहा कि कोई भी समीक्षा ऐसी नहीं हो सकती है जो कृति से नहीं हटे। कोई भी समीक्षा केवल कलाकृति तक सीमित नहीं रह सकती। स्पिगर्न के अनुसार इतिहास, मनोविज्ञान, जीवनी आदि के मानदण्डों को छोड़ कर कला को ही ग्रहण करना श्रेष्ठ है। इस प्रकार हम एक कलाकृति के स्थान पर दूसरी कलाकृति की स्थापना करते हैं। यही समीक्षा का दायित्व है।

क्लाइव बेल ने भी किसी आचारगत या समाजगत मूल्य अथवा आदर्श को स्वीकार नहीं किया। साहित्य और जीवन के सम्बन्ध की धारणा इनकी दृष्टि में एक भ्रम है। कला समीक्षा के लिये जीवन के आदर्श या उसकी घटनायें या आन्तरिक भावनायें आवश्यक हैं। [81]

ब्रेडले ने 'कला, कला के लिये' सिद्धान्त का सन्तुलित रूप प्रतिष्ठित किया। इन्होने इसके

स्पष्टीकरण में कहा - 'एस्थेटिक अनुभव साधन न होकर साध्य है। उसके साथ किसी भी अन्य प्रयोजन की मान्यता आवांच्छित है। साहित्य स्वयं मूल्य है : उसे किसी बाह्य मूल्य के प्रकाश की अपेक्षा नहीं। किसी भी बाह्य आरोप का मूल्य अनुचित है। जब यह कहा जाता है कि 'एस्थेटिक' अनुभव के अन्तर में निहित मूल्य, उसका काव्य गत मूल्य है, न कि बाह्य आरोपित मूल्य, तब यह आशय नहीं समझना चाहिये कि काव्य का कोई प्रयोजन नहीं होता। काव्य स्वयं साध्य है पर वह साधन भी हो सकता है। काव्य में संस्कृति का प्रसार भी होता है। धर्म की स्थापना और मनोवेगों का परिष्कार भी सम्भव है। वह कवि को प्रशंसा प्राप्त करा सकता है, उसे चरित्रवान भी बना सकता है। स्वयं साध्य होते हुये भी यदि ये कार्य भी सम्पादित हो जाते हैं तो कलाकार की कृति का मूल्य बढ़ता ही है। परन्तु यह सब बाह्य प्रयोजनगत मूल्य और अमूल्य आन्तरिक मूल्यों को नियन्त्रित नहीं करते, और करना भी नहीं चाहिये क्योंकि काव्यगत बाह्य मूल्यों पर नहीं होना चाहिये। यदि कलाकार अपनी सृष्टि के साथ बाह्य मूल्यों से अवगत रहता है तो वह काव्यगत मूल्यों को घटा देता है। यही बात कृति समीक्षक पर भी लागू होती है। काव्य प्रकृतितः न तो इस वास्तविक जीवन का कोई अंग है और न उसकी अनुकृति ही। काव्य का अपना जगत है वह पूर्ण स्वतन्त्र और स्वयं में पूर्ण है।'[82]

जर्मनी के मनोविज्ञान की मनोविश्लेषण नामक शाखा का विचार है कि 'कला काम अथवा जीवन शक्ति को मूर्त करने का प्रयत्न करती है। काम भी एक अत्यन्त व्यापक, अचेतन किन्तु प्रबल तत्व है जो हमारी अन्तरात्मा के रूप में हमीं में विद्यमान है। वह वास्तविकता के संसार में बन्धनों को त्याग कर निरन्तर तृप्ति चाहता है। भोजन पान, रूप स्पर्श आदि अनेकों प्रकार से यह कामना वस्तुओं को सौन्दर्य और आकर्षण प्रदान करती है। कला भी इसी तृप्ति के अनेक साधनों में से एक साधन है। कला के द्वारा रसिक सौन्दर्य के कल्पना लोक में कुछ वास्तविकता के बन्धनों से मुक्त हो कर मानसिक भोग प्राप्त करता है। अतः मनोविश्लेषण विज्ञान के अनुसार कला कामतत्व की अभिव्यक्ति है।[83]

इस प्रकार काम-तत्व सरस होकर आसक्ति उत्पन्न करता है, हम कला को 'सुन्दर' कहते हैं। जिस समय यही तत्व सरस न होकर विरस हो उठता है, तब वेदना अनुभव से 'उदात्त' की अनुभूति होती है।

पौर्वात्य मत :- कालान्तर में हमारे देश भारत में भी इस सिद्धान्त का आगमन हुआ। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी इसे स्वीकार किया है। उनके अनुसार शुद्ध कला नैतिकता के सिद्धान्तों से

नियन्त्रित और परिचालित नहीं होती। उसमें अंततः शिव और सुन्दर का स्वतः तादात्मय हो जाता है। यह विचार धारा अरस्तू के 'रिटारिक' में मिलती है। 'सौन्दर्य शिव है जो कल्याणकारी होने से आनन्ददायक होता है।

रवीन्द्र का स्वर भी कुछ ऐसा ही है- 'सौन्दर्य मूर्ति ही मंगल की पूर्ण मूर्ति है और मंगलमूर्ति ही सौन्दर्य का पूर्ण स्वरूप है।'[84]

हिन्दी साहित्यकार **इलाचन्द्र जोशी** ने 'कला, कला के लिये सिद्धांत' को स्वीकारा है। उनके अनुसार- 'विश्व की इस अनन्त सृष्टि की तरह कला भी आनन्द का ही प्रकाश है। उसके भीतर नीति तत्व अथवा शिक्षा का स्थान नहीं। उसके अलौकिक माया चक्र से हमारे हृदय की तन्त्री आनन्द की झंकार से बज उठती है यही हमारे लिये परम लाभ है। उच्च अंग की कला के भीतर किसी तत्व की खोज करना सौन्दर्य देवी के मन्दिर को कलुषित करना है।'[85]

इस प्रकार इलाचन्द्र जोशी 'कला, कला के लिये' नामक सिद्धान्त के अधिक समीप हैं।

निराला जी भी इस मत को स्वीकृति देते हैं- 'सूक्तियाँ, उपदेश मैने बहुत कम लिखे हैं, प्रायः केवल चित्रण ही किया। उपदेश को मैं कवि की कमजोरी मानता हूँ।'[86]

छायावादी कवि न्यूनाधिक रूप से इस सिद्धान्त से अवश्य ही प्रभावित हुये।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस सिद्धान्त का पूर्ण खण्डन किया है-

'कुछ लोगों का यह मानना है कि काव्यानुभूति एक और ही प्रकार की अनुभूति है। उसका प्रत्यक्ष या असली अनुभूति से कोई सम्बन्ध नहीं, यह गलत है। काव्यानुभूति एक निराली ही अनुभूति है, इस मत के कारण यूरोपीय समीक्षा क्षेत्र में बहुत सा अर्थ शून्य वाग्विस्तार बहुत दिनों से चला आ रहा है। इस मत की असारता आई. ए. रिचर्ड्स ने अपने 'प्रिंसपल्स ऑफ लिट्रेरी क्रिटिसिज्म' में अच्छी तरह दिखाई है।'[87]

शुक्ल जी ने इस सिद्धांत के फ्राँसीसी रूप और उसके अंग्रेजी संस्करण दोनों का विरोध किया है। इस प्रकार इस सिद्धांत के पुष्ट तर्कों से सांगोपांग और आद्यन्त विरोध शुक्ल जी ने अपने निबन्ध- 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' में किया है।

शुक्ल जी ने लिखा है कि - 'हमारे यहाँ के सम्पूर्ण काव्य क्षेत्र की अन्तःप्रकृति की जमीन पर जाइये, उसके भीतर जीवन के अनेक पक्षों पर और जगत् के मनुष्य हृदय का गूढ़ सामंजस्य निहित मिलेगा।

साहित्य शास्त्रियों का मत लीजिये, जैसे सम्पूर्ण जीवन धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का साधन

रूप है, वैसे ही उसका एक पूरा काव्य भी।'[88]

बाबू श्याम सुन्दर दास जी ने 'कला, कला के लिये' सिद्धान्त का प्रकारान्तर में समर्थन किया है - 'तथाकथित आदर्शवादी समीक्षक कलाओं के वास्तविक सत्य को न समझकर धार्मिक विचार से उनकी तुलना करते हैं। उनके लिये धार्मिक आदेशों का शुष्क रूप ही श्रेष्ठ कला का नियन्ता तथा मानदण्ड बन जाता है। ये कला समीक्षक किसी सुन्दरतम् सुगठित मूर्ति का सहज सौन्दर्य सहन नहीं कर सकते हैं ; जो उनमें प्रस्फुटित हो रहा है। उसमें कल्पना का इतना आभाव होता है कि कलाओं की भाव व्यंजना उनके लिये कोई अर्थ नहीं रखती। वे केवल उनके बाह्य रूप को ही अपने रूढ़िबद्ध आचार विचार की कसौटी में कसते हैं।'[89]

आगे चलकर बाबू साहब लिखते हैं कि- 'प्रत्येक कलाकार अपनी रुचि और शक्ति के अनुसार सत् तथा असत् की धारणायें रखता है, जिन्हें वह अपनी कलाकृति में प्रकट करना चाहे तो प्रकट कर सकता है। पर इसके लिये वह बाध्य नहीं है। ......सौन्दर्य से मुग्ध होकर अथवा आनन्दपूर्ण एक झलक पाकर भी काव्य रचना की जा सकती है और की गई है। वह सौन्दर्य एवं आनन्द की झलक उस काव्य में आकर स्वयं लोकहित बन जाती है, और काव्य के लिये यही लोक हित है।'[90]

डॉ. नगेन्द्र ने शुक्ल जी और बाबू श्याम सुन्दर दास के इस मतभेद को इस प्रकार स्पष्ट किया है- 'बाबू श्याम सुन्दर दास ने 'कला,कला के लिये' को अपेक्षाकृत अधिक मान्यता दी है। शुक्ल जी में लोक धर्म के शिव का प्रभुत्व है। वहाँ नीत के बन्धन अत्यन्त सुदृढ़ और कठोर हैं। दास जी ने भी काव्य और आचार का सम्बन्ध स्वीकार किया है-पर वह दृढ़ और अनिवार्य नहीं-शिव की अनिवार्यता पर प्रश्न चिन्ह लगाया है। .....की रुचि को निष्कृष्ट माना है। वे 'कला, कला के लिये' सिद्धांत को व्यापक और विवेक सम्मत रूप देकर स्वीकार कर लेते हैं। हाँ ब्रेडले और क्लाइव बेल की तरह कला की दुनिया को एक नई पूर्ण और स्वतन्त्र सृष्टि नहीं मानते- पर वे कला पर किन्हीं बाहरी मूल्यों का आरोप करने के विरुद्ध हैं।'[91]

बाबू गुलाबराय जी ने अपने निबन्ध में तत्सम्बन्धी विचार प्रकट किये हैं। वे दास जी के पक्ष में नहीं हैं- 'वे जीवन और कला का सम्बन्ध मानकर चलते हैं।'[92]

सामान्यत: भारतीय विचारकों ने कला को इतना ऊँचा स्थान नहीं दिया है। यहाँ कला को केवल चमत्कारपूर्ण कौशल समझा गया है। इसलिये भारत वर्ष में काव्य को 'विद्या' की कोटि में और अभिनय, नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला आदि को उपविद्या की कोटि में रखा है। अत: काव्य को अन्य कलाओं से अलग स्थान दिया गया है। कला लौकिक आनन्द देती है। और

काव्यानन्द ब्रह्मानन्द सहोदर हैं। यहाँ चौंसठ कलाओं की गणना मिलती है किन्तु उसमें काव्य का नामोल्लेख नहीं है। प्रसाद जी और पं. रामचन्द्र शुक्ल भी काव्य को कलाओं के अन्तर्गत नहीं मानते हैं। किन्तु पश्चिमी दृष्टिकोण से अधिकाधिक सम्पर्क स्थापित होने के कारण भारतीय दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया और अब अधिकांश विद्वान् काव्य को भी ललित कलाओं के अन्तर्गत स्वीकार करने में आपत्ति प्रकट नहीं करते। डॉ. गुलाब राय और बाबू श्यामसुन्दर दास ने पाश्चात्य दृष्टिकोण का ही अनुसरण किया है।

वस्तुत: ये सभी भारतीय और पाश्चात्य सिद्धान्त जीवन के असीम अन्तराल में एक तत्व की गवेषणा करते हैं और व्यर्थ में ही उसे संकुचित बनाते हैं। कला सृजन के पीछे अरूप को रूप देने की प्रेरणा है, अव्यक्त को व्यक्त बनाने की प्रवृत्ति है। हमें यह याद रखना चाहिये कि कला का आविर्भाव और सृजन एवं इसके पीछे रहने वाली मूल प्रेरक शक्ति मनुष्य की आत्मा के देश में पलती है। कला का मूल और आध्यात्मिक माध्यम मनुष्य है। चित्र और संगीत का रूप धारण करने के पहले वह कलाकार की मानवता का रूप धारण करती है। उसकी चेतना से चेतना, उसके प्राणों से जीवन का वरदान, उसकी वेदना से तीव्रता तथा उसकी आन्तरिक दीप्ति से प्रकाश ग्रहण करती है। कलाकार की आध्यात्मिक प्रसव वेदना से परिचित व्यक्ति तो कला को उसके उत्पादक के रक्त, माँस, हृदय से बना हुआ आत्मज ही मानेंगे।

इस प्रकार कला मानवता की अभिव्यक्ति है। मानवता का अन्तराल असीम और अनन्त है इसमें अनेक रस, ज्योतियाँ, तथा आदर्शों का वैभव है। इसमें मानवता का विस्तार और विकास के साथ कला का भी विस्तार और विकास होता है। कलाकार अपने व्यक्तित्व में अपने युग की समष्टि का अनुभव करता है। उसके व्यक्तित्व में उसके आदर्श, आह्लादता, अवसाद, आशा, अभिलाषा सभी स्पष्ट हो उठते हैं। कलाकार युग के ऊपर भी उठ जाता है, वह मानव जगत् की ही नहीं सम्पूर्ण चराचर सृष्टि के मूल में उद्देलित प्रेरणाओं को भी हृदयंगम करता है। वह अपने जीवन की अनन्तता और इसकी विविध वेदनाओं का अनुभव करता है। इन्हीं को मूर्त रूप प्रदान करना 'कला' है।

काव्य सम्बन्धी विचार :- कवि की चित्त वीणा पर जगत् के प्रभावों की तरंगें निरन्तर थाप देती रहती है। काव्य रचना में इन भाव तरंगों का महत्वपूर्ण स्थान है। **डॉ. हावेल** ने लिखा है- 'हम अपनी संगीत लहरी वस्तु रूपी वीणा पर ही बजाया करते हैं।[93]

कवि का मन जगत् के रूप और व्यापारों के प्रति सदा सचेष्ट रहता है। इनका ज्ञान उसे इन्द्रियों

के माध्यम से होता है। जैसे-जैसे इनके साहचर्य में कवि की इन्द्रियाँ आती हैं वैसे-वैसे ही प्रभाव और संवेदनायें उसके मन में उत्पन्न होने लगती हैं , और जो पदार्थ उनके मन को संतुष्ट करने वाले होते हैं वे ही उनकी चेतना को गहराई से छू पाते हैं और वे उनकी स्मृति में सदा तरंगित होते रहते हैं। डॉ. श्यामसुन्दर दास ने लिखा है-'जीवन की घटनाओं और प्रकृति के बाहरी दृश्यों के जो काल्पनिक रूप इन्द्रियों द्वारा मस्तिष्क या मन पर अंकित होते हैं, वे केवल भावमय होते हैं और इन भावों के द्योतक कुछ सांकेतिक शब्द हैं। अतएव भाव या मानसिक चित्र ही वह सामग्री है, जिसके द्वारा काव्य-रचना-विशारद दूसरे के मन से अपना सम्बन्ध स्थापित करता है।'[94]

काव्य के भावन से हमारे संवेग जागृत हो जाते हैं। यही संवेग कला के प्रभाव से सान्द्र अनुभूतियों में परिणित होकर रसास्वादन कराने लगते हैं। इन अनुभूतियों के उद्‌बोधक आलम्बन या सुन्दर रूप होते हैं। इन सुन्दर वस्तुओं का हमारे मन जो प्रभाव पड़ता है, इन्हीं प्रभावों का विभावों के माध्यम से कवि पुनर्सृजन करता है। इसी को सर्जन प्रक्रिया कहते हैं।

इस सम्बन्ध में हमारे विचारक क्या कहते हैं आइये, इस पर भी विचार कर लें :-

पाश्चात्य मत :- पाश्चात्य विद्वानों ने भी अपने ढंग से काव्य की परिभाषायें प्रस्तुत की हैं। यह परम्परा अरस्तू से प्रारम्भ होती है।

अरस्तू के अनुसार-'भाषा के माध्यम से होने वाली अनुकृति ही काव्य है।'[95]

सिडनी ने अनुकरण को काव्य का मूल स्वीकार किया और इसका लक्ष्य शिक्षा और आनन्द माना। इन्होंने चित्रात्मकता को भी काव्य में मुख्य स्थान दिया है।'[96]

डेनिस ने काव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है-'काव्य प्रकृति की अनुकृति है। इसका माध्यम भावात्मक और विस्तृत भाषण है।'[97]

इस प्रकार इन विचारकों ने अनुकृति पर ही विशेष बल दिया है। यह अनुकृति विशद भाषा द्वारा होती है। सिडनी ने काव्य के लक्ष्य की ओर ध्यान दिलाया है। **एन्स जोना** ने कई प्रकार से परिभाषा दी है। एक स्थान पर उन्होने कविता को छन्दबद्ध रचना कहा है।[98]

एक अन्य प्रसंग में उन्होने परिभाषा इस प्रकार दी है...'कविता आनन्द और सत्य को समन्वित करने की कला है। इस योजना में बुद्धि कल्पना से सहायता देती है।'[99]

उनकी दृष्टि से कविता का सार अन्वेषण है।[100] यहाँ अन्वेषण से तात्पर्य मौलिकता है। इसके साथ ही कवि आत्मगत अन्तर्निहित सत्यों का अन्वेषण भी करता है। उनकी दृष्टि में कविता का लक्ष्य आनन्द पद्धति से शिक्षा देना है।[101]

वर्ड्‌सवर्थ के अनुसार - 'कविता सशक्त भावनाओं का अनायास प्रभाव है जो आत्मनिष्ठ क्षणों में बह जाता है।'[102]

इस परिभाषा में भाव को केन्द्र माना गया है विशिष्ट क्षणों में भाव का उमड़ता हुआ अतिरेक होता है। अतिरेक में बाह्योन्मुख प्रवाह होने लगता है। कवि इसके लिये कोई बौद्धिक प्रयास नहीं करता। अभिव्यक्ति की विवशता और स्वाभाविकता पर इसमें बल दिया गया है। उमड़ते हुये भावों की अनायास अभिव्यक्ति ही काव्य है। अनायास का तात्पर्य यह है कि अभिव्यक्ति के लिये कवि को खींचतान नहीं करनी पड़ती। भावों का स्वत: स्फुरण एवं शब्द-माला का जागरण हो उठता है।

कालिरिज की परिभाषा इस प्रकार है- 'कविता वह रचना है जो विज्ञान के कार्यो से भिन्न होती है। इसका उद्देश्य हो सकता है, पर इसका आनन्द समग्र रचना का आनन्द है जो रचना के उपकरणों से अलग-अलग प्राप्त नहीं हो सकता।'[103] इस परिभाषा में कविता को विज्ञान से इस आधार पर अलग किया गया है कि कविता का उद्देश्य आनन्द है और विज्ञान का सत्य। विज्ञान विश्लेषण प्रिय है और कविता समग्र रह कर आनन्द देती है इस परिभाषा का केन्द्र भी कविता का लक्ष्य है।

'एक दृष्टि से कविता कल्पना की आभिव्यक्ति है। इसके साथ सदैव ही आनन्द का तत्व सम्बद्ध रहता है।'[104] **-शैले**

इस परिभाषा में कल्पना को प्रमुखता दी गई है। कवि की सृष्टि कल्पना पर आधारित रहती है। सामान्य या प्राकृत सृष्टि आनन्द का उद्देश्य नहीं रखती है। यदि प्राकृत सृष्टि में आनन्द का उद्देश्य रहता है। इस उद्देश्य को ध्यान में रख कर कवि कल्पना मौलिक कृति को जन्म देती है। इस प्रकार शैले की दृष्टि से कल्पना और आनन्द कविता के अनिवार्य तत्व हैं।

लेहन्द के अनुसार- 'कविता के उपकरण वे सब हैं। जिनका लक्ष्य आनन्द व आत्मोन्नयन है।'[105]

'कविता सबसे अधिक सुखद और पूर्ण वक्तव्य है, जो मानवीय भाषा की चरम परिणति है।'[106]

मैथ्यू अर्नाल्ड- 'कविता जीवन की समालोचना है। यह समालोचना काव्यगत सत्य और काव्यगत सौन्दर्य के नियमों से परिचालित होती है।'[107]

इस परिभाषा में कविता को जीवन के सन्दर्भ में देखा गया है। सौन्दर्य के काव्यगत सत्य की

ओर भी संकेत किया गया है। जीवन से असम्पृक्त कविता वस्तुत: गतिशील नहीं हो सकती। जीवन की समालोचना से तात्पर्य है जीवन के यथार्थों और आदर्शों को स्वीकार करना। साथ ही यदि जीवन की गति अधोमुख हो, तो एक ऐसा विवेक जागृत करना भी कविता का कार्य है जो उन्नयन की ओर गतिशील हो। वस्तुत: जीवन की समालोचना एक विस्तृत व्यापार है। पर, यह बौद्धिक व्यापार किसी प्रकार भी नहीं है। काव्यगत सत्य और सौन्दर्य इस व्यापार के विधायक तत्व हैं। **रस्किन-** 'कविता कल्पना के द्वारा अभिव्यंजित उदात्त भावों के लिये उदात्त क्षेत्र है।'[108]

इस परिभाषा में कल्पना, व्यंजना और उदात्त भावानाओं की चर्चा की गई है। व्यंजना की परिणिति पाठक या श्रोता में दिखलाई देती है। इसमें श्रेष्ठतर सामाजिक जीवन का उद्देश्य निहित है।

जार्ज संटायन- 'विभिन्न तत्वों की आन्विति या एकता का नाम काव्य है।'[109]

थियोडर नियरग्रीन- 'किसी कलाकार की व्यक्त विषय की कलात्मक संयोजना या व्यवस्था ही उसका कलात्मक रूप है।'[110]

पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि उन्होने काव्य में अनुकृति, अनुकरण, भावना, कल्पना अभिव्यंजना तथा अभिव्यक्ति के कौशल पर अत्यधिक महत्व दिया है। साथ ही साथ काव्य जीवनोपयोगी है, इसकी उपेक्षा करके काव्य, काव्य के लिये ही रचा गया है। इस प्रकार सभी पाश्चात्य आचार्यों ने काव्य को कला के अन्तर्गत ही परिगणित किया है।

भारतीय विद्वानों के काव्य सम्बन्धी मत :- काव्य की भारतीय परिभाषा भरत से लेकर पंडित राज जगन्नाथ तक चलती रही, फिर शुक्ल से लेकर प्रसाद तक। इनमें से कुछ परिभाषायें लेकर इस परम्परा को स्पष्ट किया जा सकता है।

'शब्द और अर्थ का सहित स्वरूप ही काव्य है।'[111] **-भामह** 'इस अर्थ से विभूषित पद रचना ही काव्य शरीर है।'[112] **- दण्डी** 'काव्य गुण तथा अलंकार से संस्कृत शब्द और अर्थ की ही संज्ञा है।'[113] **-वामन**

'गुण और अलंकारों से युक्त वाक्य ही काव्य है।'[114] **-राजशेखर**

'काव्य वक्रोक्ति के सूत्र में संग्रहीत शब्द और अर्थ का समन्वित रूप है।'[115]

'काव्य ऐसे शब्द और अर्थ का समूह है। जो दोष से रहित और गुण से मण्डित और भले ही कभी-कभी अलंकार शून्य भी हो।'[116] **-मम्मट**

'रस पूर्ण उक्ति या वाक्य ही काव्य होता है।'[117] **- विश्वनाथ**

'रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द ही काव्य कहा जा सकता है।'[118] **- जगन्नाथ**

भारतीय आचार्यों की प्रस्तुत कतिपय प्रतिनिधि परिभाषाओं के अतिरिक्त रुद्रट, घनंञ्जय, भोज, हेमचन्द्र, विद्यानाथ, बाणभट्ट, जयदेव आदि आचार्यों ने भी सामान्य भाषागत परिवर्तन के साथ इन्हीं मान्यताओं को परिभाषा के अन्तर्गत अपने शब्दों में उपस्थित किया है। इन परिभाषाओं को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

1. अलंकार को प्रधानता देने वाली परिभाषायें।
2. गुण को प्रधानता देने वाली परिभाषायें।
3. रस को प्रधानता देने वाली परिभाषायें।[119]

शब्द और अर्थ की सभी परिभाषाओं में काव्य का मूलाधार स्वीकृत किया गया है। इन परिभाषाओं में रस का तत्व नहीं आया है। इन आचार्यों ने शब्दार्थ पारम्परित परिभाषाओं के साथ रस या रमणीयता को समावेश करके परिभाषा को पूर्ण बनाने की चेष्टा की है। वैसे कुछ आचार्यों ने भी रस को समाविष्ट करके परिभाषा को पूर्ण बनाया है।

'भोज ने निर्दोष, सगुण, अलंकृत और रसान्वित कथन को ही काव्य कहा है।'[120]

इसी प्रकार बाणभट्ट ने भी परिभाषा को वर्णनात्मक बनाया। भोज ने शब्दार्थ का उल्लेख नहीं किया है। बाणभट्ट ने इनको जोड़कर परिभाषा दी है। 'साधु' विशेषण जोड़कर उन्होंने व्याकरण सम्मत शब्दार्थ के प्रयोग की ओर संकेत किया है, यद्यपि दोष के राहित्य का उल्लेख इनकी परिभाषा में नहीं है। इस परिभाषा में रीति को सम्मलित किया गया है।[121] जयदेव ने अपनी परिभाषा में निर्दोष, सगुण रीतियुक्त सालंकार सरस और वृत्ति युक्त वाक्य को काव्य की संज्ञा दी है।[122]

भरत ने आस्वादन से रस का सम्बन्ध जोड़ा है।'[123]

'**आचार्य धर्मेन्द्र** ने औचित्य को काव्य का जीवन घोषित किया है। 'जो जिसके योग्य हो, अनुरूप हो, आचार्य लोग उसे ही उचित कहते हैं।[124] इस पर्यवेक्षण से ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय साहित्याचार्यों के काव्य-चिन्तन के सम्बन्ध में क्रमशः विकास हुआ। अन्ततः काव्य के सभी आवश्यक तत्वों को लेकर एक बेल विकसित हुयी।

आधुनिक युग में परिभाषाओं का स्वर कुछ बदल गया। इस युग में मनोवैज्ञानिक खोजें हुयीं मनुष्य में समाज भावना का अभूतपूर्व विकास हुआ। प्राचीन मूल्यों के स्थान पर नवीन मूल्य स्थापित होने लगे। अनेक दृष्टियों ने काव्य की परिभाषा को प्रभावित किया। काव्य और कला पर सामाजिक दायित्वों का आरोप होने लगा। काव्य की वैयक्तिक भूमिका का विश्लेषण भी नवीन दृष्टि

से हुआ। अत: आधुनिक परिभाषाओं ने इसी परिप्रेक्ष्य में विचार किया है-

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- कविता वह साधन है, जिसके द्वारा शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।'[125]

इस परिभाषा के अनुसार कविता एक साधन है साध्य नहीं है। मनुष्य का साध्य है- समस्त प्रकृति के साथ रागात्मक सम्बन्ध की स्थापना। रागात्मक सम्बन्ध की स्थापना सामाजिक दृष्टि से भी विवेचित हो सकती है और आध्यात्मिक दृष्टि से भी। सामाजिक दृष्टि से मानवीय सम्बन्धों को अधिक आत्मीय बनाने का कार्य कविता करती है। 'चिन्तामणि' के निबन्धों में शुक्ल जी ने स्थान-स्थान पर मानवतावादी सम्बन्धों की चर्चा की है। इस माध्यम से आध्यात्मिक उन्नयन भी सम्भव है। मनुष्य अपने अन्यान्य स्वार्थों से ऊपर उठकर एक बृहत्तर अस्तित्व प्राप्त करता है। यही हृदय की मुक्तावस्था है, जिसकी सिद्धि के लिये कवि वाणी शब्द विधान करती है।[126] 'कविता मनुष्य के व्यक्तित्व का प्रकाशन है।'[127] **- रवीन्द्रनाथ टैगोर**

टैगोर की दृष्टि से व्यक्तित्व का प्रकाशन ही कविता का उद्देश्य है। व्यक्तित्व एक अर्थगर्भित शब्द है। इसमें मनुष्य का समस्त रागात्मक विकास सांस्कृतिक उन्नयन और आध्यात्मिक उदात्तीकरण आ जाता है। मनुष्य के व्यक्तित्व में कभी-कभी ऐसे क्षण आते हैं, जिसमें उनका सार-सत्व स्फीत होकर अभिव्यक्ति के लिये विकलता उत्पन्न कर देता है। उन क्षणों की अभिव्यक्ति उसकी विवशता बन जाती है। कला व्यक्तित्व की इन्ही गर्भित स्थितियों का प्रकाशन है।[128]

डॉ. भगवान दास- 'कला वह क्रिया है जो रस देने के लिये उद्धिष्ट होती है। यह रस ग्राहक को प्राप्त होता है।'[129]

यह परिभाषा रसवाद पर आधारित है। काव्य का ग्राहक आनन्द प्राप्ति की मूलवृत्ति को लेकर ही कविता की ओर आकृष्ट होता है। व्यक्त या अव्यक्त रूप से रस सृष्टि और रस विस्तार कवि का भी उद्देश्य होता है। आत्म दृष्टि का भी इस सिद्धान्त में निषेध नहीं है। पर केवल आत्मदृष्टि की दृष्टि स्वार्थपूर्ण होती है। अत: आनन्द कामना का विस्तार ही कला के क्षेत्र में श्रेयस्कर है।'[130]

सम्पूर्णानन्द जी ने काव्य परिभाषा देते हुये लिखा है कि - 'अशिव की क्षति साहित्य का बड़ा, पुनीत अनुष्ठान है। जो साहित्यकार ऐसा नहीं करता उसे सरस्वती के मन्दिर में प्रवेश का अधिकार नहीं है।'[131]

इस दृष्टिकोण में सामाजिक उद्देश्य निहित है। 'शिव' तत्व में सामाजिक उपयोगिता का समावेश है। इसकी आधार भूमि मम्मट के 'शिवेतरक्षतये' में है। लोकव्यापी कल्याण भावना से नियोजित

काव्य का महान यज्ञ है।[132]

प्रसाद ने कहा है- 'काव्य आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है, जिसका सम्बन्ध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है।'[133] प्रसाद की इस परिभाषा का विधि पक्ष भी सबल है और निषेध पक्ष भी विधि रूप में काव्य-संकल्प, संश्लेषण और पूर्ण है। इसमें विकल क्षणों की वाणी नहीं रहती। भेद-प्रभेद की धात्री बौद्धिकता का काव्य में निषेध है। विश्लेषण की प्रक्रिया सौन्दर्य बोध को क्षुब्ध कर देती है। विकल्प संशयात्मक बुद्धि का परिणाम है। संशय अनुभूति की स्थिरता और तज्जन्य भाव-परिपाक का विरोधी होता है। इस परिभाषा के द्वारा काव्य और अकाव्य का भेद भी स्पष्ट हो जाता है। संकल्प, अविकल और आत्मस्थ होने के कारण सौन्दर्य सृष्टि का साधक तत्व है।[134]

उपर्युक्त परिभाषाओं में नवीन प्रेरणा और शब्दावली के साथ प्राचीनता की छवि भी दिखलाई पड़ती है। इस पर सबसे अधिक प्रभाव मनोविज्ञान और सामाजिक उद्देश्य का पड़ा। उपयोगिता का वैयक्तिक पक्ष और सामाजिक पक्ष भी है। वैयक्तिक दृष्टि से काव्यगत अभिव्यक्ति व्यक्ति के तनाव को मृदु बनाती है और सामजिक दृष्टि से उसमें व्यापक कल्याण कामना प्रतिफलित होती है।

काव्य की इन परिभाषाओं पर सम्पूर्ण दृष्टि डालने पर यह ज्ञात होता है कि सभी विद्वान एक मत नहीं, किसी ने किसी पर अधिक प्रकाश डाला है तो किसी ने किसी और पर। हाँ ! इन सभी को जोड़ कर एक समग्र चित्र बनता है , जो वास्तव में मनुष्य की सृजनात्मक प्रक्रिया है, जो निर्दोष, सगुण और अलंकृत भाषा के माध्यम से स्वानुभूति को दूसरों तक पहुँचा कर आनन्द प्रदान करती है।

कला का वर्गीकरण :- मानव की इच्छायें सदैव उसे सोचने के लिये प्रेरणा देती रहती हैं। इस चिन्तन से उसके मन पर जो प्रभाव पड़ता है। उसे व्यक्त करने के लिये वह व्याकुल हो जाता है। और यही व्याकुलता भाषा का परिणाम होती है। यदि भाषा के द्वारा वह अपनी व्याकुलता शान्त नहीं कर पाता तो वह अन्य साधनों को अपनाता है। मन की भावनाओं को व्यक्त करने का एकमात्र सशक्त साधन कला है। व्यक्ति पर उसके चारों ओर व्याप्त वातावरण का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। और वे अपनी संवेदनशील भावनाओं को व्यक्त करने के लिये व्याकुल रहते हैं क्योंकि उनमें सहृदयता करुणा दूसरों की अपेक्षा अधिक होती है। और यही अभिव्यक्ति 'कला' कहलाती है। करुणा को इसका मूल कारण माना जाता है। शायद यही कारण रहा होगा, तभी क्रौंच वध को देखकर बाल्मीकि के मुख से करुणा के कारण कविता के फूल झर पड़े थे।

कला और सौन्दर्य का सम्बन्ध काफी घनिष्ठ है। ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इनके बीच विभाजन करना असम्भव है। जब कलाकार अपनी रचना में सौन्दर्य का सामंजस्य करता है, तो वह रचना 'कला' कहलाने लगती है। वास्तव में कला का उद्गम सौन्दर्यानुभूति की प्रेरणा ही है। क्योंकि इसी से कला का जन्म होता है और कलाकार को आनन्द की प्राप्ति होती है और उसे सुखद अनुभूति होती है। शायद इसी से कला आनन्द-प्रदायिनी मानी गई है। कलाकार अपनी कला के माध्यम से अपनी सौन्दर्यानुभूति व्यक्त कर स्वयं आनन्द प्राप्त करता है और अपने सहृदयों को भी प्राप्त कराता है।

'कला के मूल में सौन्दर्य-भावना की प्रधानता रहती है। जिस प्रकार से सृष्टि की अनुपम कृति नारी साज -शृंगार से ऊपर है, विश्व की जननी और धात्री है , वैसे ही कला भी विश्व के मूर्त रूप की जननी और धात्री है।' वह शुद्ध आनन्द प्रेरणा में ही जीवन के उदात्त पक्ष की अभिव्यक्ति करती है।

किन्तु कुछ महान विचारकों और विद्वानों का विचार है कि कला एक अखण्ड अभिव्यक्ति है। इस कारण उसका विभाजन असम्भव है। यह तो सत्य ही है कि कला का मूल सौन्दर्यानुभूति है और सौन्दर्यानुभूति अखण्ड और अविभाज्य है। इस कारण इसके मूर्तरूप कला का विभाजन नहीं किया जा सकता। आज कला कलाकार की संवेदनात्मक अनुभूति का व्यक्त रूप है। अत: इसका वर्गीकरण असम्भव है। कला जब अपने मूर्त रूप में होती है तो हमें उसके विभिन्न रूप दिखाई देते हैं।

प्रसिद्ध इतालवी सौन्दर्यशास्त्री **क्रोचे** का मत है- 'इन रूपों की भिन्नता में तात्विक भिन्नता न होकर केवल बाह्य-भिन्नता होती है। उसकी मूल अभिव्यक्ति एक ही रहती है। इसलिये तात्विक दृष्टि से कला का विभाजन सम्भव नहीं।'[135]

इसी कारण कला का विभाजन तात्विक दृष्टि के अतिरिक्त दर्शनिक और कलात्मक दृष्टि से भी नहीं हो सकता। आज तक जितने भी विभाजन किय गये हैं वे कला की अभिव्यंजना के आधारों पर किये गये हैं। एक ही वस्तु का प्रभाव विभिन्न कलाकारों के हृदय पर समान पड़ता है किन्तु इसको व्यक्त करने का ढंग उनकी रुचि पर निर्भर करता है। उनकी रुचि विशेष के व्यक्त प्रकारों के आधारों पर कलाओं का वर्गीकरण किया है , जो पूर्णत: व्यावहारिक है।

इसका आधार कला के अनिवार्य उपकरण चित्र काव्य संगीत मूर्ति स्थापत्य है ; जिनके माध्यम से आपने हृदय पर पड़े प्रभावों को कलाकार व्यक्त करता है। एक ही सुन्दर वस्तु को देखकर एक

कलाकार चित्र द्वारा, दूसरा मूर्ति द्वारा, तीसरा संगीत द्वारा, चौथा कविता द्वारा व्यक्त करता है। यहाँ प्रभाव एक ही है पर अभिव्यक्ति के साधनों में भिन्नता है। इन कलाओं के स्वरूपों में साधनों की भिन्नता से उत्पन्न भिन्नता होते हुये भी इसकी मूल संवेदना एक ही रहती है। समस्त कलायें परस्पर प्रगाढ़ रूप से सम्बद्ध हैं ओर उनका लक्ष्य भी समान है- 'सौन्र्यानुभूति की व्यंजना करना।'[136]

अत: कला का क्षेत्र व्यापक और विस्तृत है। सभी कुछ तो कला है, फिर किसे कला न कहा जाय? किन्तु उसकी व्यापकता के आधार पर कला के वर्गीकरण पर विचार करना आवश्यक है। कला इतनी अधिक श्रेणियाँ और शाखायें है कि कला के वर्गीकरण तथा विभाजन के रूप पर विद्वान भी एक मत नहीं हैं।' [137] सामान्यत: कलाओं की संख्या 64 मानी जाती है, जो भ्रामक है।[138] कुछ विद्वान कला को अविभाज्य मानते हैं, जिनमें क्रोचे प्रमुख हैं।[139]

मोनियर विलियम्स ने अपने 'संस्कृत कोष' में भारतीय दृष्टिकोण से कला के दो भेद किये हैं :-

1. बाह्य कला (एक्सटर्नल आर्ट अथवा मूर्त कला)
2. गोपनीय कला (सीक्रेट आर्ट अथवा अमूर्त कला)

बाह्य कला के अन्तर्गत उन्होने चित्रकला, वास्तुकला बढ़ई गीरी, सुनारगीरी आदि को मान्यता प्रदान की है। गोपनीय कला में आलिंगन, चुम्बन आदि आते हैं। भारतीय विद्वानों ने कला का वर्गीकरण नहीं किया है ; वे कला के विभिन्न रूपों को ही मानते हैं। मोनियर विलियम्स ने शायद यह देखा कि भारतीय दृष्टिकोण से कलायें अनन्त हैं, तथा जीवन के छोटे-बड़े सभी प्रकार के व्यापरों या क्रियाकलापों को गोपनीय कला माना गया है , किन्तु फिर भी यह वर्गीकरण कोई विशेष महत्व का नहीं समझा जाता। [140]

डॉ. श्याम सुन्दर दास ने कलाओं के विभाजन के लिये एक और आधार अपनाया है। कला के दो पक्ष होते हैं -

(क) अनुभूति पक्ष

(ख) रूप पक्ष

इन दोनों की प्रधानता में तीन प्रकार की विशेषताये आ सकती हैं :-

1. अनुभूति की कमी पर रूप का आधिक्य।
2. अनुभूति की तीव्रता पर रूप की कमी।
3. अनुभूति और रूप दोनों का समन्वय।

इससे स्पष्ट है कि अन्तिम विभाग की कला वस्तुयें ही श्रेष्ठ समझी जाती हैं और इनके निर्माता कलाकार सफल और वरेण्य माने जाते हैं।[141]

हीगेल ने उपकरणों की दृष्टि से कला के पाँच भेद माने हैं -

1. वास्तुकला
2. मूर्तिकला
3. चित्रकला
4. संगीतकला
5. काव्य कला। [142]

अधिकांश विद्वानों ने उक्त पाँच कलाओं को ही कला के वर्गीकरण के रूप में स्वीकारा है।

हीगेल ने भाव विकास की दृष्टि से भी कला का वर्गीकरण किया है।

1. प्रतीकवादी
2. शास्त्रीय (क्लासीकल)
3. रोमानी (रोमैन्टिक) [143]

हीगेल के अनुसार-भाव की सूक्ष्म और स्पष्ट अभिव्यक्ति कला के उन्नत विकास क्रम की कसौटी है। प्रागैतिहासिक काल में भाव अमूर्त या अस्पष्ट थे ; अत: उस युग की कलाओं का स्वरूप प्रतीकात्मक रहा। उस काल में भाव भौतिक आकृतियों में पूर्णत: व्यक्त नहीं हो पाया था, इसलिये कलायें भद्दी और कुरूप थी, जैसे प्राचीन देवी-देवताओं की मूर्तियाँ, जिनमें आकृति तो है; किन्तु स्पष्ट भावाभिव्यक्ति नहीं। शास्त्रीय कला में आकृति के माध्यम से भाव मूर्त और स्पष्ट रूप में व्यक्त होता है। यूनानी देवताओं की मूर्तियों में भाव और आकृति में पूर्ण सामंजस्य है , किन्तु उनमें ऐन्द्रिक स्थूलता अधिक है। शास्त्रीय कला में वह बौद्धिक अन्तर्मुखता नहीं रहती है , जो भाव के उच्चतम विकास की परिचायक है। रूमानी कला में बौद्धिक अन्तर्मुखता पूर्ण रूप से मिलती है, जिसमें आकृति या भौतिक माध्यम का उपयोग कम से कम रहता है। कला का सर्वश्रेष्ठ रूप यही है। भाव की इसी सूक्ष्म एवं स्पष्ट अभिव्यक्ति की कसौटी पर हीगेल ने वास्तुकला को प्रतीकवादी, मूर्तिकला को शास्त्रीय और चित्रकला, संगीत एवं काव्यकला को रूमानी कला के रूप में विभक्त किया है। [144]

कुछ आलोचकों ने ऐतिहासिक दृष्टि तथा रुचि भेद के आधार पर भी कलाओं का वर्गीकरण किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसके दो विभाग माने गये हैं -

1. प्राचीन कला

2. आधुनिक कला

रुचि भेद के आधार पर भी इसके दो भेद हैं -

1. धार्मिक कला

2. लौकिक कला। [145]

धार्मिक कलाओं के प्रभाव से कहीं - कहीं लोगों की रुचि श्रद्धा में बदल जाती है। कृतियाँ उनके लिये पूजनीय बन जाती हैं। देवताओं की प्राचीन सुन्दर मूर्तियों के प्रति श्रद्धा की भावना जन साधारण में विद्यमान है। अधिकांश व्यक्तियों की दृष्टि उसके कलात्मक सौन्दर्य को विश्लेषित न कर उसके धार्मिक तत्व तक ही सीमित रह जाती है। जिस प्रकार काव्य कला की उत्कृष्ट कृतियाँ रामायण, महाभारत आज व्यक्तियों की दृष्टि में सुन्दर काव्य न होकर धार्मिक ग्रन्थ बन गये हैं। इनकी सबसे बड़ी हानि यह हुयी है कि इनका वास्तविक सौन्दर्य छिप गया है जिस पर किसी की भी दृष्टि नहीं जाती। कलात्मक रूपों पर धार्मिकता या अलौकिकता का पर्दा डालने पर यही परिणाम सामने आता है।

कुछ विद्वानों ने कला के दो वर्ग इस प्रकार माने हैं-

1. प्राकृतिक कला

2. ज्ञान एवं अभ्यासगत कला

कुछ अन्य लोगों के अनुसार दो भेद और होते हैं-

1. सामान्य कला

2. सांस्कृतिक कला [146]

सामान्यत: कला के दो वर्ग ही स्पष्ट रूप में स्वीकारे गये हैं-

1. ललित कला

2. उपयोगी कला

इस वर्गीकरण का आधार वे बाह्य उपकरण हैं, जिनका आधार लेकर कलाकार अपनी अनुभूति को व्यक्त करता है। उपयोगिता को सौन्दर्य के साथ प्रस्तुत करना ही कला कहलाता है। कला के क्षेत्र में लालित्य और उपयोगिता दोनों ही अत्यावश्क हैं अत: ललित कला में भी उपयोगिता है और उपयोगिता में भी लालित्य।

उपयोगी कला में वे सब कलायें आ जाती हैं जिनका हमारे दैनिक जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध

रहता है - जैसे लुहार, बढ़ई, सुनार, कुम्हार, जुलाहा आदि के कार्य।

ललित कलाओं में वे सब कलाये आती हैं जो कलायें मानसिक रूप से जुड़कर मन तथा मस्तिष्क को उद्वेलित तथा परिष्कृत करती हैं, तथा आनन्द प्रदान करती हैं। ललित कलाओं की उपयोगिता प्रत्यक्ष रूप में दिखाई नहीं देती वह अप्रत्यक्ष रूप से हृदय पर अपना प्रभाव डालकर हमारे अन्दर छिपे भावों को परिष्कृत करती है।

-कला के विभिन्न वर्गीकरण का आधार प्रधानत: उसके बाह्य उपकरण मात्र हैं। वास्तव में कला का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता। जैसा कि कहा जा चुका है कि कला एक अखण्ड अभिव्यक्ति है, भिन्नता केवल उसकी अभिव्यंजना प्रणालियों के कारण प्रतीत होती है। उपयोगी कलाओं के माध्यम से मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है तथा अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति को उन्नत बनाता है। ललित कला मनुष्य का मानसिक विकास कर उसे अलौकिक आनन्द की प्राप्ति कराती है जिससे उसके भावों का परिष्करण होता है और वह समाज के लिये शुभ होता है।

अत: उपयोगी और ललित कला विभाजन ही सार्थक तथा वैज्ञानिक है तथा इसका श्रेय यूरोप के प्रसिद्ध कला शास्त्री हीगेल को है। जिन्होंने ललित कला के पाँ भेद माने हैं - वास्तु, मूर्ति, चित्र, संगीत और काव्य।

कला के इसी सामान्य भेद को मानते हुये ललित कला का विभिन्न आधारों पर विभाजन निश्चित किया गया है। जो निम्नांकित है-

1. रूप के आधार पर [147]

क- रूपात्मक या स्थान पर आधारित

ख- गत्यात्मक या गति पर आधारित

रूपात्मक या स्थान पर आधारित कला में मूर्ति, चित्र तथा वास्तुकला आती है। इसका रूप देखा जा सकता है। लेकिन गत्यात्मक या गति पर आधारित कला देखी नहीं जा सकती है, जिसमें काव्य या संगीत को रखा गया है। संगीत में केवल स्वरों से ही आनन्द प्राप्त किया जाता है, परन्तु काव्य में शब्दों के संगीत द्वारा आनन्द उठाया जा सकता है। कुछ विद्वानों ने इन्हीं को इन्द्रिय ललित कलायें कहा है।

2. इन्द्रियों के आधार पर [148]

क- आँख को आनन्द देने वाली ललित कला।

ख- कान को आनन्द देने वाली ललित कला।

ग- आँख और कान दोनों को आनन्द देने वाली ललित कला।

इन्द्रियों के आधार पर चित्र, मूर्ति आदि कलायें दृश्य हैं, जो आँख को आनन्द देने वाली हैं। वे ललित कलायें जिनका कान रसास्वाद करते हैं, उन्हें श्रव्य कलायें कहते हैं, जैसे संगीत व काव्य आदि। परन्तु नाटक और नृत्य से आँख और कान दोनों ही रसास्वादन करते हैं, जिसके आधार पर उन्हें श्रव्य-दृश्य दोनों ही श्रेणियों में गिना जाता है।

3. मूर्तता के आधार पर [149]

क- मूर्त कला

ख- अमूर्त कला

मूर्त कला के अन्तर्गत मूर्ति और चित्र माने जाते हैं तथा अमूर्त के अन्तर्गत काव्य और संगीत आते हैं, क्योंकि इनका कोई मूर्त रूप नहीं होता। काव्य छन्दों में लिखे जाते हैं उसे सुनने पर जो आनन्द प्राप्त होता है उससे उसका मूर्त रूप दृष्टिगोचर नहीं होता।

4. अनुकरण के आधार पर [150]

क- अनुकरण पर आधारित

ख- अनुकरण पर आधारित न होने वाली।

अनुकरण में चित्रकला पहले आती है, क्योंकि कलाकार जो भी देखता है, अनुभव करता है उसी को अभिव्यक्त करता है। किन्तु आजकल बिना देखे ही चित्र रचना की जाती है जिसे सूक्ष्म कला कहते हैं। अनुकरण का आधार न लेने वाली कलाओं में वास्तुकला भी आती है।

5. मनोविज्ञान के आधार पर [151]

क- कला का अलंकारणात्मक स्वरूप

ख- कला का अनुकरणात्मक और आत्माभिव्यंजक स्वरूप।

अलंकरणात्मक कला में शृंगार कला प्रमुख है। विभिन्न प्रकार के शृंगार करना तथा पत्र-रचना आदि इसी कला के अन्तर्गत आते हैं। अनुकरणात्मक कला में चित्रकला और मूर्ति कला भी आती है। मनोविज्ञानिकों का मानना है कि -' मनुष्य के स्वभाव में अनुकरण का महत्वपूर्ण स्थान है वह जैसा देखता है उसी प्रकार से अपने को ढालने का प्रयत्न करता है। इसी प्रवृत्ति पर आधारित मनुष्य रचना करता है।

आत्माभिव्यंजक कला विशेष है इसमें कलाकार अपने भावों को प्रस्तुत कर आत्माभिव्यंजना

करता है।

इस प्रकार कला के वर्गीकरण के आधार उसके स्वरूप, शिक्षा के दृष्टिकोण, इन्द्रिय- ग्राह्यता, मूर्तता और अनुकरण आदि माने जाते हैं। किन्तु कला को कला के आधार पर ललित कला और सहयोग कला के अधीन ही वर्गीकृत किया जाना चाहिये।

वास्तुकला :- वास्तुकला में मूर्त आधार सबसे अधिक स्थूल रहता है। इसका मूर्त आधार पत्थर, ईट, धातु-खण्ड, काष्ठ तथा सीमेंट आदि रहते हैं। जिससे भवन का निर्माण होता है। इन साधनों के माध्यम से ही वास्तुकार भवन आदि का निर्माण करता है। वह प्राकृतिक उपादानों का भी सहारा लेता है जिनके द्वारा वह दर्शकों को प्रभावित करता है। हमारे मन के अन्दर सौन्दर्यानुभूति की क्षमता रहती है जिस प्रकार कि सुन्दर महल को देखकर हमारे भावों का उन्मेष होता है वह उतना ही स्थाई है जितनी एक काव्य रचना को पढ़ कर प्राप्त हुआ आनन्द। किसी देवता के मन्दिर को देख कर हमारी धार्मिक भावनायें जागृत हो जाती हैं उस मन्दिर की चोटी, ऊँची छतें हमारी चेतना को मुखर कर देती हैं, और इस सब में हमारे धार्मिक विश्वास और आकाँक्षायें अपने मूर्त रूप में रहती हैं।

मूर्तिकला - मूर्तिकला का मूर्त आधार पत्थर धातु, मिट्टी या लकड़ी होता है। जिसे मूर्तिकार काट-छाँट कर मूर्ति के रूप में ढालता है। कलाकार यथार्थ जगत के सभी रूप-रंगों को मूर्त कर सकता है परन्तु उसमें गति नहीं ला सकता। अधिकाधिक वह गतिशील मुद्रा या स्थिति की झाँकी मात्र दे सकता है। अनेक आकृतियों के संयोग से किसी विशिष्ट घटना की ओर भावपूर्ण संकेत करना ही मूर्तिकला की महत्वपूर्ण विशेषता है।

चित्रकला - चित्रकला का मूर्त आधार कपड़ा, लकड़ी ,कागज, रंग तथा ऊपरी धरातल है। जिस पर कलाकार अपनी आड़ी-तिरछी रेखाओं और रंगों के माध्यम से मूर्त रूप प्रदान करता है। चित्रकार रंगों के विधान और पदार्थों के माध्यम से यथावत प्रतिबिम्ब ही नहीं उतारता वरन् उसके मानसिक प्रभावों को भी अंकित करता है। चित्रकार अपनी मानसिकता और भावों के अनुरूप ही दृश्य को चित्रित करता है। साथ ही वह अपने चित्र में नये अर्थ भी भरता है जिसमें मनुष्य की मन:स्थिति या धारणा का प्रतिबिम्ब मिलता है।

संगीत कला - संगीत का मूल आधार नाद है। वह तो मानव कण्ठ से या वाद्य यन्त्रों से निकलता है। संगीत को सात स्वरों में आबद्ध किया गया है। प्राचीनकाल से आज तक भावों को व्यक्त करने का माध्यम नाद ही था, इसी कारण इसका प्रभाव मनुष्य के हृदय पर अधिक पड़ा। इसमें

काफी तीक्ष्णता रहती है और मानव के अन्तस में छिपी स्थितियों को व्यक्त करने में काफी समर्थता है। इसका प्रभाव सभी प्राणियों जीव-जन्तु तथा मानव पर पड़ता है। इसमें मन को एकाग्रचित्त करने की क्षमता अधिक है।

साहित्य - यह कथन अक्षरश: सत्य है कि - 'मानव द्वारा अपने भावों को अभिव्यक्त करने और उन्हें स्थिरता देने की भावना ने साहित्य को जन्म दिया।'[152] संसार और जीवन में जो कुछ भी हम देखते हैं, अनुभव करते हैं, उसके प्रति हमारी कोई न कोई प्रतिक्रिया अवश्य होती है। उस प्रतिक्रिया के विषय में पहले हमें ज्ञान होता है, तत्पश्चात् आकर्षण या विकर्षण। ज्ञान का उदय होते ही हमारा हृदय आनन्द से भर जाता है। क्योंकि ज्ञान का भावों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। भावों से प्रेरित होकर ही हम उसके अनुरूप कार्य करते हैं। मानव की विभिन्न अभिव्यक्तियों में से विद्वान उसकी शाब्दिक अभिव्यक्ति को ही सबसे अधिक महत्व देते हैं, क्योंकि उसमें स्थायित्व व सामाजिकता अपेक्षाकृत अधिक होती है। हम अपनी आत्मा पर पड़े हुये विभिन्न प्रभावों से उत्पन्न भावों की अभिव्यक्ति चाहते हैं, यही आत्माभिव्यक्ति कहलाती है। साहित्य इसी का दूसरा नाम है।

इसी आधार पर **बाबू गुलाबराय** ने साहित्य की निम्न परिभाषा स्थिर की है- 'साहित्य संसार के प्रति मानसिक प्रक्रिया अर्थात् विचारों भावों और संकल्पों की शाब्दिक अभिव्यक्ति है और हमारे किसी न किसी प्रकार के कारण संरक्षणीय हो जाती है।[153]

काव्य-कला - इस कला का आधार शब्द है जिनके चिह्न जीवन की घटनाओं से हमारे हृदय पर चिन्हित होते हैं। ये चिह्न भावमय हैं, भावों को व्यक्त करने के लिये कलाकार शब्दों का व्यवहार करता है। काव्य के माध्यम शब्द और अर्थ हैं। काव्य कला में भावों की शक्ति को बढ़ाने के लिये संगीत का सहारा लिया जाता है। अलंकार और छन्द के रूप में काव्य संगीत के गुणों को अपना लेते हैं। शब्द भी अंतत: नाद ही है और इन्हीं सार्थक शब्दों के द्वारा काव्य कला भाव को व्यक्त करने में सफल होती है। काव्य की अनुभूति कान और आँख दोनों के द्वारा होती है। काव्य कला मानव चेतना पर अपना प्रभाव दीर्घ स्थाई रखती है।

जयशंकर प्रसाद ने 'काव्य कला तथा अन्य निबन्ध' में काव्य को ललित कला मानने का विरोध किया है। उन्होने हीगेल के कलाविभाजन वाले सिद्धांत का खण्डन करते हुये यह प्रमाणित किया है कि यह विभाजन अशुद्ध है ; क्योंकि प्राचीन भारतीय शास्त्रकारों ने काव्य की गणना विद्या में और कलाओं की उपविद्या में की है जो काव्य की प्रकृति को देखते हुये अधिक समीचीन और

संगत है। उनका मानना है कि हीगेल द्वारा काव्य को ललित कलाओं के अन्तर्गत मानने के कारण धर्मशास्त्र और दर्शनशास्त्र को काव्य से उच्च स्थान देना पड़ा है। परन्तु हमारे यहाँ काव्य को धर्म और दर्शन से कभी भी निम्न कोटि का नहीं माना गया। अत: इस कारण उन्होने काव्य को कला नहीं माना है।[154]

आचार्य शुक्ल भी प्रसाद के मत का समर्थन करते हुये काव्य को कला मानने की प्रवृत्ति की निन्दा करते हैं। उनका कथन है कि- वात्सायन के 'काम-सूत्र' में वर्णित 64 कलाओं में काव्य की गणना नहीं की गई है। यद्यपि हीगेल द्वारा वर्णित अन्य चारों ललित कलाओं-वास्तु, मूर्ति, चित्र, संगीत का, उसमें 64 कलाओं के अन्तर्गत वर्णन किया है। शुक्ल जी का यह दृढ़ मत है कि काव्य का कला और सौन्दर्यशास्त्र से कोई भी सम्बन्ध नहीं हो सकता है।[155] वे कहते हैं कि- 'सौन्दर्य शास्त्र में जिस प्रकार चित्रकला, मूर्तिकला आदि शिल्पों पर विचार होने लगा है, उसी प्रकार काव्य का भी, सबसे बेढंगी बात तो यही हुयी।'[156] शुक्ल जी का आगे कहना है- काव्य को कला की भ्रान्त धारणा के कारण ही हिन्दी समीक्षा में अभिव्यंजनावाद, सौन्दर्यवाद और रहस्यवाद आदि का विवेचन होने लगा, यदि ऐसा न होता तो काव्य में इसके विवेचन की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ती, क्योंकि इनका काव्य से सीधा सम्बन्ध नहीं हैं।[157]

दूसरी ओर डॉ. श्यामसुन्दर दास और बाबू गुलाब राय काव्य को ललित कला मानने के पक्ष में हैं। डॉ. दास ने अपने ग्रन्थ 'साहित्यालोचन' में ललित कलाओं का यही विभाजन किया है उनका विभाजन हीगेल के सिद्धान्तों पर ही आधारित है। उन्होने ललित कलाओं का प्रतीकात्मक, शास्त्रीय अथवा रोमानी विभाजन नहीं किया। उन्होने हीगेल के समान ही काव्य कला को ललित कलाओं में सर्वश्रेष्ठ ठहराया है।

बाबू गुलाब राय भी प्रसाद व आचार्य शुक्ल से सहमत नहीं होकर काव्य को ललित कलाओं के अन्तर्गत ही मानते हैं। उनका कथन है कि- 'काव्य की विवेचना चित्र, संगीत आदि ललित कलाओं से भिन्न नहीं की जा सकती ; क्योंकि ये सब कलायें केवल एक दूसरे पर प्रभाव डालने वाली हैं। इस प्रकार यूरोप में प्रभाववादी चित्रकला ने काव्य में एक नई प्रवृत्ति की सृष्टि की है, जिसे प्रभाववादी काव्य कहते हैं।'[158] 'हीगेल का कला-सिद्धान्त' नामक लेख में हीगेल के कला विभाजन का समर्थन करते हुये डॉ. रवीन्द्र सहाय वर्मा ने लिखा है कि समीक्षा में सही विवेचन नहीं हो सका है। हिन्दी समालोचकों का हीगेल द्वारा वर्णित ललित कलाओं के विभाजन का विरोध बहुत कुछ इसी कारण है कि वे काव्य की गणना तो विद्या में करते हैं, किन्तु अन्य कलाओं की उपविद्या में।

यह कठनाई हीगेल के सामने न थी, क्योंकि वह समस्त कला को 'आयडिया' (भाव) का माध्यम मानता था। इस प्रकार हीगेल के कला सम्बन्धी विचार भारतीय कला-विषयक विचारों से नितान्त भिन्न हैं। हीगेल काव्य का स्थान नीचे नहीं गिराता है, वरन् अन्य ललित कलाओं का ; जैसे वास्तु, मूर्ति, चित्र, संगीत आदि का स्तर काव्य तक उठाने का प्रयत्न करता है। यदि हम काव्य की गणना वात्स्यायन की कलाओं की गणना भी हीगेल द्वारा वर्णित ललित कलाओं में नहीं कर सकते। पर यदि हीगेलीय परिभाषा के अनुसार ललित कला को हम 'आयडिया' (भाव) की अभिव्यक्ति का साधन समझते हैं, तो काव्य की गणना ललित कलाओं के साथ करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिये।'[159]

कुछ अन्य छायावादी कवियों ने भी काव्य को ललित कला का अंग मानना स्वीकार किया है। इन कवियों ने अपने गद्य लेखों में यत्र-तत्र कलाओं के मौलिक स्वरूप पर विचार करने का प्रयास किया है। निराला ने 'काव्य में रूप और अरूप, तथा कला और देवियों' शीर्षक निबन्ध में तथा प्रसाद ने 'काव्य और कला' शीर्षक निबन्ध में, पन्त ने 'कला का प्रयोगजन' शीर्षक लेख तथा 'पल्लव' की भूमिका में और महादेवी वर्मा ने 'सांध्यदीप', 'दीपशिखा' तथा 'क्षणदा' की भूमिका में काव्य को अन्य ललित कलाओं के साथ रखकर उसका तात्विक और दर्शनिक दृष्टि से विचार किया है।

प्रसाद ने अपनी अन्य रचनाओं में भी यत्र-तत्र ललित कलाओं के अन्तःसम्बन्ध का संकेत किया है जैसे मातृगुप्त के इस कथन में - 'कवित्व वर्णमय चित्र, जो स्वर्गीय भावपूर्ण संगीत गाया करता था।'[160] पन्त ने अपनी 'इन्द्रधनुष' शीर्षक कविता में ललित कला का सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है।[161]

पन्त ने ज्योत्सना नाटिका के उत्तरार्द्ध में भी अपने कला दर्शन को यत्र-तत्र स्पष्ट किया है। इसमें उन्होने तीन मान्यतायें निर्धारित की हैं इनकी प्रथम मान्यता यह है कि लोक मंगल की दृष्टि से सभी कलायें समान हैं, क्योंकि कलाकार को 'काव्य, संगीत, चित्र, शिल्प द्वारा मनुष्य के सुखमय जीवन की उन्नत मानवीय मूर्तियों को स्थापित करना है।'[162] पंत की दूसरी मान्यता है- 'कि सभी कलाओं का मूल वह सौन्दर्य है, जो अनेकता में एकता के अन्वेषण से पैदा होता है......अनेकता में जीवन की एकता का आभास दिखाना कवि, चित्रकार एवं कलाकार का काम है। और यही कला का सौन्दर्य है। मुट्ठी भर धूल में कला समस्त ब्रह्माण्ड के दर्शन करा देती है। अनेकता के असमंजस्य में खोये हुये हृदय को एकत्रित कर कला उसे मनुष्य की आत्मा में

केन्द्रित कर देती है। '[163]

तदनन्तर पंत की तृतीय मान्यता है- कि श्रेष्ठ कला के सौन्दर्य में सत्य और जीवन के सजीव यथार्थ का समावेश रहता है-'कला अपना अस्तित्व जीवन में लय कर जब तक उससे तदाकार नहीं हो जाती, उसके मूर्त हाथ सत्य की ज्वाला को नहीं पकड़ सकते। सर्वोच्च कलाकार वह है जो कला के कृत्रिम पट में जीवन की निर्जीव प्रतिकृतियों का निर्माण करने के बदले अस्थि माँस की इन सजीव प्रतिमाओं में अपने हृदय से सत्य की साँस भरता है, उन्हें सम्पूर्णता का सौन्दर्य प्रदान करता है।[164]

महादेवी वर्मा ने भी काव्य एवं ललित कलाओं के स्वरूप पर तात्विक दृष्टि से विचार किया है। उनके चिन्तन पर हीगेल के कला दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है। उन्होने ललित कला की उत्कृष्टता पर विचार करते हुये लिखा है-'जो कला भौतिक उपकरणों से जितनी अधिक स्वतन्त्र होकर भावों की अधिकाधिक व्यंजना में समर्थ हो सकेगी, वह उतनी ही अधिक श्रेष्ठ समझी जायेगी। इस दृष्टि से भौतिक आधार की अधिकता और भाव व्यंजना की अपेक्षाकृत न्यूनता से युक्त वास्तु कला हमारी कला का प्रथम सोपान और भौतिक सामग्री के अभाव और भाव व्यंजना की अधिकता से पूर्ण काव्य कला उसका सबसे ऊँचा तथा अन्तिम सोपान माना जायेगा। चित्रकला वास्तुकला की अपेक्षा भौतिक आधार से स्वतन्त्र होने पर भी काव्य कला की अपेक्षा अधिक परतन्त्र है ; कारण वह देश के ऐसे कठिनतम बन्धन में बँधी है, जिसमें चित्रकला बने रहने के लिये उसे सदा ही बँधा रहना होगा।'[165] इसी तरह महादेवी वर्मा ने अन्य ललित कलाओं पर भी गहन चिन्तन किया है। उन्होने श्रव्य और दृश्य कलाओं के स्तर भेद को इंगित करते हुये लिखा है-'कलाओं में काव्य जैसी श्रव्य कलाओं की अपेक्षा चित्र जैसी दृश्य कलाओं की ओर मनुष्य स्वभावत: अधिक आकर्षित रहता है। मूर्तिकला, चित्रकला आदि दृश्य कलायें एक ही साथ हमें सुगम और तात्कालिक आनन्ददायिनी जान पड़ीं। विशेषकर चित्रकला, मूर्तिकला के काठिन्य से रहित और रंगों से सजीव होने के कारण अधिक आदृत हो सकी। यह बोधगम्य इतनी अधिक है कि शैशव में कठिन ज्ञान इसके द्वारा सहज हो जाता है।.....प्राचीन काल में इसने मनुष्य के निकट कितना सम्मान पाया, इसका निदर्शन, अजन्ता तथा एलोरा के गह्वरों में अंकित चित्र हैं। पुरातन काल की सभी पौराणिक कथायें चाहे विरही पक्ष से सम्बद्ध रखती हों, चाहे राजा दुष्यन्त से.......बिना इस कला के मानो पूर्ण ही न होती थीं।'[166] महादेवी ने कला और विधान के महत्व की विवेचना करते हुये लिखा है-'विषय पर कोई कला निर्भर नहीं रहती। सच्चे चित्रकार की तूलिका भगवान बुद्ध की चिरशान्त मुद्रा अंकित

करके भी धन्य हो सकती है और कन्धे पर हल लेकर घर लौटने वाले कृषक का चित्र बनाकर भी अमर हो सकती है। कलाकार अमरता का विधायक स्वयं हो सकता है, परन्तु, तभी, जब उसकी कला उसकी अनवरत साधना से तप-तपकर खरा सोना बनकर निकलती है।'[167] ठीक ऐसी ही धारणा निराला ने भी अभिव्यक्त की है-'उक्ति की उच्चता का विचार ही ठीक रहता है कोई ईश्वर पर लिखे या प्रिया पर।'[168] इस प्रकार ये लोग क्रोचे की धारणा के निकट हैं। महादेवी ने ललित कलाओं के तात्विक पक्ष पर 'दीपशिखा' की भूमिका - (चिन्तन के कुछ क्षण)में गम्भीर विचार किया है,जिसके विश्लेषण से यह पता चलता है कि कलाओं के तात्विक पक्ष और सौन्दर्यशास्त्री स्वरूप पर छायावादी कवियों के बीच अधिक जागरूक हैं। उक्त भूमिका में महादेवी ने ललित कलाओं की उत्पत्ति और विकास, ललित और उपयोगी कला का स्वरूप-भेद, विविध ललित कलाओं का बाह्य- पार्थक्य और उनका पारस्परिक तात्विक अन्त:सम्बन्ध - इन सभी सौन्दर्यशास्त्री समस्याओं पर गहन दृष्टि से विचार किया है। [169]

कलाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में महादेवी जी का मत है-'वहिर्जगत् से अन्तर्जगत तक फैले और ज्ञान तथा भाव क्षेत्र में समान रूप से व्याप्त सत्य की सहज अभिव्यक्ति के लिये माध्यम खोजते-खोजते ही मनुष्य ने काव्य और कलाओं का आविष्कार कर लिया होगा। कला सत्य को ज्ञान के सैकत-विस्तार में नहीं गृहण करती है। [170] ललित कला विकास के सम्बन्ध में महादेवी जी की धारणा है कि-'सत्य पर जीवन का सुन्दर ताना- बाना बुनने के लिये कला दृष्टि ने स्थूल-सूक्ष्म सभी विषयों को अपना उपकरण बनाया। वह पाषाण की कठोर स्थूलता से रंग रेखाओं की निश्चित सीमा, उससे ध्वनि की क्षणिक स्थिति और तब शब्द की सूक्ष्म व्यापकता तक पहुँची अथवा किसी और क्रम से यह जान लेना बहुत सहज नहीं है। परन्तु शब्द के विस्तार में कला सृजन को पाषाण की मूर्तिमन्त रंग रेखा की सजीवता, स्वर का माधुर्य-सब कुछ एकत्र कर लेने की सुविधा प्राप्त हो गयी। काव्य में कला का उत्कर्ष एक ऐसे बिन्दु तक पहुँच गया, जहाँ से वह ज्ञान को सहायता दे सका। [171] अत: महादेवी की कविताओं में जहाँ चित्रकला की निकटता का निर्वाह है वहीं मूर्तिकला की ईषत् छाया भी है। [172] पाश्चात्य विद्वानों में सबसे पहले यूनान के दार्शनिक प्लेटो का नाम आता है, जिन्होने कला का वर्गीकरण चिन्तन के पश्चात किया और उन्होने वास्तुकला को ललित कला में स्थान नहीं दिया। [173]

उन्होने काव्य को भी कला के अन्तर्गत रखा है। तथा कला को 'प्रकृति की अनुकृति' कह कर कला के विभाजन की सम्भावना मानी है। इसके उपरान्त उनके शिष्य अरस्तू ने 'भाषण शास्त्र' में

कला के 'उपयोगी' और 'ललित' होने के संकेत दिये हैं। इसके उपरान्त कला के अनेक वर्गीकरण हुये। शिक्षा की दृष्टि से कला को व्यावसायिक कला और उदार कला बताया गया। व्यवसायिक कला के अन्तर्गत रंगाई छपाई बढ़ईगीरी, मिस्त्रीगीरी, सुनारी आदि को सम्मिलित किया गया है तथा उदार कला के अन्तर्गत संगीत, व्याकरण, तर्क, भाषण, आदि माने गये हैं। [174]

कला के सम्बन्ध में चार बातें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं -

(क) सभी कलाओं में कुछ न कुछ सौन्दर्य होता है।

(ख) कला का कोई न कोई मूर्त आधार होता है।

(ग) चक्षुरिंद्रिय और कर्णेन्द्रिय में सौन्दर्य बोध होता है।

(घ) इसमें भौतिक आधार या ज्ञानेंद्रिय मध्यस्थ का काम करते हैं। [175]

इस प्रकार सभी कलाकृतियाँ प्रतीकात्मक होती हैं, तात्पर्य यह है कि सौन्दर्य तत्वों और भावों में छिपा रहता है। जब कलाकृतियों के साथ ज्ञानेन्द्रियों का मेल होता है तो सौन्दर्य दर्शक तथा पाठक के हृदय पर मुखर हो उठता है। अत: इन्द्रियों के द्वारा हृदय में सौन्दर्य की अनुभूति करना ही कला का एक मात्र उद्देश्य है। अनुभूति की यह एकता ही सभी कलाओं को समान स्थान व महत्व प्रदान करती है। इस प्रकार कला का हीगेलीय विभाजन ही श्रेष्ठ व उत्तम कहा जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. भारतीय संस्कृति और साधना, भाग-2, पृष्ठ - 299-300
2. ध्वन्यालोक, पृष्ठ-60, डॉ. बल्देव उपाध्याय द्वारा, 'भारतीय साहित्य शास्त्र' भाग-1, पृष्ठ 224 पर उद्धृत
3. मिड-समर-नाइट्स ड्रीम एक्ट-5, शेक्सपीयर सं. 1,12,17
4. साहित्य सिद्धान्त, डॅा. रामअवध द्विवेद्वी पृष्ठ- 3, 4, 5
5. अभिनव गुप्त, भट्टतौत ने इसे प्रज्ञा नवनवोन्मेष शालिनी कहा है।
6. साहित्य और सौन्दर्य बोध (रवीन्द्र और निराला के सन्दर्भ में) डॉ. राम शंकर द्विवेद्वी, पृष्ठ- 14
7. जिसकी शीतल ज्वाला में जल
   बनी चेतना मेरी निर्मल ॥ -'हिमाद्रि' शीर्षक कविता, पंत।
8. रस सिद्धांत, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ - 93
9. डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा-'क्षण भर के लिये ही सही कला की अनुभूति जीवन के मूल का ऐसा रस रोक करती है कि वह बहुत काल तक हरा भरा रहता है।' रस और रसास्वादन, पृष्ठ- क
10. सौन्दर्य शास्त्र, पृष्ठ-3,निवेदन।
11. विश्व साहित्य, पदुमलाल पन्ना लाल बख्शी, पृष्ठ- 16
12. साहित्य और सौन्दर्य बोध (रवीन्द्र और निराला के सन्दर्भ में) डॉ. रामशंकर द्विवेद्वी, पृष्ठ -21
13. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, जयशंकर प्रसाद, प्रस्तावना से उद्धृत
14. काव्यालोचन में सौन्दर्य दृष्टि, हरद्वारी लाल शर्मा, आमुख
15. काव्यालोचन में सौन्दर्य दृष्टि, डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, आमुख दृष्टि-बिन्दु।
16. काव्यालोचन में सौन्दर्य दृष्टि, डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, आमुख दृष्टि-बिन्दु।
17. प्रत्यमिज्ञाहृदयम् - 1.2
18. कालिदास की लालित्य योजना आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेद्वी, संस्करण 1965, पृष्ठ- 56-57-91
19. साहित्य और सौन्दर्य बोध, डॉ. रामशंकर द्विवेद्वी, पृष्ठ -11
20. सौन्दर्य लहरी -1
21. उत्तर राम चरित- भवभूति
22. रामचरित मानस, बाल काण्ड-30 ख - 2, तुलसीदास
23. काव्यालोचन में सौन्दर्य दृष्टि, डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, प्रस्तावना पेज - 12
24. सौन्दर्य शास्त्र, डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, पृष्ठ- 119
25. काव्यालोचन में सौन्दर्य दृष्टि, डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, आमुख- दृष्टि।
26. नाट्य शास्त्र 16. 122। भरत
27. काव्यालोचन में सौन्दर्य दृष्टि, डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, आमुख-दृष्टि बिन्दु
28. काव्यालोचन में सौन्दर्य दृष्टि, डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, आमुख-दृष्टि-बिन्दु
29. रिफ्लैक्शन ऑन आर्ट, गुन्थर मूलर, पृष्ठ - 203
30. द फौर्मस ऑफ थिंग्स अननोन, हरबर्ट रैड, पृष्ठ - 111
31. मोरफोलॉजिकल पौयटिक, गुंथर मुलर, पृष्ठ - 106
32. काव्यालोचन में सौन्दर्य दृष्टि, डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, पृष्ठ - 9-10
33. भुण्ड कोपनिषद - 3/1/4, कठो. 2/3/2.
34. गीता 15/1, कठो. 2/3/1, गीता शंकर भाष्य, 15/1 की टिप्पणी, सौन्दर्य लहरी 55
35. वेन्दान्त सूत्र, 1/1, वृहदा. 2/4/5 .
36. सौन्दर्य लहरी - 40
37. द डान्स ऑफ शिव, डॉ. आनन्द कुमार स्वामी, पृष्ठ - 59, संस्करण - 1948
38. छायावाद: काव्य तथा दर्शन, डॉ. हरनारायण सिंह, पृष्ठ - 24

39. गीता, 15/7 तथा 10/20
40. चिन्तामणि, भाग 1, काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था, आचार्य शुक्ल पृष्ठ - 162.
41. अभिज्ञान शाकुन्तलम्, कालिदास - 1- 2.
42. स्वेच्छा स्वमित्रों विश्व मुन्मी लयति, प्रत्याभिज्ञा हृदयम्, 1- 2.
43. कालिदास की लालित्य योजना, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेद्वी, पृष्ठ - 51 तथा 68
44. साहित्य और सौन्दर्य बोध। रवीन्द्र और निराला के सन्दर्भ में, डॉ. द्विवेद्वी, पेज-13-14
45. काव्यालोचन में सौन्दर्य दृष्टि, डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, (प्रस्तावना) पृष्ठ -13
46. व. जी. 1/7
47. महिम भट्ट तथा कुन्तक
48. काव्यालंकार, भामह, 2-78
49. वामन
50. आनन्दवर्धन
51. भारतीय सौन्दर्य चिन्तन में साहित्य तत्व, डॉ. भगवतस्वरूप मिश्रा,
पं. जगन्नाथ तिवारी अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ- 262
52. काव्यालोचन में सौन्दर्य दृष्टि, (प्रस्तावना) डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, पृष्ठ - 13
53. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ-159
54. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ-159
55. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ-18-19
56. काव्यालोचन में सौन्दर्य दृष्टि, डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, पृष्ठ - 33
57. तार सप्तक, अज्ञेय, पृष्ठ- 269
58. काव्यालोचन में सौन्दर्य दृष्टि, डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, पृष्ठ - 33
59. काव्यालोचन में सौन्दर्य दृष्टि, डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, पृष्ठ- 67-69
60. कवि कर्म प्रधान के दो पक्ष होते हैं- विभाव पक्ष व भाव पक्ष। कवि एक ओर ऐसी वस्तुओं का चित्रण करता है जो मन में कोई भाव उठाने या उठे हुये भाव को जगाने में समर्थ होती है और दूसरी ओर उन वस्तुओं के अनुरूप भावों के अनेक स्वरूप शब्दों द्वारा व्यक्त करता है।
- भ्रमर गीत सार की भूमिका, आचार्य शुक्ल, पृष्ठ-3
61. शोध प्रबन्ध-आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान का विकास, डॉ. केदार नाथ सिंह,
पृष्ठ - 71-127 (अप्रकाशित)
62. साहित्य और सौन्दर्य बोध (रवीन्द्र और निराला के सन्दर्भ में) डॉ. राम शंकर द्विवेद्वी, पृष्ठ-26
63. सौन्दर्यशास्त्र (कला में सौन्दर्य), डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, पृष्ठ- 126-127
64. कला एवं साहित्य : प्रवृत्ति और परम्परा, प्रो. विश्वनाथ प्रसाद, पृष्ठ-5
65.कला एवं साहित्य : प्रवृत्ति और परम्परा, प्रो. विश्वनाथ प्रसाद, पृष्ठ-6
66. कला एवं साहित्य : प्रवृत्ति और परम्परा, प्रो. विश्वनाथ प्रसाद, पृष्ठ-6
67. कला एवं साहित्य : प्रवृत्ति और परम्परा, प्रो. विश्वनाथ प्रसाद, पृष्ठ-6-7
68. कला एवं साहित्य : प्रवृत्ति और परम्परा, प्रो. विश्वनाथ प्रसाद, पृष्ठ-7
69. कला एवं साहित्य : प्रवृत्ति और परम्परा, प्रो. विश्वनाथ प्रसाद, पृष्ठ-7
70. सौन्दर्य शास्त्र, डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, पृष्ठ - 128-129.
71. दृष्टि और दिशा : साहित्यक निबन्ध, कला, कला के लिये, डॉ. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ - 83
72. ' इन इट्स ओरिजन द मूमेन्ट वाज ए रिवोल्ट अग्रेस्ट नैचुरलिज्म एस बीयिंग टू कन्क्रीट एण्ड अगैंस्ट पारनेशियम एस बीयिंग टू क्लियर कट, एन साइक्लोपडिया ब्रिटेनिका, संस्करण 21, पृष्ठ-301
73. हेरीटेज आव् सिम्बोलिजम सी. एम. बाबरा, (लन्दन 1947), पृष्ठ 3.
74. एक स्थान पर उसने लिखा है-'पॉयट्री हैज नो एण्ड वियॉन्ड इट् सैल्फ....इफ ए पॉयट हैज फॉलौड ए

मोरल एण्ड, ही हैज डिस मिसड हिज पौयटिक फोर्स एण्ड रिजल्ट इज मस्ट लाइकली टूबी बैड।'
75. लिट्रेचर एण्ड साइकोलॉजी, एफ. एल.लूकस, पृष्ठ- 234
76. दृष्टि और दिशा : साहित्यिक निबन्ध, डॉ. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ - 84-85
77. दृष्टि और दिशा : साहित्यिक निबन्ध, डॉ. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ - 85
78. वर्ड्सवर्थ पर लिखे गये एक लेख से उद्धृत।
79. दृष्टि और दिशा : साहित्यिक निबन्ध, डॉ. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ - 85-86
80. द न्यू क्रिटिसिज्म, जे.ई, स्पिगर्न, (1911) पृष्ठ - 3-6
81. दृष्टि और दिशा : साहित्यिक निबन्ध, डॉ. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ- 86
82. आम्सफर्ड लिट्रेचर्स ऑन पोइट्री, ए. सी. ब्रेडले (मैकमिलन) 1950 पृष्ठ- 4-5
83. सौन्दर्य शास्त्र, डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, पृष्ठ- 129.
84. दृष्टि और दिशा : साहित्यक निबन्ध, डॉ. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ - 87
85. निबन्ध सर्जना से उद्धृत
86. निबन्ध प्रतिमा से उद्धृत
87. काव्य में रहस्यवाद, आचार्य शुक्ल, संस्करण प्रथम, पृष्ठ-7-8.
88. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य शुक्ल - संस्करण-2005, पृष्ठ 568
89. साहित्यालोचन, बाबू श्याम सुन्दरदास, संस्करण - 2006 पृष्ठ-72
90. साहित्यालोचन, बाबू श्याम सुन्दरदास, पृष्ठ-74.
91. साहित्य चन्तिन, द्वितीय संस्करण 1951, पृष्ठ 83
92. सिद्धान्त और अध्ययन, बाबू गुलाब राय।
93. द मीनिंग एण्ड परपस् ऑफ आर्ट, होवेल, पृष्ठ- 35
94. साहित्यालोचन, श्यामसुन्दर दास,पृष्ठ-17-18
95. साइक्लॉजी स्टडीज इन रस, पृष्ठ-14 पर उद्धधृत।
96. दृष्टि और दिशा : साहित्यिक निबन्ध, डॉ. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ -75
97. साइक्लॉजी स्टडीज इन रस, पृष्ठ- 15
98. पॉयट्री इज मैट्रिकल कम्पोजीशन (डिक्शनरी)
99. पॉयट्री इज द आर्ट ऑफ अनथिंग प्लेजर विथ ट्रुथ, बाई कॉलिंग इमेजिनेशन टू द हैल्प ऑफ रीजन- 'लाइवूस ऑफ द पॉयट, (मिल्टन)
100. इट्स एसैन्स इज इनवेशन। (वाल्टर)
101. द एण्ड ऑफ राइटिंग इज टू इन्सट्रैक्ट ; द एण्ड ऑफ पॉयट्री इज टू इन्सट्रैक्ट बाइ प्लेजिंग. (प्रिफेस टू शैक्सपियर)
102. (पॉयट्री इज द इसपॉनटेनियस ओवर फ्लो ऑफ पॉवरफ्लो फीलिंग्स...(एण्ड) इमोशन रिकॉल्ड इन ट्रनक्वालिटी।(प्रिफेस टू लिरिकल बैलेड्स)
103. बायोग्राफिया लिट्रेरिया।
104. ए डिफेन्स ऑफ पॉयट्री।
105. व्हाट इज पॉयट्री।
106. दृष्टि और दिशा : साहित्यिक निबन्ध, डॉ. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ - 79
107. दृष्टि और दिशा : साहित्यिक निबन्ध, डॉ. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ - 79.
108. मॉडर्न पैनट्रीज
109. फार्म इज यूनिटी ऑफ मेनीफोल्ड ' द सीन्स ऑफ ब्यूटी, पृष्ठ-59
110. द आर्ट एण्ड द आर्ट्स ऑफ क्रिटिसिज्म, पृष्ठ-123.
111. काव्यालंकार, भामह, 1/16.
112. काव्यादर्श- दण्डी

113. काव्यालंकार सूत्र वृत्ति, 1/1/1
114. काव्य मीमांसा.
115. वक्रोक्ति जीवितम्, 1/7
116. काव्य प्रकाश, 1/4
117. साहित्य दर्पण, 2/1
118. रसगंगाधर
119. दृष्टि और दिशा : साहित्यिक निबन्ध,(काव्य की परिभाषा) डॉ. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ-71
120. सरस्वती कण्ठामरण, 1/2
121. वाग्भट्टालंकार, 1/2
122. चन्द्रलोक, 1/7
123. नाट्यशास्त्र, 6/23
124. औचित्य विचार चर्चा, अनुवादक-मनोहरलाल गौड़।
125. चिन्तामणि 'निबन्ध-कविता क्या है ?' आचार्य शुक्ल
126. दृष्टि और दिशा : साहित्यिक निबन्ध, काव्य की परिभाषा, डॉ. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ - 76
127. व्हाट इज आर्ट, इन पर्सनैलटी से उद्धधृत।
128. दृष्टि और दिशा : साहित्यिक निबन्ध,काव्य की परिभाषा डॉ. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ -76
129. द साइंस आफ एजूकेशन से उद्धधृत।
130. दृष्टि और दिशा : साहित्यिक निबन्ध,काव्य की परिभाषा डॉ. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ -76
131. जीवन और साहित्य निबन्ध से लिया गया है।
132. दृष्टि और दिशा : साहित्यिक निबन्ध,काव्य की परिभाषा डॉ. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ -76
133. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, जयशंकर प्रसाद
134. दृष्टि और दिशा : साहित्यिक निबन्ध,काव्य की परिभाषा डॉ. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ -77
135. साहित्यिक निबन्ध, कलाओं का वर्गीकरण,राजनाथ शर्मा,पृष्ठ - 334
136. साहित्यिक निबन्ध, कलाओं का वर्गीकरण, राजनाथ शर्मा, पृष्ठ-335
137. '.....ऐनी क्लासीफिकेशन फेल्स इन द एण्ड फौर द सिम्पिल रीजन दैट ब्यूटीस आर नॉट थिंग्स एण्ड, देयर फॉर, टू नॉट फॉल इन टू क्लासीफिकेशन ऑफ थिंग्स।'
- ऐस्थेटिक्स जजमेन्ट, डी. डब्लू. प्राल, पृष्ठ- 193.
138. डब्लू विलियम विसडम, लंदन, 1883, पृष्ठ- 185
139. बी. क्रोस, ऐस्थेटिक्स,लंदन 1983- पृष्ठ-114
140. कला सिद्धान्त और परम्परा, कला का वर्गीकरण, डॉ. सरन सुधा, पृष्ठ- 26
141. कला एवं साहित्य : प्रवृत्ति और परम्परा, प्रो. विश्वनाथ प्रसाद, पृष्ठ- 10
142. कला एवं साहित्य : प्रवृत्ति और परम्परा, प्रो. विश्वनाथ प्रसाद, पृष्ठ- 9
143. कला एवं साहित्य : प्रवृत्ति और परम्परा, प्रो. विश्वनाथ प्रसाद, पृष्ठ-9-10
144. कला एवं साहित्य : प्रवृत्ति और परम्परा, प्रो. विश्वनाथ प्रसाद, पृष्ठ- 10
145. साहित्यिक निबन्ध, कलाओं का वर्गीकरण, राजनाथ शर्मा, पृष्ठ - 337
146. साहित्यिक निबन्ध, कलाओं का वर्गीकरण, राजनाथ शर्मा, पृष्ठ - 337
147. सम्मेलन पत्रिका, कला अंक, पृष्ठ - 30
148. सम्मेलन पत्रिका, कला अंक, पृष्ठ - 30
149. सम्मेलन पत्रिका, कला अंक, पृष्ठ - 30
150. सम्मेलन पत्रिका, कला अंक, पृष्ठ - 31
151. सम्मेलन पत्रिका, कला अंक, पृष्ठ - 31
152. साहित्यिक निबन्ध- साहित्य और कला, राजनाथ शर्मा, पृष्ठ - 354

153.साहित्यिक निबन्ध- साहित्य और कला, राजनाथ शर्मा, पृष्ठ - 355
154. साहित्यिक निबन्ध, कलाओं का वर्गीकरण, राजनाथ शर्मा, पृष्ठ-341
155. साहित्यिक निबन्ध, कलाओं का वर्गीकरण, राजनाथ शर्मा, पृष्ठ-341
156. साहित्यिक निबन्ध, कलाओं का वर्गीकरण, राजनाथ शर्मा, पृष्ठ-341
157. साहित्यिक निबन्ध, कलाओं का वर्गीकरण, राजनाथ शर्मा, पृष्ठ-341-2
158. साहित्यिक निबन्ध, कलाओं का वर्गीकरण, राजनाथ शर्मा, पृष्ठ-342
159. साहित्यिक निबन्ध, कलाओं का वर्गीकरण, राजनाथ शर्मा, पृष्ठ-342
160. 'स्कन्द गुप्त-विक्रमादित्य' प्रसाद, भारत-भारती भण्डार, प्रयाग, दसवाँ संस्करण, प्रथम अंक, पृष्ठ 21
161. *ललित कलाओं से धरती का रूप बने मनुजोचित,*
शोभा के सृष्टा हों जन, जीवन के शिल्पी जीवित।
भावी स्वप्न दृगों में उर में हो सौन्दर्य अपरिमित,
काव्य चित्र संगीत नृत्य से जन जीवन सुख स्पन्दित।
-पन्त,'स्वर्णकिरण, भारत-भारती भण्डार, इलाहाबाद, प्रथम सं., पृष्ठ. 19
162. ज्योत्सना, भारत-भारती भण्डार, इलाहाबाद द्वितीय संस्करण, पृष्ठ- 50
163. ज्योत्सना, भारत-भारती भण्डार, इलाहाबाद द्वितीय संस्करण, पृष्ठ- 83
164. ज्योत्सना, भारत-भारती भण्डार, इलाहाबाद द्वितीय संस्करण, पृष्ठ- 84
165. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, भारत-भारती भण्डार, प्रयाग, संवत्- 2009 अपनी बात, पृष्ठ- 12-13.
166.'क्षणदा', महादेवी वर्मा, भारत-भारती भण्डार, इलाहाबाद संवत् 2013, पृष्ठ- 51-52
167. 'क्षणदा', महादेवी वर्मा, भारत-भारती भण्डार, इलाहाबाद संवत् 2013, पृष्ठ- 55
168. प्रबन्ध-प्रतिमा, निराला भारत-भारती भण्डार, इलाहाबाद 1940, पृष्ठ 279.
169. छायावाद का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन, कुमार विमल, पृष्ठ-22.
170. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, भारत-भारती भण्डार इलाहाबाद, संवत्- 2011,पृष्ठ - 4
171. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, भारत-भारती भण्डार इलाहाबाद, संवत्- 2011,पृष्ठ -7-8.
172. छायावाद का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन, कुमार विमल, पृष्ठ-24
173. वर्ल्डइन डिक्शनरी ऑफ फिलॉसोफी ऐण्ड साइकलॉजी पृष्ठ- 186.
174. कला सिद्धांत और परम्परा : कला का वर्गीकरण, डॉ. सुधा सरन पृष्ठ- 26.
175. कला एवं साहित्य : प्रवृत्ति और परम्परा, प्रो. विश्वनाथ प्रसाद पृष्ठ - 12.

पंचम परिच्छेद

सौन्दर्यानुभूति

पंचम परिच्छेद

सौन्दर्यानुभूति

सौन्दर्यानुभूति का अर्थः- सौन्दर्यानुभूति वास्तव में है क्या ? अगर स्पष्ट किया जाये तो यह एक विलक्षण आनन्द की अनुभूति है, जिसे व्यक्त तो नहीं किया जा सकता, हाँ ! अनुभव अवश्य किया जा सकता है। इस सहज सरल सौन्दर्य का अनुभव वह व्यक्ति या पाठक ही कर सकता है जिसने सौन्दर्य की गंगोत्री में अवगाहन किया हो।

सौन्दर्यानुभूति सौन्दर्य का वह हल है, वह तल है जिसके नीचे आनन्द, उल्लास, शोभा तथा उमंग का अनन्त स्त्रोत है।

कवि की चेतना शक्ति इन्हीं की रंगीनियों के गहरे रंगो को साथ लेकर प्रकट होती है और दीपावली की दीप पँक्तियों के सदृश्य सदैव दमकती रहती है।

अतः सौन्दर्यानुभूति वह मंगलमयी अनुभूति है , जिसकी संकल्पना कवि हृदय से सदैव उभरती रहती है।

शिवबालक राय ने 'काव्य में सौन्दर्य और उदात्त तत्व की भूमिका ' में सौन्दर्यानुभूति की व्याख्या करते हुये कहा हैं कि- 'सराहना सौन्दर्यानुभूति का बीज मंत्र है, विस्मयाविष्टता औदात्य के अनुभव की सराहना आनुकूल्य की पोष्यपुत्री है और विस्मय अनुकूल-प्रतिकूल दोनों का पोष्य पुत्र। अनुकूलता में मृदुता का निवास होता है और मृदुता में सुखानुभव का। अतः सौन्दर्य की अनुभूति सुखकर होती है, यों कहना ठीक होगा- सुखकर ही होती है। स्वाभाविक है कि ऐसी वस्तु जिसे हम सुन्दर कहते हैं स्वपक्षीय और प्रति-उत्पादक हो जाती है प्रतिपक्ष और अप्रीति का सत्कार वहाँ नहीं होता। दुखाभाव की स्थिति में मृदुलता का घनीभूत सुख आत्मपक्षीय होने से इतना तरल हो उठता है कि उसमें अनुभवीयता की आत्मा ही भीग उठती है। सुख आत्मानंद का रूप धारण कर लेता है और यहीं आकर सौन्दर्यानुभूति तथा रसानुभूति एक हो जाती है।'[1]

तात्पर्य यह है कि सौन्दर्यानुभूति में प्रभाव की प्रथा,संध्या की लालिमा, ज्योत्सना की ज्योति तथा संगीत का मार्दव जैसी विभूतियाँ समायी है जिसके अनावृत सौन्दर्य की ओर हम सहज ही आकृष्ट हो जाते हैं जो हमें सौन्दर्य की सहज अनुभूति कराती है।

सौन्दर्य का निवास सर्वत्र है- जड़, चेतन, प्रकृति एवं मानव में। हवा-पानी के प्रवाह से कटे

हुये पत्थर के टुकड़े अपने सौन्दर्य से शिक्षितों को भी मोह लेते हैं। प्रकृति तो सुन्दरता की खान है। उसका रंग-रूप, क्रिया-व्यापार सभी कुछ चेतन जगत् को आनन्द रस से निमग्न कर देता है।[2]

सौन्दर्य बहुत कुछ व्यक्ति की मानसिक स्थिति पर निर्भर करता है। सौन्दर्य अपना प्रभाव उन्हीं प्राणियों पर डालने में सफल होता है जो शांत सुखी तथा मानसिक रूप से संतुलित हों। इसके विपरीत स्वभाव का व्यक्ति सौन्दर्य को न देख पाता है न भोग पाता है। -'सौन्दर्य के अनुभव के लिये हम संवेदनशील हों। संवेदना के अभाव में सौन्दर्य की ओर बढ़ा नहीं जा सकता। हमारी सभी ज्ञानेन्द्रियाँ हमें संवेदनशील बनाती हैं।'[3]

वास्तव में-'कलाकार का सौन्दर्य बोध माध्यम में अभिव्यक्त होता है। माध्यम में ही कलाकार की भावना रूप धारण करती है। साहित्य के सन्दर्भ में शाब्दिक रूप में कल्पना लोक का सौन्दर्य-बोध साकार होता है।[4] माध्यम पर अधिकार और उसे आवश्यकतानुसार ढालने की शक्ति के बिना कलाकार अपनी रचना में सफल नहीं होता।

जिस किसी वस्तु से मानव मन में सुखद अनुभूति होती है उसको हम सुन्दर कहते हैं। जैसे-नई कोपलें, प्रात: कालीन सुषमा, निरभ्र आकाश की नीलिमा, रक्ताभ कमल आदि वस्तुयें मनुष्य के लिये सुन्दर हैं क्योंकि ये सब वस्तुयें मनुष्य के मन में सुखद अनुभूति उत्पन करती हैं। सामान्यत: इसी सुखद अनुभूति को सौन्दर्यानुभूति कहा जाता है। 'सौन्दर्यानुभूति के स्वरूप विशेषण में भाव, कल्पना, बुद्धि तत्व तथा ऐन्द्रिय संवेदन का संयोग ही प्रमुख है। परिणति में समीकृत तथा अखण्ड होने पर भी, प्रक्रिया की अवस्था में यह मिश्र अनुभूति है- अर्थात् इसका निर्माण विविध प्रकार के संवेदनाओं द्वारा होता है।'[5]

'आश्रय की संवेदनशीलता-सौन्दर्यानुभूति आश्रय के आधार से निर्धारित होती है। यदि अनुभूति का आश्रय संवेदनशील एवं भावनाशील नहीं है तो वस्तु रूप सौन्दर्य के बोध में बाधा उत्पन्न करेगी। अत: सौन्दर्यानुभूति की प्राथमिक आवश्यकता आश्रय में सौन्दर्याभिरुचि और संवेदनशील आत्मा है। उदात्त आत्मा के बिना केवल अभिरुचि व्यक्ति को सौन्दर्य की ओर उन्मुख नहीं करती।'[6] 'प्रकृति के सौन्दर्य में सद्य: अभिरुचि (उसको परखने में स्वाद मात्र नहीं) सदैव उदात्त आत्मा का लक्षण है।'[7]

आश्रय का व्यक्तित्व भी सौन्दर्यानुभूति के स्वरूप को निर्धारित करता है। बाह्य व्यक्तित्व प्रधान आश्रय की दृष्टि वस्तु के बाह्य सौन्दर्य तक ही सीमित रहती है जबकि अंतर्मुखी व्यक्तित्व प्रधान आश्रय की दृष्टि वस्तु के आन्तरिक सौन्दर्य का उद्घाटन करने में सक्षम होती है। आश्रय की

मानसिक स्थिति प्रकृति, संस्कार, शिक्षा, आदि भी सौन्दर्यानुभूति को निर्धारित करते हैं। इस प्रकार अर्जित शिक्षा व संस्कार के आधार पर ही सौन्दर्य का विकास होता है।

सौन्दर्यानुभूति का सम्बन्ध आश्रय की मन:दृष्टि काम भावना से है। अपने उदात्त रूप में यह काम श्रेय और प्रेय दोनों है। निम्न प्रकृति में यही काम वासना का रूप ग्रहण कर लेता है। वस्तुत: रूप के बाह्य एवं आन्तरिक सौन्दर्य के प्रति, आकर्षण के मूल में प्रधानत: काम का उदात्त रूप ही है अत: काम सौन्दर्यानुभूति का आधार भी है। यह काम रूप के प्रति आकर्षण उत्पन्न कर प्रेम को जगाता है।[8] सौन्दर्य पर दृष्टि रखने से प्रतीत होता है कि -'सौन्दर्य काम का उत्पादक है। सौन्दर्य के प्राथमिक आकर्षण के बाद ही प्रेम का विकास होता है।'[9]

सौन्दर्यानुभूति का सम्बन्ध मात्र प्रेम से है, वासना से नहीं। प्रेम की अनुभूति में आलम्बन का सौन्दर्य कुछ अलग ही रंग का हो जाता है। प्रेम में सौन्दर्य के ऐसे नये-नये चित्र दिखाई देते हैं जो उसके अभाव में कभी अनुभूति नहीं हो सकते। 'प्रेम की प्राप्ति से दृष्टि आनन्दमयी और निर्मल हो जाती है, जो बातें पहले नहीं सूझती थी, वे सूझने लगती हैं चारों ओर सौन्दर्य का विकास दिखाई देने लगता है।'[10]

सौन्दर्यानुभूति रूप या बिम्ब की शुद्ध मानसिक अनुभूति है। रसानुभूति रूप की अनुभूति के साथ उत्पन्न भावनाओं की संवेद्य अनुसांगिक अनुभूति की सम्मिलित व्यवस्था है। दोनों का अपना-अपना महत्व है और पूरक रूप में दोनों मिलकर अनुभूति को पूर्णता प्रदान करते हैं। भाव से निरपेक्ष रूप का अस्तित्व और उसकी अनुभूति सदा सम्भव नहीं है। भाव की अनुभूति सदैव संवेगात्मक और लौकिक नहीं होती। कल्पना के धरातल पर भाव और कर्म, रूप की तरह संवेद्य हो जाते हैं। साहित्य के क्षेत्र में भी जीवन-सापेक्ष्य वर्ण्य से बिम्बात्मक रूप निरपेक्ष होकर स्वतन्त्र अनुभूति का विषय नहीं हो सकता। कला में जब वर्ण्य और रूप अभिन्न हैं, रूपाश्रित सौन्दर्यानुभूति और भावाश्रित रसानुभूति का संयोग भी अनिवार्य है। वर्ण्य को संवेद्य बनाने वाले मूल्यों में सौन्दर्य भी एक है। इस तरह भावाश्रित रसानुभूति को सौन्दर्य का आंशिक आधार ही मिल जाता है। रसवादी आधुनिक व्याख्याता आचार्य मिश्र ने सौन्दर्य को बाह्य रूप की विशेषता मानकर उसे रस में निम्न स्थान देने का प्रयास किया है।[11] दूसरी ओर रमणीयता को महत्व देने वाले पंडितराज जगन्नाथ ने सौन्दर्य को रस से कुछ ऊपर रखा है।[12] इस प्रकार सौन्दर्य रचना का धर्म है, कला की प्रकृति का द्योतक है और रस भाव क्षेत्र को मिला कर उसकी अनुभूति की व्यापकता का निरूपक।[13]

सौन्दर्यानुभूति की महत्वपूर्ण विशेषता उसकी रहस्यमयता है। सौन्दर्य का आलोक ही उसे रहस्यमय बना देता है। सौन्दर्यानुभूति में समीपता और दूरी का सन्तुलन आवश्यक है। भली भाँति देख पाने की दृष्टि से समीपता आवश्यक है तो सौन्दर्य की रहस्यात्मकता के समाप्त हो जाने की आशंका भी है। दूर स्थित दृश्य जितने चित्ताकर्षक होते हैं; समीप की वस्तु उतनी नहीं। सौन्दर्य सुनिश्चित और सीमित रूप की विशेषता है जबकि उदात्त की अनुभूति असीम रूप को लेकर है। असीम होने पर भी वस्तु में रूप की समग्रता का भाव अंतर्निहित अवश्य रहता है। असीम में ही रूप सौन्दर्य की आदर्श पूर्णता है। उसका रहस्यमय होना स्वाभाविक है। उदात्त वस्तु की रहस्यमयता वस्तुनिष्ठ है जबकि सुन्दर वस्तु की रहस्यमयता अनुभूति की विशेषता है। जब नेत्र और बुद्धि सौन्दर्य का सम्प्रेषण नहीं कर पाते तब वह रहस्यमय बन जाता है।[14] सौन्दर्य, वस्तु के रूप से सीमित होने पर भी रूप से छलकता हुआ अनंत और असीम लगता है-

> माना कि रूप सीमा है।
> सुन्दर, तब चिर यौवन में
> पर समा गये थे, मेरे
> मन के निस्सीम गगन, में।[15]

विरह में दर्शन की उत्कट लालसा का भी यही रहस्य है-

> ज्यों-ज्यों बसे जात, दूरि-दूरि प्रिय प्रान भूरि
> त्यों-त्यों धँसे जात मन-मुकुर हमारे में।[16]

सौन्दर्य के आकर्षण की अनुभूति में मनोवैज्ञानिक अंतर या दूरी की आवश्यकता है। यही अतीत का आकर्षण है, सौन्दर्य की रहस्यमयता है।

सौन्दर्य की अनुभूति के रहस्यमय न होने पर नित्य नूतनता की सम्भावना ही नहीं रह जाती। इसी कारण साहित्यकार अपनी अभिव्यक्ति में अनेक अर्थो और भावों की प्रतीत की सम्भावनाओं को भर देता है। या यों कहें कि साहित्यकार की रूप-कल्पना में नवीन व्याख्याओं की गुंजाइश रहती है और तभी वह क्लासिकल या श्रेष्ठ साहित्य बन कर सभी युगों में सम्मान प्राप्त करता है।

इसी रहस्यमयता के कारण भारतीय और पाश्चात्य मनीषी सौन्दर्यानुभूति को अद्भुत और अलौकिक वस्तु मानते हैं। इसमें व्यक्ति अपने अन्तर्मुखी मन के साथ जुड़ा रहता है उसकी यह दशा समाधि सी रहती है।

काव्य में जिस सौन्दर्य की अभिव्यक्ति होती है उसका सीधा सम्बन्ध मानव मन की भावात्मक

वृत्तियों से है। मानव हृदय का समस्त भाव-जगत काव्यानुभूति के अन्तर्गत आता है। अत: काव्य समीक्षक काव्य के विवेचन में जहाँ अभिव्यक्ति के सौन्दर्य की व्याख्या करते हैं वहाँ से कवि की भावानुभूति के सौन्दर्य का भी उद्घाटन करते हैं। भारतीय साहित्यशास्त्र में रसानुभूति काव्य सौन्दर्य का प्रमुख और आन्तरिक अंग है। जहाँ भाव रस की कोटि तक नहीं पहुँचते वहाँ केवल भावाभिव्यक्ति का भी अपना एक सौन्दर्य होता है। इसीलिये रस सिद्धान्त में भावाभास, भावसबलता, भावोदय, भावशान्ति आदि का विधान है। कवि की दृष्टि से भावानुभूति का काव्य में अत्यधिक महत्व है। अभिव्यक्ति में जो सजीवता एवं मानसिकता का सौन्दर्य उत्पन्न होता है वह कवि की भावानुभूति के कारण। जितनी तीव्र अनुभूति होगी अभिव्यक्ति उतनी ही सहज एवं सशक्त होगी।[17] अत: काव्य सौन्दर्य के अतिरिक्त तत्वों में भावानुभूति का विशिष्ट स्थान है।

सौन्दर्यानुभूति बिम्बात्मक होती है। बाह्य सौन्दर्य अपनी कल्पना के द्वारा मानस-पटल पर बिम्ब (चित्र) रूप में अंकित होती है। यही बिम्ब ही कवि के हृदय में छिपे सौन्दर्य भावों को जागृत कर उद्वेलित करता है तथा पुन: जागृत भाव कल्पना को तीव्र कर नवीन बिम्बों को जन्म देता है। इस प्रकार सौन्दर्यानुभूति अन्योन्याश्रित है।

कवि और भावक के अनुभूतिमय तारतम्य साहित्य शास्त्र के लिये बहुत महत्वपूर्ण हैं। गायक की सफलता उसके गीत की वह सामान्यता है जिसकी भाव तीव्रता में श्रोता या पाठक अपने सुख-दु:ख की ध्वनि सुनता है। इस सम्बन्ध में महादेवी जी ने ठीक ही कहा है- 'सफल गायक वही है, जिसके गीत में सामान्यता हो, अर्थात् जिसकी भावतीव्रता में दूसरों को अपने सुख-दु:ख की प्रतिध्वनि सुनाई पड़े। और तब यह स्वत: सम्भव है जब गायक अपने सुखों-दु:खों की गहराई में डूबकर या दूसरे के उल्लास-विषाद से सच्चा तादात्म्य कर गाता है वही तादात्म्य रसानुभूति को प्राप्त होता है।[18]

सौन्दर्य की वास्तविक जन्मभूमि वस्तु और व्यक्ति का सम्बन्ध ही है। जब किसी वस्तु को सुन्दर कहा जाता है तब उस दर्शक और वस्तु के मध्य के सम्बन्ध को ही व्यक्त किया जाता है। इस प्रकार सुन्दर वस्तु, व्यक्ति, दृश्य आदि के प्रति द्रष्टा के रागात्मक सम्बन्ध को ही प्रेम कहते हैं जो अपनी सघनता और तीव्रता के लिये द्रष्टा की सहृदयता और द्रष्टव्य वस्तु या व्यक्ति आदि में स्थित सौन्दर्य तत्वों पर निर्भर करता है। अतएव प्रेम वह संयोगात्मक प्रवृति है जो ऐसे पदार्थो को खींचने (या उस तक उहुँचाने) का प्रयत्न करती है। जिसे सुन्दर तथा अन्य किसी रूप में मूल्यवान समझा जाता है।[19]

इस प्रकार सौन्दर्य आलम्बन है और प्रेम आश्रय। प्रेम द्रष्टा की रागात्मक प्रवृत्ति है, तो सौन्दर्य मूलतः दृश्य वस्तु या व्यक्ति का स्थूल और सूक्ष्म अथवा शारीरिक अथवा आन्तरिक गुण। वास्तव में दोनों अपनी सार्थकता के लिये एक दूसरे पर पूर्णतया आश्रित हैं। प्रेम सौन्दर्य से ही जीवन रस ग्रहण कर सौन्दर्य में ही पर्यवसित होता है, क्योंकि प्रेम स्वयं भी आन्तरिक सौन्दर्य का निदर्शक है। वह आलम्बन की सीमाओं का अतिक्रमण करके अपनी असीमता से उसे भी असीम बना देता है। कहने का आश्य यह है कि जब सात्विक प्रेम सूक्ष्म और असीम होता है तब आन्तरिक सौन्दर्य भी सूक्ष्म और असीम बन जाता है। प्रेम से ही सर्वत्र सौन्दर्य का पूर्ण विकास दिखाई पड़ता है।[20] इसलिये जहाँ प्रेम है वहीं सौन्दर्य।

यह अक्षरशः सत्य है कि कवि एक संवेदनशील प्राणी होता है। बाह्य जगत् के साथ-साथ उसके पास एक अन्तर्जगत भी होता है तथा इन दोनों का विकास एक-दूसरे पर ही आश्रित है। इसलिये कवि न केवल बाह्य वस्तुओं के सौन्दर्य को देखकर प्रभावित होता है बल्कि वह अपने अन्तःजगत् की सौन्दर्य चेतना के आधार पर वस्तु के आन्तरिक सौन्दर्य की भी अनुभूति करता है। इस प्रकार कलाकार अपने बौद्धिक और भौतिक सत्यों को भाव-सत्य में रंगकर मनोरम बना देता है। वास्तव में मनुष्य के मन का यह रागात्मक प्रसार ही काव्य-साधना का इष्ट है। अतः सुन्दर वस्तुओं के प्रति अन्तर्जगत का यह प्राकृतिक आकर्षण ही सौन्दर्य प्रेम की भावना है। काव्य में यह सौन्दर्य प्रेम की भावना आलम्बन भेद से अनेक रूपों में व्यक्त होती है।

निष्कर्ष रूप में सौन्दर्यानुभूति को स्पष्ट करते हुये मैं कह सकती हूँ कि किसी भी वस्तु में जो आत्मनिष्ठता व आत्मपरकता होती है वह कलाकार के व्यक्तिगत सुख-दुःख की तीव्र अनुभूति होते हुये भी सबकी सामान्य अनुभूति होती है। तभी भावक कलाकार की अनुभूति के साथ तादात्मय स्थापित कर पाता है। इस तादात्म्य के कारण ही वह अनुभूति सौन्दर्यानुभूति बन पाती है।

सौन्दर्यानुभूति से सम्बधित प्राचीन कथायें- भारतीय चिन्तन की रूपक पद्धति एक विशिष्ट पद्धति है। यद्यपि एक तरफ इस पद्धति के द्वारा पुरुष और उसकी शक्तियों को स्पष्ट किया जाता है तो दूसरी ओर काव्य के विभिन्न अंगों का भी वर्णन अनेक रूपकों के द्वारा व्यक्त होता है। इन्हीं कारणों से काव्य के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिये अनेक रूपकों की रचना हुई। ऋग्वेद ने वृषभ के रूपक से, गीत-गोविन्दकार जयदेव ने लता के रूपक से, अभिनव गुप्त ने प्रसाद से, तथा काव्यादर्श प्रतिष्ठापक दंडी तथा गद्य स्वरूप संस्थापक बाण भट्ट ने 'सागर' के रूपक से

काव्य को विश्लेषित किया है। कश्मीर के प्रसिद्ध मनीषी कवि राज शेखर ने काव्य को 'पुरुष' के रूप में चित्रण कर इस परम्परा को आगे बढ़ाया।

जयदेव ने लता रूपक के द्वारा काव्य का जो वर्णन किया है वह निम्न प्रकार है-

शरीर	- लता	- कविता
उत्पत्ति स्थान	- भूमि	- मानस
कारण	- बीज	-सरस्वती पादपद्म-पराग-कणिका
कार्य	- किसलय	- सूक्त (काव्य)
कर्त्ता	- मेघ	- कवि [21]

अभिनव गुप्त ने 'प्रासाद' रूपक के द्वारा काव्य को स्पष्ट करते हुये लिखा है-

भूमि - शब्द: छन्दोविधि

भित्ति - लक्षण

चित्रकर्म -अलंकार

गवाक्ष -गुणयोजना। [22]

दण्डी ने काव्य को सागर मानते हुये इसको पार करने के लिये छन्द विद्या रूपी नौका को माध्यम माना है। [23] कालिदास ने सूर्य-वंश-वर्णन को सागर-तरण के समान दुष्कर कहा है। जिन सेन का भी कथन है कि एक महान विषय पर काव्य रचना करना भी तरंगोन्मत्त: काव्य-परिधि का उल्लंघन करने समान है [24] वाणभट्ट ने अपनी आरव्यायिका को समुद्र के सदृश्य बताया है : जिह्वा ही वह नौका है जो पार लगा सकती है। कुछ आचार्यों ने काव्य को दर्पण के समान बताया है तो कुछ ने कविता-कामिनी कह कर पुकारा है। इस सबसे विपरीत काव्य रूपक परम्परा में 'काव्य-पुरुष' का ही वर्णन विशद और श्रेष्ठ है।

काव्य पुरुष रूपक को पूर्ण विस्तार देने का श्रेय राजशेखर को है। [25] इस रूपक में काव्य और छन्दोमयी वाणी की उत्पत्ति कथा है और इसमें शुक्राचार्य, बाल्मीकि, वेदव्यास को कवित्व प्राप्ति के प्रसंग भी। [26] काव्य पुरुष का वास्तविक नाम 'सारस्वतेय' है। काव्य पुरुष और सारस्वतेय दोनों ही समान रूप से इस प्रसंग में व्यवहृत हैं। [27] सारस्वतेय ही लाक्षणिक रूप से काव्य पुरुष हैं। [28] राजशेखर के अनुसार काव्य-पुरुष ब्रह्म का एक रूप है। काव्य पुरुष कल्पना का एक बीज है। इस रूपक की व्यवस्थित योजना निम्न प्रकार है -

वैदिक साहित्य में पुरुष शब्द अधिकत: परमेश्वर के लिये वर्णित है। पुराण में भी परामात्मा को

पुरुष कहा गया है। इस प्रकार 'पुरुष' की परिभाषा आध्यात्मिक होती गई। वेदों में वेदात्मा, वेदशिरम् वेदशरीर, वेद-पुरुष विराट पुरुष जैसे शब्द प्रयुक्त हुये हैं। शायद इन्हीं शब्दों से प्रेरित हो कर राजशेखर ने 'काव्यपुरुष' की रचना की। पुरुष सूक्त में भी पुरुष के विविध अंगों का वर्णन प्राप्त होता है। 'चत्वारिश्शृंगा' 'विराजो अधि पुरुष:' एवं 'पुरुष एवेद सर्वम' आदि मंत्रों को काव्य पुरुष की कल्पना का प्राण माना जा सकता है।[29] विराट पुरुष की स्तुति में ब्रह्माण्ड को 'पुरुष की देह' माना गया है।[30]

पाणिनीय शिक्षा में पुरुष सूक्त से अधिक स्पष्ट रूपक मिलता है-

छन्दः पादौ तु वेदास्य हस्तौ कल्पोडथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोतमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् आगङमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥[31]

प्रस्तुत छन्द में 'पुरुष' शब्द का तो प्रयोग नहीं किया गया है परन्तु वेद को पुरुष के रूप में अवश्य ही व्यक्त किया गया है। वेद वांङ्मय है और नाट्य भी पंचम वेद है। अत: केवल 'काव्य-पुरुष' कहना शेष रह जाता है, और राजशेखर ने 'वेद-पुरुष' को ही 'काव्य-पुरुष' कह दिया। इस प्रकार काव्य पुरुष की प्रेरणा राजशेखर को वेदों से प्राप्त हुयी।

राजशेखर ने ऋग्वेद की निम्न ऋचा उद्धृत की है-

'चत्वारिश्रृंगङस्त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽस्य।
त्रिधाबद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्या आविवेश॥[32]

टीकाकारों ने इस मंत्र के अनेक अर्थ किये हैं।[33] कुमारिल भट्ट ने इसमें सूर्य की स्तुति मानी है।[34] सायण ने इसका यज्ञपरक और सूर्यपरक अर्थ प्रस्तुत किया है।[35] भरत नाट्य शास्त्र में भरत ने रूपक को इस प्रकार स्पष्ट किया है:-

'सप्त स्वरा: त्रीणि स्थानानि (कंठ-हृदय-मूर्धा) चत्वारों वर्णा: द्विविधाकाकु: षड्लंकङारा : षडगङानि।[36] इस प्रकार राजशेखर के पूर्व से ही रूपक-पद्धति की ये परम्परा चली आ रही है।

बृहस्पति ने शिष्यों के आग्रह पर काव्य-पुरुष के जन्म की कथा कुछ इस प्रकार सुनाई - हिमालय पर पुत्र कामना से सरस्वती ने तपस्या की। विधाता ने वरदान दिया- 'पुत्रं ते सृजामि' पुत्र की प्राप्ति हुयी। नवजात शिशु ने माता का चरण स्पर्श किया, साथ ही एक प्रौढ़ पुरुष की भांति छन्दोमयी वाणी में कहा- मात: ! यह जो समस्त वाङ्मय अर्थ के रूप में प्रतिभासित हो रहा है मैं

वही काव्य पुरुष, तुम्हारे चरणों की वन्दना करता हूँ।'[37]

इस प्रकार राजशेखर ने काव्य-पुरुष की उत्पत्ति दिव्य कही है। उसकी सृष्टि स्वयंभू ब्रह्मा से हुयी है। राजशेखर के अनुसार ऋग्वेद भी काव्य है और यों ऋग्वेद ने स्वयं को काव्य कहा है।[38]

सरस्वती ने पुत्र की वन्दना सुनकर कहा-वत्स! तुम छन्दमयी वाणी के प्रणेता हो। तुमने अपनी वाङ्गमय माता (मुझे) को जीत लिया है। पुत्र से पराजित होना द्वितीय पुत्र के जन्म के समान महोत्सव होता है। पूर्व विद्वान गद्य से ही अवगत थे। पद्य उनके निकट अप्रकट था। तुम्हारे द्वारा छन्दोमयी वाणी का प्रवर्तन होगा। तुम प्रशंसनीय हो।[39]

इस प्रकार छन्दोमयी वाणी के जन्म और उसमें ब्रह्मा की प्रेरणा की बात कही गई है। महाभारत में भी दो संकेत कथायें प्राप्त होती हैं। प्रथम इस प्रकार है :- ब्रह्मा ने सरस्वती से एक पुत्र प्राप्त किया, और उसे उन्होंने वेदाध्ययन तथा वेद प्रचार में तत्पर किया।[40] दूसरी कथा कुछ इस प्रकार है :- 'ऋषि दधीचि का एक पुत्र हुआ। वह सरस्वती नदी में मिला। सरस्वती ने उसे दधीचि के आश्रम में छोड़ दिया। उसने वहाँ वेदाध्ययन किया। जब वेद-विद्या लुप्त होने लगी तब सारस्वतेय ने पुन: वेदाध्ययन की प्रतिष्ठा की।'[41] इस प्रकार ब्रह्मा ने ही वाणी का प्रवर्तन किया।

वायु पुराण में इस कथा का भिन्न रूप है - 'ब्रह्मा के अग्नि से उत्पन्न पुत्र कवि (भृगु) का पौलौभी से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसका नाम च्यवन था। च्यवन की पत्नी सुकन्या ने दो पुत्रों को जन्म दिया दधीचि और आत्मवान्। दधीचि ने सरस्वती से विवाह करके एक पुत्र प्राप्त किया। यही सारस्वत था। सारस्वत ने समस्त शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया।'[42]

वायु पुराण में एक और कथा है-'शुक्राचार्य ने अपनी तपस्या से शंकर को प्रसन्न किया। उन्होने कहा :- तुम अपने ज्ञान और पराक्रम से देवताओं को पराजित करो। शुक्राचार्य को भृगुनंदन कहा गया है।'[43]

इस प्रकार महाभारत और वायु पुराण दोनों में ही सारस्वतेय दधीचि का पुत्र है। किन्तु महाभारत की अन्य कथाओं में वह ब्रह्मा पुत्र है। राजशेखर का काव्य पुरुष भी ब्रह्मा पुत्र है। राजशेखर से पूर्व भरत ने भी नाट्य की उत्पत्ति ब्रह्मा से मानी है। पर भरत के ब्रह्मा का अभिनवगुप्त ने 'कवि' अर्थ किया है।[44]

नाट्य शास्त्र के एक और प्रसंग में सरस्वती ने 'नाट्य' को 'श्रोव्य' होने का वरदान दिया।[45] अश्वघोष ने आंगिरस, सरस्वती पुत्र सारस्वत का उल्लेख किया है। इसने विनष्ट वेद-विद्या का फिर से प्रचार-प्रसार किया है।[46]

छन्दोमयी वाणी और सरस्वती के वरदान के भी संकेत मिलते हैं। रामायण में इसका उल्लेख है। उत्तर रामचरित में भवभूति ने इस प्रसंग में सर्वप्रथम काव्य में छन्द प्रयोग की घटना पर बल दिया है। क्रौंच घटना से बाल्मीकि के मुख से सर्वप्रथम छन्दमयी वाणी का जन्म हुआ।[47] तत्पश्चात् ब्रह्मा जी ने उन्हें अपने वरदान के साथ रामायण लिखने का आदेश दिया, तब बाल्मीकि ने ब्रह्मा जी के वरदान से प्रेरित होकर रामायण की रचना की।[48]

जिस प्रकार भवभूति ने छन्दोमयी वाणी का प्रवर्तक बाल्मीकि को माना है। उसी प्रकार राजशेखर ने काव्य-पुरुष को प्रथम कवि के रूप में स्वीकार किया है।

काव्य-पुरुष के अंगों पर विचार करते हुये राजशेखर ने उसके अंगों क निरूपण इस प्रकार किया है -:

1. शरीर - शब्दार्थ
2. मुख - संस्कृत
3. बाहु - प्राकृत
4. जघन - अपभ्रंश
5. चरण - पैशाच
6. हृदय - मिश्र (अनेक भाषाओं का मिश्रण)
7. गुण - गुण
8. वाणी - उक्ति
9. आत्मा - रस
10. रोमावली - छन्द समूह
11. वाक्क्रीडा - प्रश्नोत्तर पद्धति
12. अलंकरण - अलंकार
13. वेषविन्यास - प्रवृत्ति
14. विलास विन्यास - वृत्ति
15. वचन-विन्यास - रीति

राजशेखर की इस कल्पना का स्त्रोत वायु-पुराण को माना जा सकता है।[49] वायु पुराण के सप्तम् और अष्टम् अध्यायों में प्रकृति पुरुष, ऋग्वेद के पुरुष सूक्त, प्रजापति पुरुष, महापुरुष, आदि पुरुष की रूपात्मक चर्चा मिलती है।[50] साहित्य शास्त्रीय परम्परा में काव्य शरीर सम्बन्धी

और भी संकेत प्राप्त होते हैं - भरत ने इतिवृत और वाक् को शरीर कहा है। वामन और भामह के शब्दार्थो औद दण्डी आदि की पदावली में वाक् का ही समावेश है , पर उन्होने इतिवृत्त की चर्चा नहीं की। रुद्रट ने इतिवृत्त को पञ्जर कहा है वामन के टीकाकार गोपेन्द्र त्रिपुरहर भूपाल ने वस्तु (इतिवृत्त) को शिरनाम से अभिहित किया है। राजशेखर ने शायद शब्दार्थो में इसी इतिवृत्त का अन्तर्भाव कर लिया है।[51] दण्डी ने पदावली को काव्य का शरीर कहा है और उसके तीन यक्ष निरूपित किये है।[52] भामह ने अलंकार के रूपकात्मक निरूपण के लिये पुरुष की जगह नारी को उपमान बनाया है। उनकी दृष्टि में-अलंकार से युक्त वाणी, विदग्ध भण्डना नारी की भांति सुशोभित होती है।[53] अभिनव गुप्त की धारणा इस प्रकार है -'काव्य एक महापुरुष है। लक्षण : पद्मादि रेखायें हैं। उपमादि उसके आभूषण हैं। उसके गुण धैर्य के समान हैं।'[54]

विद्यानाथ ने भी काव्य पुरुष का रूपक बनाया है। उनके अनुसार 'रीति' उसका स्वभाव है। विद्यानाथ का रूपक निम्न है-

शब्दार्थो मूर्तिराख्यातौ जीवितं व्यङ्ग्य वैभवम्।
हारादिबदलंकारस्तत्र स्युरुपमादय :।।
श्लेषादयो गुणास्तत्र शौर्यादय इव स्थिता : ।
आत्मोकर्षावहास्तत्र स्वभावा इव रीतय :।।
शोभामाहार्यकीं प्राप्ता वृत्तयो वृत्तयो यथा।
पदानुगुण्य विश्रान्ति शय्या शटयेव संमता।।
रसास्वाद प्रभेदा: स्यु: पाका: पाका इव स्थिता:।
प्रख्याता लोकवदियं सामग्री काव्य सम्पदा:।।[55]

विश्वनाथ ने राजशेखर की परम्परा का अनुसरण कर काव्य-पुरुष का रूपक इस प्रकार बनाया है -

काव्यस्य शब्दार्थो शरीरं रसश्चात्मा गुणा, शौर्यादिवद दोषा: काणत्वादि।
वद् रीतयोऽवयवसंस्थाना दिवद् अलंकारश्च कटक कुण्डलादिवत्।।[56]

वामन के टीकाकार गोपेन्द्र त्रिपुरहर भूपाल ने कविता पर वधू का आरोप किया है। उनके अंगों की रूपक योजना निम्न है-

कृति	-	वधू
वाक्य	-	अंग

गुम्भ	-	मूर्ति
वस्तु	-	शिर
अलंकार	-	परिष्कार
रीति	-	प्राण
गुण	-	गुण

वामन ने रीति को ही काव्य की आत्मा कहा है परन्तु टीकाकार ने रीति को प्राण स्वीकार किया है।[57]

कवि शब्द की उत्पत्ति पर भी राजशेखर ने पर्याप्त विचार किया है।[58] उनके अनुसार- 'कवि का कर्म ही काव्य है।'[59] ऋग्वेद में भी कवि शब्द अत्यन्त व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[60] वैदिक कवि ऋषि था, आप्त था, मेधावी था। स्वयंभू परमेश्वर मनीषी और परिभू के साथ ही कवि भी है।[61] वैदिक ऋषि कवि था, मंत्र द्दष्टा था, और क्रान्तिदर्शी था। इस प्रकार कवि का सम्बन्ध-दर्शन-शक्ति से माना गया है।

कवि शब्द का प्रयोग ऐसे व्यक्तियों के लिये भी होता रहा है जिनकी कोई काव्य कृति नहीं है। कालिदास ने विष्णु को कवि कहा है।[62] पृथ्वीराज विजयकार ने 'विश्वरूप को ही कवि प्रथा का कारण माना है।[63] वायु पुराण में शंकर को भी कवि कहा गया है।[64]

इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, महेश को कवि कहा गया है। इसका कारण उनकी सृष्टि क्रिया है। वायु पुराण में भृगु और भृगु पुत्र उशना या शुक्र को भी कवि कहा गया है।[65] राजशेखर ने इन्हीं उशना को बाल्मीकि का पूर्ववर्ती कवि माना है। सूर्य, कल्किदेव के बड़े भाई तथा वैराज प्रजापति की कन्या और चाक्षुष-मनु के एक पुत्र का नाम कवि था।[66]

'बाल्मीकि की भेंट सरस्वती से हुयी। सरस्वती देवती स्नान करके वापस आई तो वहाँ उन्हें अपना पुत्र नहीं मिला। वे पुत्र शोक से व्याकुल हो गई। बाल्मीकि ने उनके पुत्र सारस्वतेय का सारा वृतान्त सुनाया और उशना का आश्रम भी दिखा दिया। वहाँ, उस आश्रम में सरस्वती ने अपने पुत्र को देख कर सुख प्राप्त किया। बाल्मीकि से प्रसन्न होकर सरस्वती ने उन्हें छन्दोमयी भाषा का वरदान दिया। लौटने पर क्रौंच के प्रसंग में बाल्मीकि के मुख से प्रथम छन्द निर्गत हुआ। सरस्वती ने उस श्लोक के सम्बन्ध में कहा कि जो उसे पढ़ेगा, वह भी कवि होगा। राजशेखर के अनुसार बाल्मीकि के उस श्लोक को पढ़कर ही व्यास ने महाभारत की रचना की[67]

राजशेखर के 'प्रचण्ड-पाण्डव' में इस प्रकार का उल्लेख है- 'ब्रह्मपरायण वेद-विद्या के

प्रतिनिधि व्यास रामायण का रसास्वादन करते हुये अपनी कविता की रचना करते थे। रामायण का पनुरुज्जीवन व्यास ने अपनी वाणी द्वारा किया है। [68]

यह रूपक यहीं समाप्त नहीं हुआ। राजशेखर ने अपने काव्य-पुरुष के भ्रमण की पृष्ठभूमि तैयार की तथा साथ ही साहित्य-विद्या-वधू के जन्म कथा का भी विस्तार किया - 'ऋषियों और देवताओं के बीच उठे एक विवाद का निर्णय करने के लिये सरस्वती ब्रह्मलोक को जाने लगीं। काव्य-पुरुष ने भी उनके साथ जाने का आग्रह किया। सरस्वती ने उसे रोका, और कहा-'कि ब्रह्मलोक यात्रा से तुम्हारा कल्याण नहीं होगा, ब्रह्मा की इस सम्बन्ध में अनुमति भी नहीं है।' काव्य-पुरुष इस पर घर से निकल गया। गौरी पुत्र कुमार को इस स्थिति से दुःख हुआ। माता गौरी ने काव्य-पुरुष को रोकने का वचन दिया। गौरी ने प्रेम का बन्धन उत्पन्न करने के लिये साहित्य-विद्या-वधू को प्रकट किया। उसे गौरी ने आदेश दिया कि तुम अपने धर्मपति काव्य-पुरुष का अनुकरण करो और उसे लौटा लाओ। मुनियों को उन्होने काव्य-पुरुष और साहित्य-विद्या-वधू के चरित्र गायन की आज्ञा दी। मुनियों ने वैसा ही किया।[69]

वास्तव में काव्य का घर से निकलना निर्विचार कविता करने का प्रतीक है। जयदेव ने इसे अपने एक वक्तव्य में व्यक्त किया है। [70]

काव्य शास्त्र ही कुकाव्य या निर्विचार कविता को सुकाव्य बनाता है। गौरी के द्वारा साहित्य-विद्या-वधू की सृष्टि का यही अभिप्राय है। ब्रह्मलोक में काव्य-पुरुष को न जाने देना लौकिक काव्य की भूमिका में उपयुक्त है। काव्य की उत्पत्ति के पश्चात् उसके शास्त्र की उत्पत्ति हुयी। प्रथम की सृष्टि ब्रम्हा ने की और द्वितीय की गौरी ने। दोनों की सृष्टि पूर्ण है। साथ ही गौरी ने जो प्रेमबन्धन की कल्पना की उसमें शृंगार की भी ध्वनि है। बन्धन काव्य में आकर्षण या चमत्कार का चिन्तन है। [71]

इस प्रकार साहित्य विद्या पर वधू का आरोप हुआ। उसकी उत्पत्ति भी दिव्य है। भगवान शिव ने इस विद्या का उपदेश परमेष्ठी, बैकुण्ठ आदि चौंसठ शिष्यों को दिया था। परमेष्ठी से इस विद्या को उनके मानस पुत्रों (ऋषियों) ने प्राप्त किया। इसमें एक पुत्र सारस्वतेय भी था। ब्रह्मदेव ने इस त्रिकालज्ञ और भविष्य अर्थो के द्रष्टा काव्य-पुरुष को भू, भुवः और स्वर्ग की प्रजा में काव्य विद्या का प्रवर्तन करने का आदेश दिया। काव्य पुरुष ने काव्य-विद्या को अट्ठारह अधिकरणों में विभक्त किया और ज्ञानार्थियों के लिये इनका कथन किया। राजशेखर ने इन्हीं लुप्त अधिकरणों के उद्धार के लिये काव्य-मीमांसा का प्रणयन किया। काव्य विद्या के प्रथम प्रवर्तक श्री कण्ठ शिव

थे और साहित्य-विद्या-वधू की जननी गौरी।[72] कालिदास ने भी शब्द और अर्थ के मर्म ज्ञान के लिये शिव और पार्वती की स्तुति की है-

'वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपन्तये।
जगत: पितरौ वन्दे पार्वती-परमेश्वरौ॥[73]

आगे राजशेखर के काव्य पुरुष का साहित्य विद्या वधू पीछा करती गई। मुनिजन उसके साथ थे। अंग, वंग सुह्म ,ब्रह्म एवं पुण्ड जनपद वाले कई पूर्व देशों में पहुँचे। वहाँ के स्त्री-पुरुषों ने पुरुष-वधू वेश का अनुसरण किया। यह विन्यास मागधी है, जिसकी स्तुति ऋषि मुनियों ने भी की है। चन्दन दूर्वा सूत्रहार आदि को इस प्रवृत्ति की सज्जा के लिये चुना गया। साहित्य-विद्या-वधू ने यहाँ नृत्य गान आदि भी किया परन्तु वह यहाँ काव्य-पुरुष को आकर्षित करने में असमर्थ रहीं।

तत्पश्चात् वे पौचाल गये। यहाँ पौचाल, शूरसेन, हस्तिनापुर, काश्मीर आदि जिले थे। यहाँ की वेशभूषा पौचाल मध्यम प्रवृत्ति है। कानों में बुंदे गले में लम्बा हार, चोटी से एड़ी तक सज्जा और लँहगे आदि की प्रवृत्ति में है। यहाँ नृत्य, गीत, वाद्य सात्वती वृत्ति से जाना जाता है। पर ये प्रवृत्ति भी काव्य पुरुष को आकर्षित न कर सकी। हाँ पूर्वोत्तर प्रवृत्तियों से इनमें अधिक आकर्षण था।

फिर उन्होंने अवन्ती की ओर प्रस्थान किया। जहाँ अवन्ती, विदिशा, सुराष्ट्र, भालव, अर्बुद, भृगु कच्छ आदि जनपद थे। यहाँ पौचाल मध्यमा और दाक्षिणात्य के बीच पौचाल का वेश पुरुषों ने ग्रहण किया, और स्त्रियों ने सात्वती और कैशकी जैसी बोलचाल की मिश्रित वृत्तियों को ग्रहण किया। किन्तु यहाँ भी ये काव्य पुरुष को आकर्षित करने में असमर्थ रहीं।

इसके बाद वे लोग दक्षिण की ओर चले गये। यहाँ की प्रवृत्ति 'दाक्षिणात्या वृत्ति कैशकी और रीत वैदर्भी थी। इसमें, मलय, मेकल, कुन्तल, केरल, पाल, मंजर, महाराष्ट्र, गंग, कलिंग, आदि आते हैं। यहाँ भी आकर्षण नहीं हुआ।

अन्त में वे विदर्भ गये। वहाँ कामदेव का क्रीड़ास्थल वत्सगुल्म नामक नगर था। इधर साहित्य-विद्या-वधू ने काव्य पुरुष को आकर्षित कर उससे गान्धर्व विवाह किया। फिर वे उन्हीं प्रदेशों से घूमते हुये वापस हिमालय चले गये, जहाँ सरस्वती और गौरी दोनों के आशीर्वाद से वे कवि मानस के निवासी बन गये। और यह कवि लोक उनके लिये जीवन स्वर्ग था।

अंतत: रावत जी के शब्दों में कहा जा सकता है कि राजशेखर ने एक दीर्घ रूपक योजना के माध्यम से काव्य के सभी उपकरणों का सुन्दर विवेचन है साथ ही कवि, काव्य आदि की परम्परा

और उनके प्रयोग की ओर भी संकेत किया। इस रूपक में उन्होने वेदों से लेकर ध्वन्यालोक तक की समस्त तत्सम्बन्धी विचारधाराओं और सिद्धांतों को समेटने की चेष्टा की है। काव्य पुरुष को जो विराटता अपेक्षित थी वह भी इस रूपक से उनको मिलती है। प्रत्येक स्थान पर प्रतीक योजना बड़ी ही सटीक और सार्थक है। [74]

आचार्यो के मतानुसार सौन्दर्यानुभूति- भारत में आध्यात्मिक दृष्टि की प्रधानता के कारण यहाँ सौन्दर्य के गोचर स्वरूप पर विशेष विचार नहीं हुआ और वस्तु सौन्दर्य को विशेष महत्व प्राप्त न हो सका। जगत् रूप में व्यक्त व्यावहारिक सत्ता के परमार्थिक स्वरूप पर ही दृष्टि अधिक केन्द्रित रही है। फिर भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि भारतीय सौन्दर्य से अनभिज्ञ थे क्योंकि भारतीय मनीषियों, तत्व चिन्तकों, कलाकारों एवं कवियों ने प्रकृति के अनन्त वैभव और सौन्दर्य की अनुभूति की है। उनकी अपूर्व कला सृष्टि इस बात का प्रमाण ही सौन्दर्य की विस्तृत चर्चायें भले ही हुई हों, उसकी ओर अनेक धार्मिक संकेत दार्शनिक विवेचन, काव्य रचना, अलंकार शास्त्र और कला शास्त्र में अवश्य मिल जाते हैं। [75]

प्रत्येक भारतीय विचारों का मूल वेदों में मिल जाता है। भारत में अति प्राचीन काल से ही 'सुन्दर' शब्द के प्रति आकर्षण रहा है। ऋग्वेद में सुन्दर शब्द के कई पर्यायवाची शब्द मिलते हैं। यथा-रूप, चारु, रुचिर, वल्गु, प्रिय, पेरास, भद्र, रण्व, चित्र, मधुर, प्रिय आदि। [76] अत: सुन्दर शब्द के लिये इतने शब्दों का प्राप्त होना उस युग के मनीषियों के इस शब्द से पूर्णत: भिज्ञ होने का संकेत देता है। ऋग्वेद में वाणी के सौन्दर्य के ब्याज से सौन्दर्यशास्त्र के प्राय: सभी अंगों का सूत्रबद्ध किन्तु धार्मिक विवेचन मिलता है। [77]

उपनिषदों में अनुभूतिपरक तत्व सौन्दर्य के आनन्द का विशद वर्णन किया गया है। 'वैदिक कवि जहाँ सौन्दर्य के लौकिक और दिव्य, ऐन्द्रिय और आत्मिक दोनों रूपों का रसिक था वहाँ उपनिषद के कवि की दृष्टि केवल आत्मा के सौन्दर्य के प्रति उन्मुख थी- उसने अपनी कृतियों को प्रकृति के वैभव से समेट कर आत्मा के ऐश्वर्य पर ही केन्द्रित कर रखा था।'[78] उपनिषदों में सौन्दर्य सामरस्य एवं सामंजस्य में है जहाँ अनेकता एकता में तथा उस प्रकार का द्वैत अद्वैत में परिणित हो जाता है। तैत्तरीय उपनिषद में आनन्द की ही ब्रह्म कहा गया है - इस प्रकार ऋषि भृगु ने यह जान लिया कि आनन्द ही ब्रह्म है, ये समस्त प्राणी आनन्द से ही उत्पन्न होते हैं। उत्पन्न होने पर आनन्द के द्वारा ही जीवित रहते हैं और अन्त प्रयाण करते हुये आनन्द में ही समा जाते हैं। [79]

अत: औपनिषदिक सौन्दर्य के दो लक्षण है-'आनन्द' और 'प्रकाश'। आनन्द अनुभूति के

स्तर पर है और 'प्रकाश' सौन्दर्य का गोचर रूप है। इसी कारण से आचार्यों ने रस को 'स्वप्रकाशानन्द' कहा है। इस प्रकार रस (अनुभूति) का मूल उपनिषद में है। पुराण साहित्य, बाल्मीकि साहित्य एवं महाभारत में भी सौन्दर्य सम्बन्धी धारणायें जीवन , धर्म एवं आध्यात्म के निरूपण में यथास्थल व्यक्त हुई हैं। पुराण साहित्य में धर्म एवं आध्यात्म के गूढ़ रहस्यों को कथा जैसे रोचक माध्यम के द्वारा व्यक्त किया गया है। बाल्मीकि रामायण में सुन्दर के लिये, रमणीय [80] रम्य, शोभन जैसे आदि अनेक शब्दों का प्रयोग किया गया है। उन्होंने प्राकृति, भौतिक, मानव एवं कलागत सौन्दर्य का पर्याप्त उल्लेख अपने ग्रन्थ में किया है।

'बाल्मीकि का काव्य व्यक्त जीवन का काव्य है जिसमें उपनिषद के रहस्य दर्शन का प्राय: अभाव है, अत: उसमें अलौकिक सौन्दर्य की रहस्यात्मक अभिव्यक्ति तो नहीं है, परन्तु मन:गोचर सौन्दर्य अथवा भाव सौन्दर्य का वैभव प्रचुर मात्रा में विद्यमान है।'[81] रामायण की भांति महाभारत में भी सुन्दर के लिये अनेक प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। किन्तु सुन्दर शब्द का जो यत्र-तत्र प्रयोग हुआ है वह अत्यन्त दुर्लभ है।[82] महाभारत में सौन्दर्य वर्णनों के दो रूप दृष्टव्य होते हैं -

(क) सौन्दर्य का गोचर स्वरूप जो रूपवान, दर्शनीय,[83] शोभन, सुन्दर आदि प्रयोगों द्वारा व्यक्त किया गया है

(ख) मनोग्राह्य रूप जिसकी अभिव्यक्ति मनोज्ञ, मनोहर, रुचिर, कान्त आदि शब्दों के प्रयोगों में हुयी है।[84]

श्रीमद्‌भगवत्‌गीता महाभारत का ही एक रूप है। गीता के 11 वें अध्याय में भगवान के विराट रूप के दर्शन का वर्णन है। अर्जुन भगवान के उस विराट रूप का दर्शन कर अभिभूत हो जाते हैं ,वह उस रूप को सहन नहीं कर पाते तथा वह भगवान से पुन: मनुष्य रूप में आने की प्रार्थना करते हैं और उनके सौम्य शान्त मानव रूप का पुन:दर्शन कर प्रकृतिस्थ हो जाते हैं।[85]

'निष्कर्ष यह है कि सौन्दर्यानुभूति के लिये पदार्थ के गोचर रूप के साथ प्रमाता की ऐन्द्रिय चेतना का सामंजस्य और उसके फलस्वरूप चित्रवृत्ति का समीकरण आवश्यक है।[86]

संस्कृत आचार्यों का सौन्दर्य वर्णन तो उनके गौरव के अनुरूप अत्यन्त समृद्ध एवं परिष्कृत है ही, उनका सौन्दर्य विवेचन भी उनकी कारयित्री प्रतिभा के उन्मेष के कारण अत्यन्त धार्मिक बन गया है। इसमें मूर्धन्य हैं कालिदास जो मूलत: सौन्दर्य के कवि हैं।[87] कालिदास नैसर्गिकता में ही सच्चे सौन्दर्य को मानते हैं। उनके अनुसार नैसर्गिक रूप के लिये अलंकरण अपेक्षित नहीं हैं।[88] वे सौष्ठव पूर्ण बाह्यरूप की योजना के लिये द्रव्य रूपी साधनों का सामंजस्य अपेक्षित मानते हैं।[89] उनके

अनुसार कलात्मक सौन्दर्य की सृष्टि सृष्टिकर्त्ता की मानसी कल्पना से ही उत्पन्न होती है। [90]

माघ की सौन्दर्य सम्बन्धी धारणा में एक वस्तुनिष्ठता है तो दूसरी ओर चिर नवीनता का आकर्षण। उनके आधार पर हर पल नवीनता को धारण करने वाला रूप ही सुन्दर है। उनका यह कथन सौन्दर्य के विकास और गतिशील स्वरूप का निर्देश करता है।

भवभूति, बाण, भारवि आदि अन्य संस्कृत आचार्यों ने भी अपनी सौन्दर्य सम्बन्धी धारणायें व्यक्त की हैं। सभी ने रूप सौन्दर्य की नैसर्गिकता को प्रधानता दी है।

अलंकार वादियों की दृष्टि काव्य के बाह्य सौन्दर्य पर ही रही है। भामह ने वक्रोक्ति और दण्डी ने अतिशय को अलंकारों का प्राण कहा है। [91] रीति सम्प्रदाय की सौन्दर्य विषयक दृष्टि अपेक्षाकृत पैनी तथा गहरी है। आचार्य वामन की रीति विशिष्ट पद रचना होने के कारण काव्य के रूपगत सौन्दर्य का निर्देश करती है किन्तु गुणों के विवेचन में उन्होंने काव्य-सौन्दर्य के आन्तरिक पक्ष और मानसिक पक्ष का भी उद्घाटन किया है। इस प्रकार उन्होंने अलंकार को काव्य शोभा का कर्त्ता न मानकर उस शोभा के अतिशय का हेतु माना है। [92]

भारतीय काव्य-शास्त्र के आचार्यों में सौन्दर्य की सर्वाधिक प्रधानता कुन्तक ने दी है उनके आधार पर-काव्य-सौन्दर्य लोक-सामान्य स्वभावोक्ति में नहीं अपितु वक्रोक्ति में है जिसे उन्होने 'वैदग्ध्य भंगी भणिति' कहा है। [93]

अत: कुन्तक ने वक्रोक्ति के अन्तर्गत काव्य के बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के सौन्दर्य का सन्निवेश किया है। कुन्तक की यह धारणा उभयनिष्ठ है।

ध्वनिकार ने प्रतीयमान अर्थ द्वारा कला के बाह्य रूप की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य को अधिक महत्व दिया है। यह अन्त:सौन्दर्य वाच्यार्थ में नहीं अपितु प्रतीयमान अर्थ में होता है। वस्तुत: वाच्य के अन्तर्गत ध्वनि का। प्रतीयमान अर्थ की सिद्धि काव्य वस्तुस्थिति का अवलोकन करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को हो सकती है। किसी सुन्दरी के शरीर में जिस प्रकार प्रत्येक अंग तथा अवयव से भिन्न लावण्य की पृथक सत्ता विद्यमान रहती है। उसी प्रकार काव्य में भी उसके अंगों से पृथक चमत्कार जनक प्रतीयमान अर्थ की सत्ता नियतभेव वर्तमान रहती है। [94] इस प्रकार ध्वनि काव्यांगों से पृथक उसका लावण्य अथवा सौन्दर्य ही है जो वाक्य का आन्तरिक तत्व है। [95]

'भारतीय काव्य शास्त्र में रस सिद्धान्त वस्तुत: सौन्दर्य सिद्धान्त ही है। चाहे नाट्य में, चाहे काव्य में, रस सिद्धांत का सारा बल सौन्दर्य पर ही है। आस्वाद्य रूप में उसकी वस्तुनिष्ठ सत्ता है और आस्वाद रूप में भावनिष्ठ या आत्मगत।' भरत के मत से रस आस्वाद्य पदार्थ है-अर्थात्

रंगमंच पर प्रदर्शित भावमूलक कलात्मक स्थिति है। सीधे शब्दों में भाव पर आश्रित नाट्य सौन्दर्य का नाम ही रस है। [96]

भरत के रस सम्बन्धी मत पर काफी विवाद हुआ। अन्त में अभिनव ने भरत के आस्वाद्य रस को आस्वाद रूप में परिभाषित करने में सफलता प्राप्त की। इस प्रकार अभिनव गुप्त की स्थापना से- 'रस और रसानुभूति, सौन्दर्य और सौन्दर्यानुभूति का भेद मिट जाता है। परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि रस सिद्धान्त में विभाव का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। काव्य वर्णन या नाट्याभिनय में विभाव की वस्तुगत सत्ता निर्विवाद है।' [97]

शृंगार रस का आलम्बन मूर्तिमान सौन्दर्य होता है। रति या प्रेम के विकास में अन्य विशेषताओं की अपेक्षा सौन्दर्य का ही अधिक सक्रिय योग रहता है। मानवीय सौन्दर्य के पूर्ण उन्मीलन के लिये काव्य शास्त्र में नख-शिख वर्णन का आदेश दिया गया है। उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत और स्वतन्त्र रूप में भी ऋतु वर्णन का प्रयोजन यही है। नायिका भेद, शारीरिक, मानसिक अवस्थाओं तथा व्यक्तित्व के अनुसार, रूप सौन्दर्य की विविध छवियों का निरूपण है। [98]

क्षेमेन्द्र का औचित्य सिद्धांत भी काव्य के सदृश्य है, जिससे उसका मेल मिले, उसे कहते हैं उचित, और उचित का ही भाव होता है औचित्य। [99] इस प्रकार औचित्य सिद्धांत सामंजस्य और संगति को ही सौन्दर्य का आधार मानता है। औचित्य एक ऐसा व्यापक तत्व है जो बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के सौन्दर्य के विविध रूपों में व्याप्त है। इसी कारण क्षेमेन्द्र ने उसे चमत्कारिण: तथा चारुचर्वणा में जीवतभूत (प्राणतत्व) कहा है। [100]

इस प्रकार आचार्यो ने काव्य समीक्षा के सन्दर्भ में दो दृष्टियों से विचार किया है। रूपात्मक सौन्दर्य, जिसके अन्तर्गत शब्द, अर्थ, अलंकार, वक्रोक्ति, रीत आते हैं। इनके द्वारा काव्य का बाह्य सौन्दर्य व्यक्त होता है। दूसरा रसात्मक सौन्दर्य (आत्म तत्व रस) जो अन्त:सौन्दर्य की व्यंजना करता है।

भारतीय चिन्तन - जिस प्रकार आचार्यो ने काव्य शास्त्रों में सौन्दर्य का विवेचन किया है उसी प्रकार हिन्दी समीक्षा जगत् के मनीषियों, आलोचकों, विचारकों, समीक्षकों आदि ने भी सौन्दर्य के क्षेत्र में अपनी-अपनी धारणायें प्रस्तुत की हैं जो कि निम्न प्रकार हैं-

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की दृष्टि में सौन्दर्य की वस्तुगत सत्ता केवल वस्तुओं के रूप रंग में ही नहीं होती, कर्म एवं मनोवृत्ति में भी सौन्दर्य विद्यमान रहता है। कविता केवल वस्तुओं के रंग-रूप के सौन्दर्य की छठा नहीं दिखाती, प्रत्युत कर्म और मनोवृत्ति के सौन्दर्य के भी अत्यन्त मार्मिक

दृश्य सामने रखती है। [101]

आचार्य श्याम सुन्दर दास सौन्दर्य को काव्य का अनिवार्य उपकरण मानते हुये उसकी कोई निश्चित परिभाषा देना असम्भव मानते हैं उनका कथन है कि-' जिस प्रकार काव्य में सन्दरता का निरूपण करके उसकी स्पष्ट तथा सर्वमान्य व्याख्या करना असम्भव है उसी प्रकार समस्त वस्तुओं के सम्बन्ध में सुन्दरता का आदर्श निश्चित करना असम्भव है। यद्यपि सुन्दरता, असुन्दरता आदि शब्द सापेक्षिक भावों के द्योतक हैं, फिर भी भिन्न-भिन्न देशों में इनकी कसौटी भिन्न-भिन्न अपने आदर्श, संस्कृति और सभ्यता के अनुसार निश्चित की गई है। [102]

डॉ. रामविलास शर्मा ने सौन्दर्य के विवेचन में रागात्मक पक्ष को महत्व प्रदान करते हुये कहा है- साहित्य की विषयवस्तु की दूसरी विशेषता यह है कि उसमें विचार ही नहीं होते, यथार्थ जीवन का चित्र ही नहीं होता, जीवन और विचारों के प्रति मनुष्य की भावना उसकी रागात्मक प्रतिक्रिया भी होती है। विज्ञान और दर्शन का काम मनुष्य की भावनाओं को जगाना, उनका परिष्कार करना, उसकी पुष्टि करना नहीं होता यह काम मुख्यत: साहित्य का है। कला और साहित्य की सरसता का सबसे बड़ा कारण यह भावना-मूलक स्वभाव है।'[103] राम विलास शर्मा ने अपनी बात आगे बढ़ाते हुये कहा है- सौन्दर्य की कसौटी है मनुष्य का व्यवहार। इस व्यवहार से आप बच कर नहीं निकल सकते। और सौन्दर्य की कसौटी है व्यवहार, इसलिये वह आपकी व्यक्तिगत इच्छा- अनिच्छा पर निर्भर नहीं है, वरन् उसकी वस्तुगत सत्ता है।' [104] इस प्रकार रामविलास शर्मा भी सौन्दर्य की वस्तुगत सत्ता को स्वीकारते हैं वे इसके स्थूल रूप-रंग तक सीमित न रहकर सूक्ष्म भावात्मक पक्ष को भी प्रधानता देते हैं।

आधुनिक भारतीय आध्यात्मवादी चिन्तकों ने भी सौन्दर्य के स्वरूप पर विचार कर उसके आत्मगत आनन्द पक्ष को महत्ता प्रदान की है। उनकी दृष्टि से-'सौन्दर्य आत्मा का वह आनन्द है जो पूर्णतया रूपान्वित तथा व्यवस्थित है। जहाँ आत्मा अभिव्यक्त नहीं होती है, जहाँ आत्मा की लय अपने आपको प्रकट नहीं करती, वहीं कुरूपता होती है। एक अर्थ में स्वाभाविक और सुन्दर अभिन्न वस्तु है, कृत्रिम और कुरूप परस्पर समान हैं।'[105]

'सौन्दर्य केवल सन्तुलन, सुडौलपन, ठीक नाप तौल, अंगों की नियमित व्यवस्था ही नहीं है। रूप और आकार को सुन्दर होने के तीव्रत: आकर्षक होने की आवश्यकता नहीं। केवल आकारगत सौन्दर्य भी एक शक्ति है, पर ऊपरी शक्ति है वस्तु का जो स्वरूप स्वकीय आत्मा की अभिव्यक्ति से सुन्दर होता है उसमें लय-ताल की गम्भीरता, एकता होती है।'[106]

श्री अरविन्द सच्चा सौन्दर्य द्रष्टा योगी और ऋषि-मुनियों को मानते हैं कवि को नहीं। उनका मानना है कि- 'ऋषि या योगी ऐसे गम्भीरतर सौन्दर्य एवं आनन्द का रसास्वाद कर सकता है जिसे कवि ऊँची उड़ान भर कर भी अपनी कल्पना में नहीं ला सकता।'[107]

श्री अरविन्द सौन्दर्य की गोचर सत्ता-ऐन्द्रिय स्वरूप को स्वीकारते हुये कहते हैं- 'भगवान आनन्दमय है परन्तु यह बात नहीं कि ऋषि या योगी केवल अगोचर सौन्दर्य के ही दर्शन कर सकता है वरन् प्रत्येक दृश्य-स्पृश्य एवं गोचर पदार्थ में भी उसे उन सर्व-सुन्दर की छवि दिखाई देती है, पर मन उनका पता नहीं पा सकता है। [108]

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि श्री अरविन्द जिसे गोचर सौन्दर्य कहते हैं उसकी अनुभूति सामान्य प्रकृति के मानव को नहीं हो सकती, यह स्थिति योगी या ऋषि मुनियों को ही प्राप्त हो सकती है। जो आत्मस्थ होकर प्रत्येक वस्तु में सौन्दर्य के दर्शन करते हैं। **हरिवंश शास्त्री** भी सौन्दर्य को आत्मा की अभिव्यक्ति मानते हुये कहते हैं- 'स्थूल या सूक्ष्म जगह में आत्मा की अभिव्यक्ति ही सौन्दर्य है।'[109] शास्त्री जी अपनी बात को और अधिक स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि- 'जब कभी हमारी बुद्धि निष्काम होगी, तभी हमें सौन्दर्य बोध होगा, क्योंकि उस समय हमारी दृष्टि वस्तुओं के नाम - रूप की बाहरी बनावट पर नहीं पड़ती है जिसमें ये सब नाम-रूप कल्पित हैं एवं जो हमारा अपना स्वरूप है।'[110]

विश्वकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर इस विचार को भ्रमपूर्ण मानते हैं कि कला का उद्देश्य सौन्दर्योत्पादन है, क्योंकि कला में सौन्दर्य साधन मात्र है उसका पूर्ण एवं अन्तिम साध्य नहीं। कला का प्रमुख लक्ष्य तो व्यक्तित्व का प्रकाशन है जिसके लिये उसे चित्र एवं संगीत की भाषा का प्रयोग करना पड़ता है। [111] रवीन्द्रनाथ ठाकुर पाश्चात्य और पौर्वात्य की सौन्दर्य सम्बन्धी धारणाओं में प्रमुख अन्तर बातते हुये कहते हैं कि- 'पूर्व के कलाकरों ने विशेष रूप से चीन और जापान में वस्तुओं में उनकी आत्मा का दर्शन किया है और वे इसमें (वस्तुओं की आत्मा के अस्तित्व में) विश्वास करते हैं। पश्चिम मनुष्य की आत्मा में विश्वास कर सकता है, परन्तु वह वस्तुत: यह विश्वास नहीं करता कि विश्व की भी एक आत्मा है, जबकि पूर्व का सम्पूर्ण योगदान इसी आदर्श से ओत-प्रोत है।'[112]

स्पष्टत: विश्वकवि के ही शब्दों में कहा जा सकता है कि- वस्तु के बाह्य स्वरूप के अतिरिक्त उसका एक आन्तरिक स्वरूप भी है, जो वास्तव में विश्व की आत्मा है। विश्व के सारे पदार्थों में इस आत्मा के अस्तित्व का दर्शन विश्वात्मा की ही सहानुभूति है। इसी को पदार्थ का व्यक्तित्व

कहा जाता है। पदार्थ का यह व्यक्तित्व सामंजस्य ही है। अत: किसी एक पदार्थ के सौन्दर्य द्दष्टा कलाकार को सभी पदार्थों के बाह्य परिवेश के साथ उस पदार्थ की आन्तरिक अनुरूपता एवं सामंजस्य का पता लगाना होता है। [113]

कामायनी में महाकवि **जयशंकर प्रसाद** की सौन्दर्य सम्बन्धी धारणा अनेक स्थलों में व्यक्त हुयी है। 'लज्जा' सर्ग में उन्होंने सौन्दर्य को चेतना का उज्ज्वल वरदान कहा है। अत: रूपगत सौन्दर्य भी चेतना का उज्ज्वल वरदान ही है। [114] इस प्रकार प्रसाद जी की सौन्दर्य सम्बन्धी धारणा बाह्य तथा अन्त: सौन्दर्य की झाँकी है।

इस प्रकार भारतीय सौन्दर्य चिन्तन के आधार पर स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि सौन्दर्य एक वस्तुगत रूप है जो वस्तुओं के रंग-रूप तथा आकार आदि में दिखाई देता है। काव्य में प्रकृति चित्रण के मनोहर रूपों में भी वस्तुगत सौन्दर्य ही मुख्य है। वस्तुगत सौन्दर्य का एक प्रकार रूपगत सौन्दर्य भी है जो मानव तथा नारी शरीर के अवययों के सामंजस्य से उत्पन्न होता है।

कुछ विचारक तथा दार्शनिक, कवि आदि सौन्दर्य के आध्यात्मिक पक्ष को भी महत्व देते हैं। उनके अनुसार आत्मा सौन्दर्य व आनन्द का रूप है। इस प्रकार बाह्य जगत् में जो कुछ भी सुन्दर है वह सब उसकी अभिव्यक्ति है।

पाश्चात्य चिन्तन - पश्चिम के कुछ विचारक सौन्दर्य के आन्तरिक तत्व की आध्यात्मिकता को अधिक महत्व देते हैं। **प्लेटो** का कथन है कि यदि कोई वस्तु सुन्दर है तो वह किसी अन्य कारण से सुन्दर नहीं, सिवाय इसके कि वह पूर्ण एवं निरपेक्ष सौन्दर्य का अंश है। [115] प्लेटो सौन्दर्य को दिव्य मानते हुये उसे सत्य और शिव से अभिन्न मानते हैं।

19 वीं शताब्दी के दार्शनिकों ने आध्यात्मिकता के सिद्धान्त को पूर्ण बनाने प्रयत्न किया है। **सेंट आगस्टाइन** ने-'धार्मिक द्दष्टि से बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा शिव के सौन्दर्य को ही सच्चा सौन्दर्य माना है।'[116]

शेफ्टशबरी की धारणा है- 'सौन्दर्य सृष्टि में परम विभु की ही अभिव्यक्ति है।'[117] **हीगेल** के आधार से परमभाव की अभिव्यक्ति का प्रयास ही सौन्दर्य सृजन है। वस्तु में उसकी अभिव्यक्ति जितनी पूर्णता और सफलता के साथ हो पाती है उसमें उतना ही सौन्दर्य होता है। अपनी इसी विचारधारा के अनुरूप उन्होने सौन्दर्य की निम्नलिखित परिभाषा दी है - 'पदार्थ के माध्यम से मूलादर्श या विचार का आलोकित होना ही सौन्दर्य है।'[118]

इस प्रकार सौन्दर्य को आध्यात्मिक मानने वाले रूप के आकर्षण की अपेक्षा उसकी उज्ज्वलता

को महत्व देते हैं। क्योंकि आध्यात्मिक दृष्टि होने पर सौन्दर्यानुभूति उदात्त हो जाती है। **लोंजाइनस** ने उदात्त का स्त्रोत भी आध्यात्मिक माना है- 'कहा जाये तो उदात्त तत्व आत्मा की विराटता-महानता का बिम्ब है।'[119]

कुछ पाश्चात्य आचार्य दार्शनिकों ने लौकिक दृष्टि प्राप्त करके सौन्दर्य को नैतिकता से सम्बद्ध माना है। नैतिकता का सम्बन्ध धर्म से है और धर्म नैतिकता में ही सौन्दर्य देखता है। इसी कारण से **सुकरात** सौन्दर्य को अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति में सहायक मानते हुये कहते हैं- 'सुन्दर वह है जो अनुरूप एवं योग्य हो तथा अपेक्षित उद्देश्य का उत्तर हो (अर्थात् उसकी पूर्ति कर सके)'[120] अरस्तू ने सौन्दर्य की अच्छाई के साथ उसके सम्बन्ध की ओर संकेत किया है।[121]

'लोगों को अब सौन्दर्य की उस असत्य धारणा को अस्वीकार करना होगा, जिसके अनुसार कला का उद्देश्य आनन्दोपभोग समझा जाता है। हमारे युग के मार्गदर्शक के रूप में धार्मिक-बोध स्वाभाविक रूप से इसका स्थान ग्रहण करेगा।'

रस्किन का विचार है कि- 'जब कोई वस्तु बौद्धिक व्यायाम के बिना अपने बाह्य गुणों के सहज भावन से आनन्द देती है, तब हम उसे सुन्दर कहते हैं।'[123] रस्किन सौन्दर्य को ईश्वरीय अभिव्यक्ति होने के कारण उदात्त तथा प्रकृतिगत मानते हैं। उनका कथन है कि- 'पूर्ण अभिरुचि है, अधिकतम सम्भव आनन्द प्राप्त करने की आन्तरिक शान्ति उन भौतिक स्त्रोतों से जो पवित्रता एवं पूर्णता में हमारी नैतिक प्रकृति को आकर्षक लगते हैं।'[124]

कुछ सौन्दर्य शास्त्री सौन्दर्य को आन्तरिक सजीवता और उसकी उज्ज्वल अभिव्यक्ति में मानते हैं। सौन्दर्य के इसी आधार को मानते हुये **प्लाटिनस** का कथन है कि -'सौन्दर्य एक प्रकार का प्रकाश है जो स्वयं सुडौलता की अपेक्षा वस्तुओं की सुडौलता के परे क्रिया करता है और इसी में उसका आकर्षण है। ..... अधिक सजीव मूर्तियाँ अधिक सुन्दर क्यों होती हैं जबकि कुछ दूसरी अधिक सुडौल हो सकती हैं।'[125]

इस प्रकार सजीवता और उसकी उज्ज्वल अभिव्यक्ति को सौन्दर्य मानने वाले आलोचक रूपवादी होते हुये भी उसमें आन्तरिक तत्व का अस्तित्व स्वीकार करते हैं।

'सौन्दर्य कहाँ स्थित है ?' सौन्दर्य को एक विशिष्ट अनुभूति मानने वाले सौन्दर्य शास्त्री इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि 'सौन्दर्य स्वंय अनुभूति में स्थित है। जब मनुष्य सौन्दर्य की बात कहते हैं तो उनका तात्पर्य वस्तु के गुण से नहीं अपितु उसके प्रभाव से होता है जो अनुभूति ही है।'[126]

टालस्टाय और रस्किन भी अनुभूति पर बल देते हैं, भले ही उनका दृष्टि-कोण नैतिक हो।

काण्ट सौन्दर्य को वस्तुगत न मानकर विशिष्ट अनुभूति के कारण मानते हैं तथा निर्लिप्त भावना को महत्व देते हैं।'[127]

अनेक सौन्दर्य शास्त्री रूपवादी हैं, जो सौन्दर्य का सम्बन्ध केवल वस्तु के रूप से मानते हैं। सौन्दर्य को वस्तुगत मानने वाले, चाहे उनका दृष्टिकोण आध्यात्मिक हो चाहे लौकिक-मानसिक, वस्तु के आन्तरिक पहलू को महत्व देते हैं। कला के क्षेत्र में वर्ण्य और उसके मूल्य से सौन्दर्य का सम्बन्ध स्वीकार करते हैं। वर्ण्य का सौन्दर्य प्रकृति या जीवन सापेक्ष है। अनुभूति के द्वारा प्रत्यक्ष रूप में या कल्पना के सूक्ष्म परिवर्तनों के माध्यम से वर्ण्य में सौन्दर्य का आगमन होता है। ये आचार्य रूप के सौन्दर्य को स्वीकार करते हैं, पर अंतत: सौन्दर्य को रूप का अतिक्रामक सच्चा सौन्दर्य कहते हैं। इसके विपरीत रूपवादी प्रकृति और कला दोनों में सौन्दर्य को रूप की विशेषताओं से सम्बद्ध मानते हैं। व्यवस्था एकता, स्पष्टता, मृसणता, सौष्ठव, व्यंजकता सामंजस्य,अनुपात, वर्ण-दीप्त, औचित्य आदि अनेकानेक रूप की विशेषतायें सौन्दर्य की सृष्टि करती हैं। रूपवादी कला की रूप-योजना को भौतिक रूप का अनुकरण नहीं कलाकार की कल्पना की सृष्टि कहते हैं।[128]

पश्चिमी दार्शनिकों ने रूपवादी सौन्दर्य का सूक्ष्म चिन्तन करते हुये उसके शास्त्रीय पक्षों को उभारा है। **लैबिनट्स** के अनुसार - 'रूप का सामंजस्य सौन्दर्य है जिसमें अन्तर्विरोध भी हो सकता है।'[129]

ह्यूम अंग निर्माण और व्यवस्था को सौन्दर्य मानते हुये कहते हैं कि - 'सौन्दर्य अवयवों की ऐसी संरचना एवं व्यवस्था है जो या तो हमारी प्रकृत मूलभूत गठन से या आचार रीति से अथवा मन की तरंग से, आत्मा को तृप्ति एवं आनन्द देने योग्य है।[130]

इसी प्रकार **बर्क** अंगों की कोमलता और उज्ज्वलता को महत्व देते हैं तो **हीगार्थ** रूप की जटिलता और विविधता को। **क्लाइववेल, कॉलरिज** ने सार्थक रूप में सौन्दर्य देखा है तथा कुछ विचारक सामंजस्य की परिपूर्णता पर अधिक बल देते हैं।

बामगार्टन कहते हैं कि- 'ऐन्द्रिय संवेदनों की परिपूर्णता में ही सौन्दर्य है जो परिपूर्णता बौद्धिक क्षेत्र में अभिव्यक्त होने पर सत्य कहलाती है।'[131]

कुछ चिन्तकों का मानना है कि कला प्रकृति के अपूर्ण सौन्दर्य को पूर्ण करती है।

कुछ सौन्दर्यशास्त्रियों ने रूप सौन्दर्य की भावना एक दार्शनिक आधार पर निर्मित कर सौन्दर्य को शुद्ध मानसिक और कल्पनाजन्य माना है। वे मानते हैं कि रूप सौन्दर्य के साथ कलाकार की

प्रतिभा, कल्पना कौशल आदि का गहरा सम्बन्ध है। **क्रोचे** का अभिव्यंजनावाद भी इसी का एक व्यस्थित रूप है। क्रोचे के आधार से- 'सौन्दर्य प्रकृतिगत न होकर कलाकार की सृष्टि है।[132] मन के सहज ज्ञान की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति इसका कारण है। जो सहज ज्ञान की बिम्बात्मक अभिव्यंजना नहीं है, वह केवल ऐन्द्रिय संवेदन या प्राकृतिक धारणा है।[133] सहज ज्ञान का बिम्ब मानसिक है और कलाकार अपने माध्यम में उसके प्रकटीकरण का प्रयत्न करता है।[134] इस व्यक्त रूप के कारण पाठक या श्रोता कलाकार की मानसिक अवस्था तक पहुँच पाता है। क्रोचे के अनुसार- 'सौन्दर्य को सफल अभिव्यक्ति के रूप में परिभाषित करना अनुमति एवं अनुशंसा के योग्य है। सफल अभिव्यक्ति भी अभिव्यक्ति से अधिक कुछ नहीं है, क्योंकि अभिव्यक्ति यदि सफल नहीं है तो वह अभिव्यक्ति ही नहीं है।[135] सारांशत: क्रोचे के अनुसार कहा जा सकता है कि मानसिक अभिव्यंजना कलाकार के मानस में स्थित रहती है और उसकी सफलता में ही सौन्दर्य होता है।

प्लेखानोव, काडवैल, वेलिंस्की आदि मार्म्सवादी सौन्दर्य विचारकों ने सौन्दर्य को सामाजिक जीवन से सम्बद्ध कर अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनके आधार से सौन्दर्य सामाजिक जीवन से अलग नहीं है। **प्लेखानोव** की दृष्टि में-'किसी कलाकृति का आनन्दोपभोग अपने प्रकार के उपयोगितापूर्ण चित्रण के आनन्दोपभोग में है।[136]

इस प्रकार इन मार्क्सवादी सौन्दर्य विचारकों के अनुसार सौन्दर्य भौतिक और सामाजिक ही नहीं बल्कि प्रगतिशील प्रेरणा देने में भी समर्थ है। अत: मार्क्सवादी सौन्दर्य में समाज और जीवन के पक्ष को महत्व देते हैं।

स्काट जेम्स सौन्दर्य को वस्तुगत यथार्थ एवं उसकी उपयोगिता से प्राप्त आनन्द में मानते हैं। वे कहते हैं कि -'सौन्दर्य एक भूषण है,एक युक्त गुण है। यह यथार्थता की दृष्टि के मूल तक में प्रवेश कर जाता है और इसका सम्बन्ध उस आनन्द एवं तृप्ति से है जो हमें उस यथार्थ से प्राप्त होती है।'[137]

पाश्चात्य चिन्तन मे विज्ञान एवं मनोविज्ञान ने भी सौन्दर्य धारा को प्रभावित किया है। वैज्ञानिकों ने सौन्दर्य के ऊपर पड़े हुये रहस्यमयता का आवरण हटा कर उसे सरल और सहज बनाने प्रयास किया है। 'परिणामवाद तथा अनुवंशकी (जेनेटिक्स) निर्जीव और सजीव रूप के विकास के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वों के उद्घाटन में संलग्न है। रूप के विशिष्ट और सामान्य लक्षणों का विश्लेषण होता जा रहा है।'[138]

विज्ञान का दृष्टिकोण वस्तून्मुख है तो मनोविज्ञान का व्यक्तिपरक। मनोविज्ञान ने काम, अहं, अन्तश्चेतना, व्यक्तित्व आदि के द्वारा कला और सौन्दर्य के मूल स्त्रोतों की ओर संकेत किया है।

पाश्चात्य विवेचकों के सम्पूर्ण विवेचन पर दृष्टिपात करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्रियों के तीन आधार हैं- वस्तु, सौन्दर्य एवं चेतना। रूपगत सौन्दर्यशास्त्रियों का सम्बन्ध वस्तु से है। वे सभी पदार्थो में वस्तु की रूपगत सत्ता को स्वीकारते हैं।

सौन्दर्य अपनी क्षमता से स्वयं को ऐन्द्रिय रूपों में व्यक्त करता है।

चेतना के विचार में सौन्दर्य का मानसिक एवं आध्यात्मिक पहलू आ जाता है। चेतना की प्रधानता वस्तु को गौण और व्यक्ति को प्रधान बना देती है।

अत: स्पष्ट है कि व्यक्ति की चेतना के बिना न तो वस्तु के रूप का ज्ञान सम्भव है और न उस ज्ञान में अनुभूति की सजीवता। इसलिये वस्तु और चेतना के सहभाव से ही सौन्दर्य का अस्तित्व निश्चित है।

अन्ततः मैं निष्कर्ष रूप में कह सकती हूँ कि सौन्दर्य का प्रयोजन मात्र सौन्दर्य ही है, उसकी अपनी निरपेक्ष सत्ता। नैतिकता, उपयोगिता लोक-मंगल आदि शब्द से परे, यह सौन्दर्य का कलावादी दृष्टिकोण है। किन्तु जो नैतिक है, उपयोगी है, लोकमंगलकारी है वास्तव में वही 'सुन्दर' है।

अत: सौन्दर्य के विभिन्न स्वरूपों पर विचार करने के उपरान्त भी उसकी कोई सर्वमान्य व्याख्या या परिभाषा प्राप्त नहीं होती जो उसके विभिन्न पक्षों को विश्लेषित कर सके। सौन्दर्य कैसा भी क्यों न हो, उसके सभी रूपों में उसकी अनुभूति के दो पक्ष अवश्य होगें- विषय-विषयी, रूप-प्रतीत। सौन्दर्यानुभूति के इन पक्षों के तादात्म्य के अभाव में सौन्दर्य वास्तव में सौन्दर्य नहीं है।

संदर्भ सूची

1. काव्य में सौन्दर्य और उदात्त तत्व, भूमिका भाग से अवतरित, शिववालक राय, पृष्ठ-1
2. महादेवी वर्मा के काव्य में सौन्दर्य भावना, डॉ. गोविन्द पाल सिंह, पृष्ट-33
3. संवेदना और सौन्दर्य, राजकमल बोरा, पृष्ठा 176
4. सौन्दर्य तत्व निरूपण, डॉ. एस. टी. नरसिंहाचारी, पृष्ठ-100
5. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ 116-117
6. सौन्दर्य तत्व निरूपण, डॉ. एस.टी. नरसिंहाचारी, पृष्ठ-87
7. आक्सफोर्ड लिट्रेचरस ऑन पोयट्री, ए.पी. ब्रेडले, पृष्ठ-50
8. महादेवी वर्मा के काव्य में सौन्दर्य भावना, डॉ. गोविन्द पाल सिंह, पृष्ठ-35
9. सौन्दर्य तत्व निरूपण, डॉ. एस. टी. नरसिंहाचारी,पृष्ठ- 88
10. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, आचार्य राम चन्द्र शुक्ल, पृष्ठ-87
11. वाङ्मय विमर्श, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृष्ठ- 118,169
12. 'रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द: काव्यम्' रस गंगाधर, पंडितराज जगन्नाथ, पृष्ठ 20
13. महादेवी वर्मा के काव्य में सौन्दर्य भावना, डॉ. गोविन्द पाल सिंह, पृष्ठ-37
14.महादेवी वर्मा के काव्य में सौन्दर्य भावना, डॉ. गोविन्द पाल सिंह, पृष्ठ-38
15. आँसू, जयशंकर प्रसाद, पृष्ट 20
16. उद्धव शतक : रत्नाकर ग्रन्थावली, छंद - 81
17.महादेवी वर्मा के काव्य में सौन्दर्य भावना, डॉ. गोविन्द पाल सिंह, पृष्ठ-40
18. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृष्ठ-125
19. सम्मेलन पत्रिका, भाग-50, संख्या 2-3 संवत् 1886 में प्रकाशित रामदत्त भारद्वाज के लेख 'प्रेम एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण' पृष्ठ-138
20. 'प्रेम एक संजीवन रस के रूप में प्रेमी के सारे जीवन-पथ को रमणीय और सुन्दर बना देता है।' चिन्तामणि भाग-1 आचार्य शुक्ल, पृष्ठ - 89-90
21. प्रसन्न राघव 1/8 तथा चन्दालोक प्रथम मयूरव
22. अभिनव भारती, बड़ौदा संस्करण, पृष्ठ-292
23. काव्यादर्श, दण्डी, 1/12
24. महापुराण, कालिदास, 1/93
25. काव्यमीमांसा, बड़ौदा संस्करण
26. काव्यमीमांसा, बड़ौदा संस्करण, प्रथम अध्याय का उपसंहार
27. काव्य मीमांसा, बड़ौदा संस्करण, प्रथम अध्याय
28. काव्य भीमांसा, बड़ौदा संस्करण, तृतीय अध्याय
29.दृष्टि और दिशा साहित्यक निबन्ध- काव्य-पुरुष: काव्यांग रूपक, चन्द्रभान रावत, पृष्ठ-2
30. 'यस्य भूमि: पगा: अन्तरिक्षमुतोदरम्, दिवं यश्चक्र मूर्धानम्'
31. पाणिनीय शिक्षा, श्लोक-41-42
32. दृष्टि और दिशा: साहित्यिक निबन्ध, काव्य पुरुष: काव्यांग रूपक, चन्द्रभान रावत, पृष्ठ -3
33. कवि रहस्य, गंगानाथ झा, पृष्ठ -7-8.
34. तन्त्रवार्तिक, 1/2/46
35. इनमें पंतजलि ने इसका विस्तार किया है।
36. नाट्य शास्त्र अध्याय -17
37. 'यदेतद्राङमयं विश्वम्, अर्थ मूर्त्या विवर्तते।'
सोऽस्मि काव्य प्रमान् अम्ब ! पादौ वन्देय तावकौ ॥

38. पश्य देवस्य काव्यं, न ममार न जीर्यति ॥
39. दृष्टि और दिशा: साहित्यिक निबन्ध, काव्य पुरुष: काव्यागङ रूपक, चन्द्रभान रावत, पृष्ठ -4
40. महाभारत : शान्ति पर्व, अध्याय- 359
41. महाभारत : शल्य पर्व, अध्याय 52
42. वायु पुराण, अध्याय-65, (आनन्दाश्रम संस्करण)
43. वायु पुराण, अध्याय-65, (आनन्दाश्रम संस्करण)
44. अभिनव भारती, बड़ौदा संस्करण, भाग-1, पृष्ठ-16
45. 'श्राव्यत्वं प्रेक्षणीयस्थ ददौ देवी सरस्वती'- नाट्यशास्त्र, 1/60
46. सौन्दरानन्द 7/31
47. 'आम्नायादन्यत्र नूतनश्छन्द सामवत: ।'- उत्तर रामचरित अंग-2
48. उत्तर रामचरित, अंक-2 'शब्द ब्रह्मणस्तादृशं विवर्तमितिहासं रामायणं प्रणिनाम ।'
49. मेद्या, (1962-63) रामनिहालशर्मा, रायपुर, पृष्ठ- 123
50. वायु पुराण, आनन्दाश्रम संस्करण, अध्याय- 6-8.
51. दृष्टि और दिशा: साहित्यिक निबन्ध, काव्य पुरुष: काव्याग रूप , चन्द्रभान रावत, पृष्ठ -6
52. 'गद्यं- पद्यं च मिश्रं च तत् त्रिधैव व्यवस्थितम् ॥ - काव्यादर्श, 1/11
53. अनेन वागर्थ विदामलंकृता ।
विभाति नारीव विदग्ध मण्डना ॥ - काव्यालंकार, 3/58
54. अभिनव भारती, बड़ौदा संस्करण, पृष्ठ- 321-348
55. प्रताप रुद्रीयम, विद्यानाथ का रूपक, 2/25
56. साहित्य दर्पण 1/13
57. काव्यालंकार सूत्र वृत्ति की टीका : प्रस्तावना ।
58. 'कवि शब्दश्य 'कवृ वर्णे' इत्यस्य धातो : काव्य कर्मणो रूपम् ।'
काव्यैक रूपत्वाच्च सारस्वतेयेऽपि काव्य पुरुष इति भक्त्या प्रयु ज्यते ॥
59. 'कवेर्भावोऽथवा कर्म काव्यं तजज्ञै निरुच्चयते'॥ - जिनसेन महापुराण, 1/94
60. कवि शशासु: कवयोऽदब्धा : । ऋक 4/2/12
कवि : कवित्वा दिवि भासजत् । 10/124/7
कवि मिव प्रचेतसं यं देवास: । 8/84/2
इन्द्रमग्नि कविच्छदा । 3/12/3
61. कवि र्मनीषी परिभू: स्वयंमू: । ईशावास्य. कवि पुराण मनुशासितारम् । गीता
62. रघुवंश, 10/36
63. 'यो विश्वरूपो विबुधेषुधुर्य: स एव हेतुर्हि कवि प्रथाया:।' पृथ्वीराज महाकाव्य, सर्ग -1
64. वायु पुराण, अध्याय - 98
65. वायु पुराण, अध्याय- 65
66. हरिवंश पुराण, अध्याय-2
67. दृष्टि और दिशा: साहित्यिक निबन्ध, काव्य पुरुष: काव्यांग रूपक, चन्द्रभान रावत, पृष्ठ -10
68. प्रचण्ड- पाण्डव, 1/16/ तथा 1/17
69.दृष्टि और दिशा: साहित्यिक निबन्ध, काव्य पुरुष: काव्यांग रूपक, डॉ. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ -10-11
70. 'रे रे स्वैरिणी-निर्विचार कवि ते ।'भास्मत्प्रकाशीभव, चन्द्रलोक, प्रस्तावना
71.दृष्टि और दिशा: साहित्यिक निबन्ध, काव्य पुरुष: काव्यागङ रूपक, चन्द्रभान रावत, पृष्ठ -11
72. काव्य मीमांसा अध्याय-3
73. अभिज्ञानशकुन्तलम् कालिदास ।
74. दृष्टि और दिशा: साहित्यिक निबन्ध, काव्य पुरुष: काव्यागङ रूपक, चन्द्रभान रावत, पृष्ठ -12-13

75. सौन्दर्य तत्व निरूपण, डॉ. एस. टी. नरसिंहाचारी, पृष्ठ-17
76. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका, डॉ. नगेन्द्र,पृष्ठ- 33
77. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका, डॉ. नगेन्द्र,पृष्ठ- 36
78. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका, डॉ. नगेन्द्र,पृष्ठ- 36
79. आनन्दो ब्रह्मेति विजानात। आनन्दादेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति।
आनन्दं प्रयन्त्यभिसं विशन्तीत। - तैत्तरीयोपनिषद 3/6/1
80. गम्यतां भवताशैलश्चित्रकूट : स विश्रुत:
पुण्यश्च रमणीयश्च बहुमूलफलायुत:। - बाल्मीकि रामायण, 2/ 54/41
81. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ- 40
82.1. चित्र प्रसादनी बाला देवानामपि सुन्दरी सुन्दरी- महाभारत वनपर्व- (53-14)
2. स्त्रियाः कुमुदवर्णाश्च सुन्दर्य : प्रियदर्शना : (महाभारत भीष्मपर्व, 8-16)
83. रूपवान दर्शनीयश्च- (महाभारत, उद्योगपर्व, 98-12)
84. 1. मनोज्ञे काननवरं- (महाभारत वन पर्व, 145-45)
2. मनोहारा चन्द्रमुखी प्रसन्न (महाभारत अनुशासन पर्व, 11-5)
3. रुचिरस्ते वरोभवेत्- (महाभारत उद्योग पर्व, 100-16)
4. कान्तश्च प्रियश्च स्थिर संगर : (महाभारत वन पर्व, 45-12)
85. दृष्टवेदं मानुषं रूप तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्त : सचेता : प्रकृतिगत : - (गीता, 11-51)
86. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ 53.
87. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ 53.
88. सरसिजमनुबिद्ध शैवालेनापि रम्यं मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी, किमिव हि मधुराणाम्
- कालिदास अभिज्ञान शाकुन्तलम् 1- 18
89. सर्वोपमा द्रव्य समुच्चयेन यथा प्रदेश विनिवेशितेन।
सा निर्मितासृ विश्वजा प्रयत्नादेक स्थ सौन्दर्य दिदृक्षयेव। - कालिदास कुमार सम्भव, 1- 49
90. चित्रे निवेश्य परिकल्पित सत्वयोगाद।
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु॥- कालिदास, अभिज्ञान शाकुन्तलम्-2-9
91. सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनया अर्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्यां कविना कार्य: लोऽलंकारोऽनया विना॥- मामह, काव्यालंकार 2-85
92. काव्य शोभाया: कर्त्तारो धर्मा: गुणा: तदतिशयहेत वस्त्व लंकारा;
- वामन, काव्यालंकार, 3-1-1-2
93. वक्रोक्ति रेव वैदग्ध्य भंगी मणितिरुच्यते। - कुन्तक, वक्रोक्ति जीवितम्
94. प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत्तत्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लग्वर्ण्यामवांगनासु॥ 'ध्वन्यालोक' 1-2
95. भारतीय साहित्य शास्त्र, बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ- 212
96. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, डॉ. नगेन्द्र,पृष्ठ- 99
97. महादेवी वर्मा के काव्य में सौन्दर्य भावना, डॉ.गोविन्द पाल सिंह, पृष्ठ- 22
98. सौन्दर्य तत्व निभूषण, डॉ. एस. टी. नरसिंहाचारी, पृष्ठ-20
99. उचित प्राहुराचार्या: सदृशं किल यस्य यत्।
उचितस्य च यो भाव : तदौचित्यं प्रचक्षते। - औचित्य-विचारचर्चा- कारिका-7
100. औचित्यस्य चमत्कारिणश्चारुचर्वणे।
रसजीवित मूतस्य विचारं कुरुते धुना॥ -औचित्य विचारचर्चा- कारिका-3.

101. चिन्तामणि, भाग-1 'कविता क्या है ?' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 164
102. साहित्यालोचन, श्यामसुन्दर दास, पृष्ठ 63
103. निबन्धमणि- सौन्दर्य की उपयोगिता निबन्ध. रामविलास शर्मा,पृष्ठ- 66
104. निबन्धमणि- सौन्दर्य की उपयोगिता निबन्ध. रामविलास शर्मा,पृष्ठ- 66
105. प्रकाश की ओर, नलिनीकांत गुप्त, (अदितिग्रंथ माला, अरविन्दाश्रम पांडिचेरी)
106. प्रकाश की ओर, नलिनीकांत गुप्त, (अदितिग्रंथ माला, अरविन्दाश्रम पांडिचेरी)
107. श्री अरविन्द के पत्र भाग 1, पृष्ठ 325 (श्री अरविन्दाश्रम पांडिचेरी)
108. श्री अरविन्द के पत्र भाग 1, पृष्ठ 325 (श्री अरविन्दाश्रम पांडिचेरी)
109. सौन्दर्य विज्ञान, काशी विद्या पीठ- 1936, हरिवंश सिंह शास्त्री, पृष्ठ 122-123
110. सौन्दर्य विज्ञान, काशी विद्या पीठ- 1936, हरिवंश सिंह शास्त्री, पृष्ठ 122-123
111. द प्रिंसपल ऑब्जैक्ट ऑफ आर्ट, आलसो, वीइंग द एक्सप्रैसन, ऑफ पर्सनैलटी, एण्ड नॉट ऑफ दैट विच इज ऐब्सट्रैक्ट एण्ड ऐनालिटिकल इट नैसेसरली यूजिस द लैंग्वेज टू पिक्चर्स एण्ड म्यूजिक दिस हैज डैड टू ए कन्फ्यूजन इन अवर थॉट् दैट द ऑब्जैक्ट ऑफ आर्ट इज द प्रोडैक्शन ऑफ ब्यूटी ; व्हेयरस ब्यूटी इन आर्ट हैजबीन द मेरे इन्सट्रूमैण्ट एण्ड नॉट इट्स कम्पलीट् एण्ड अल्टीमेट सिग्नीफिकैन्स.- पर्सनैल्टी, रवीन्द्र नाथ टैगौर, पेज-19
112. द ग्रेटनैस एण्ड ब्यूटी,ओरियन्टल आर्ट स्पेसली इन जापान एण्ड चाइना कनस्सिटस इन दिस, दैट दियर द आर्टस्टि हैव सीन दिज सोल ऑफ थिग्स एण्ड बिलीव इन इट । द वैस्ट में बिलीव इन द सोल ऑफ मैन बट शी इज नॉट रियली बिलीव दैट द यूनीवर्स हैज ए सोल। यह दिज इजद बिलीफ ऑफ द ईस्ट एण्ड द होल मैन्टल कन्ट्रीब्यूशन ऑफ द ईस्ट टू मेंकिग इज फील्ड विथ इज आइडिया। -पर्सनैल्टी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, पृष्ठ -25
113. दियर फोर ही (द आर्टस्टि) हैज टू फाइन्ड आउट द इनर कनकॉरडैन्स ऑफ दैट वन थिंग विथ इट्स आउटर सरॉउन्डिगस ऑफ ऑल थिंग्स. -पर्सनैल्टी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, पृष्ठ- 25
114. उज्वल वरदान चेतना का, सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं। जिसमें अनन्त अभिलाषा के, सपने सब जगते रहते हैं। -कामायनी लज्जा सर्ग, जयशंकर प्रसाद पृष्ठ- 102
115. इफ ऐनीथिंग इज ब्यूटीफुल इट इज ब्यूटीफुल फॉर नो अदर रीजन दैन दैट इट पारटैक्स ऑफ एब्सोलेट ब्यूटी। -डिक्शनरी ऑफ वड्, लिट्रेचर, जौसेफ टी. सिप्ले पृष्ठ-37
116. द ब्यूटी ऑफ ऐनी मैटीरियल ऑब्जैक्ट इज कॉनग्युऐन्स ऑफ पार्ट्स दूगैदर विद् ए सरटैन स्वीट्नैस ऑफ कलर्स.....बट हाऊ ग्रेट बिल बी द स्वीट्नैस ऑफ कलर व्हैन द राइट्स शैल शाइन फॉर लाइक द सन इन द किंगडम ऑफ दियर फायर।' - ए हिस्ट्री ऑफ ऐस्थेटिक्स, बी.बोसांक्विट , पृष्ठ- 135-136
117. ए हिस्ट्री ऑफ ऐस्थेटिक्स, बी. बोसांक्विट, पृष्ठ-177
118.'ब्यूटी इज द शाइनिंग ऑफ द आइडिया थ्रू मैटर',-व्हाट इज आर्ट टालस्टाय,पृष्ठ-100
119. 'सब्लीमिटी इज सो टू से, द इमेज ऑफ ग्रेटनैस ऑफ सोल'- ए हिस्ट्री ऑफ ऐस्थेटिक्स, बी. वोंसाक्विट, पृष्ठ-105
120.'ब्यूटीफुल इज दैट विच इज फिटिंग एण्ड अनस्वैर टू द एण्ड रिक्वारड क्रॉस ऐस्थेटिक'- हिस्टॉरिकल समरी, पृष्ठ- 255,
121. 'द ब्यूटीफुल इज दैट गुड विच इज प्लीजैक्ट, विकॉज,इट इज गुड'- ए हिस्ट्री ऑफ ऐस्थेटिक्स, पृष्ठ-63
122.पीपुल हैवनाऊ ऑनली टू रिग्रेट द फाल्म थ्योरी ऑफ ब्यूटी अकॉरडिंग टू विच इन्ज्वायमेण्ट इज कन्सीडर्ड टू बी द परपस ऑफ आर्ट एण्ड रिलीजियस परसैप्सन विल नैचुरली टेक इट्स प्लेस एस द गाइड ऑफ अवर टाइम'-व्हाट इज आर्ट, टालस्टाय, पृष्ठ- 265
123. मार्डन पेन्टर्स, वाल्यूम 1, रस्किन, पृष्ठ-25,

124.परफैक्ट टेस्ट इज द फैक्लटी ऑफ रिसीविंग, द ग्रेटैस्ट पॉसीबिल प्लेजर फ्रौम दोज मैटेरियल सोर्स बिच आर अट्रैक्टिव टू अवर मोरल नेचर इन व्योरिटी एण्ड परफैक्शन,
- मार्डन पेन्टरर्स, बाल्यूम-1 रस्किन, पृष्ठ - 25

125. ब्यूटी इज रैदर ए लाइट दैट प्लेस ओवर द सिमयरटी ऑफ थिंग्स दैन द सिमयरटी इट सैल्फ, एण्ड इन दिस कनसिस्ट्स इट्स चार्मवे आर द मोर लाइफ-लाइक स्टेटस द मोर ब्यूटीफुल थ्रू द अदरस बी सैमिट्रिकल. - द हिस्ट्री ऑफ ऐस्थेटिक्स, बी. वोसांक्विट, पृष्ठ-116

126. बट व्हेयर इज ब्यूटी लोकेटिड ? व्हेयर बट इन द वैरी एक्सपीरियन्स ऑफ इट्सैल्फ ? व्हैन इनडीड, मैन स्पीक ऑफ ब्यूटी दे मीन प्रैसीसिली, नॉट ए क्वालिटी-बट एन एफैक्ट- दे रिफर इन शार्ट जस्ट टू दैट इन्टैन्स एण्ड ओर ऐलीवेशन ऑफ सोल.....विच इज एक्सपीरियन्सट इन क्वैसन्सीक्वैन्स ऑफ कन्टैपप्लेटिंग ब्यूटीफुल
- लिट्रेरी क्रिटीज्म- ए सौट्र हिस्ट्री, विलियम के, विमसेट जे.आर. एण्ड क्लैन्थ ब्रुकस, पृष्ठ-479

127. दैट इज ब्यूटी फुल विच प्लीजिज ऑल विच प्लीजिज विथ आउट इन्ट्रैस्ट एण्ड विथ आउट ए कन्सैप्ट एण्ड प्लीजिज नैसेसरली।
-ए हिस्ट्री ऑफ ऐस्थेक्सि बी. वोसानक्विट, पृष्ठ- 45, और व्हाट इज आर्ट, टालस्टाय पृष्ठ-97

128. महादेवी वर्मा के काव्य में सौन्दर्य भावना, डॉ. गोविन्द पाल सिंह, पृष्ठ-13

129. ए हिस्ट्री ऑफ ऐस्थेटिक्स, बी. बोसाक्विट, पृष्ठ-177

130. ब्यूटी इज सच एन आर्डर एण्ड कन्सट्रैक्सन ऑफ पार्टस एज आइदर बाय द प्राइमरी कन्सट्यूशन ऑफ अवर नेचर बाय कसट्मर कैप्रिज इज फीटिड टू गिव प्लीजर एण्ड सैटिस्फैक्शन टू द सोल।
-ए हिस्ट्री ऑफ ऐस्थेटिक्स, बी. वोसान्क्विट, पृष्ठ- 178

131. ए हिस्ट्री ऑफ ऐस्थेटिक्स, बी. वोसन्क्विट, पृष्ठ- 184

132. ऐस्थेटिक्स, बेनीडिटो क्रौस, पृष्ठ- 97

133. ऐस्थेटिक्स, बेनीडिटो क्रौस, पृष्ठ- 8

134. ऐस्थेटिक्स, बेनीडिटो क्रौस, पृष्ठ- 111

135. ऐस्थेटिक्स, बेनीडिटो क्रौस, पृष्ठ- 97

136. द इन्व्वायमेण्ट ऑफ ए वर्क ऑफ आर्ट इज इन्व्वायमेण्ट ऑफ द डिपैक्सन एडवान्टेजियस टू द किंग। - आर्ट ऑफ सोशल लाइफ, जी. एल. प्लेखानोव, पृष्ठ-11

137. द ब्यूटी इज एन ऐक्बिलिसमैण्ट, एण्ड ऐडिड क्वालिटी इट पैन्ट्स द विजन ऑफ रियलटी टू द वैरी कोर एण्ड इट बिलाग्स टू व्हाटऐवर जॉय और सैटिसफैक्सन बी ड्राइव फ्रौम इट।
-द मेंकिग ऑफ लिट्रेचर, आर. ए. स्कॉट जैक्स, पृष्ठ- 334-335

138. महादेवी वर्मा के काव्य में सान्दर्य भावना, डॉ.गोविन्द पाल सिंह ,पृष्ठ - 15

षष्ठ परिच्छेद

गुप्त जी की सौन्दर्यानुभूति

षष्ठ परिच्छेद
गुप्त जी की सौन्दर्यानुभूति

भारतीय चिन्तन धारा में सौन्दर्य को अनेक रूपों में विश्लेषित करने की भरपूर चेष्टा की गई है। भारतीय सौन्दर्य चिन्तन केवल ऐन्द्रिक धरातलों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि मानसिक और आत्मिक पहलुओं की ओर भी उन्मुख है। भारत में परमात्मा को सौन्दर्यमय और आनन्दमय माना गया है , तथा सृष्टि के सौन्दर्य में परमात्मा के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति देखी गयी है।

महाकवि कालिदास ने उचित द्रव्य रूपी साधनों के द्वारा औचित्यपूर्ण उपनिबन्ध और सामंजस्य से सौष्ठवपूर्ण बाह्यरूप की योजना को अधिक महत्व दिया है -

सर्वोपमा द्रव्य समुच्चयेन यथा प्रदेशविनिवेशितेन।
सा निर्मिता विश्व सृजा प्रयत्ना देवस्य सौन्दर्य दिदृक्षमेव ॥[1]

इस प्रकार कालिदास की मान्यतानुसार कवि अथवा कलाकार सौन्दर्य की रचना अपनी मानसिक कल्पना के आधार पर करता है।

अत: यह सत्य है कि सौन्दर्य और उसके रसास्वादन दोनों का ही वर्णन और विश्लेषण असम्भव है। यह एक आन्तरिक अनुभूति का विषय है , किन्तु सौन्दर्य का चिन्तन की अनेक धाराओं (नैतिकता, धर्म, दर्शन, राजनीति) से सम्बन्ध होने के कारण इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है,अत: यह सौन्दर्य मूल्य मानव जाति के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं।

सौन्दर्य का एक महत्वपूर्ण अंग कला चेतना का मुख्य कार्य कलात्मक सृजन है और कलाबोध सौन्दर्य-चेतना का कार्य। इस प्रकार कला-चेतना सौन्दर्य चेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति है। अपनी इसी पूर्ण अभिव्यक्ति के आधार पर कवि या कलाकार अपनी उमंग रूपी समुद्र में डूबकर योग की समाधिस्थ अवस्था में पहुँचकर जब कविता या मूर्ति की रचना करता है तो उस रचना या कृति को वह सुन्दर मानता है। इस प्रकार सम्पूर्ण काव्य क्षेत्र कवि की सौन्दर्याभिव्यक्ति से अभिन्न होता है। इसी सौन्दर्य द्वारा ही मानव हृदय में आकर्षण उत्पन्न होता है। और धीरे-धीरे यही आकर्षण अनुरक्ति में बदल जाता है। सौन्दर्य की ओर आकर्षित होने पर मानव मन में सौन्दर्यानुभूति जागृत होती है। सौन्दर्यानुभूति आसक्ति और स्थाई रूप

गृहण करने पर अनुरक्ति का रूप धारण कर लेती है। इस सौन्दर्यानुरक्ति का परिणाम आनन्दात्मक होता है। भारतीय साहित्य में इसी आनन्द को रस कहा गया है।

कवि प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण वस्तु वर्णन अथवा विम्ब योजना के माध्यम से करता है। और कलात्मक सौन्दर्य की व्यंजना रस, अलंकार, वक्रोक्ति ध्वनि आदि के द्वारा व्यक्त करता है।

गुप्तजी ने भी अपनी काव्य रचनाओं में प्राकृतिक और कलात्मक सौन्दर्य के इन्ही प्रतिमानों के आधार पर अपने सौन्दर्य मूल्यों को प्रतिष्ठित किया है।

भारतेन्दु युग के प्रणेता भारतेन्दु ने हिन्दी काव्य क्षेत्र में सौन्दर्य अनुभूति के नवीन तथ्यों को उद्घाटित कर नायक- नायिका भेद के घने वन से निकाल कर सामाजिक, सांस्कृतिक व राष्ट्रीय जागरण के मंच पर प्रतिष्ठित कर हिन्दू राष्ट्रीयता को प्रोत्साहन दिया। गुप्तजी इसी राष्ट्रीयता की अन्तिम कड़ी हैं। गुप्तजी के समय में वैज्ञानिक चेतना का प्रसार हुआ है और स्वतन्त्रता आन्दोलन में तेजी आ गई साथ ही हमारी सोच भी बदल गई।

गुप्तजी की प्रथम कविता 'हेमन्त' का प्रकाशन 1905 में हुआ। किन्तु 1912 में भारत-भारती के प्रकाशन के बाद इन्हें कवि रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुयी। गुप्तजी ने अपनी इस रचना में भारत की वर्तमान स्थिति का सुन्दर सजीव चित्र खींचा है। साथ ही उन्होंने अतीत का तथा भविष्य का संदेश भी दिया है। देशवासियों को अज्ञानता, व्यसन, आलस्य, अकर्मण्यता को छोड़कर देशभक्ति की भावना में डूबकर सेवा करने की प्रेरणा देते हैं। सौन्दर्यानुभूति के यही वह नये क्षितिज हैं जहाँ नायिकाओं की एड़ियों में नहीं, विराट कर्मक्षेत्र में कूदे, अकर्मण्यता का त्याग किये साहसी उत्साही देशभक्त में सौन्दर्य दिखाई देने लगता है।[2] वे देशवासियों को विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की सलाह देते हैं तथा उन्हें देशी उद्योग-धन्धे खोलने की प्रेरणा देते हैं। किन्तु वे विदेशियों की नकल करने वालों पर व्यंग्य भी करते हैं।

अपने इन्हीं तथ्यों को लोगों तक पहुँचाने के लिये वे सोद्देश्य कविता को महत्व देते हैं। उन्होने भारत-भारती की भूमिका में लिखा है- 'मेरा विश्वास है जब तक हमारी बुराइयों की तीव्र आलोचना न होगी तब तक हमारा ध्यान उनको दूर करने के लिये समुचित रीति से आकृष्ट न होगा[3] अत: उन्होंने अपनी काव्य रचना इसी उद्देश्य को लेकर की है।

भारतीय संस्कृति के प्रति अनन्य निष्ठावान होने के कारण गुप्त जी व्यवस्था में परिवर्तन चाहते हैं, नये को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं, पर परम्परागत सांस्कृतिक प्रतिरूपों के भीतर ही।

उन्होने पौराणिक एवं ऐतिहासिक चरित्रों के माध्यम से पौराणिक बोध एवं मध्यकालीन बोध का भव्य एवं आत्मीयतापूर्ण चित्रण किया है। वक संहार, सैरन्ध्री, जयद्रथवध, प्रबन्ध काव्यों में महाभारत का कथानक है, जिसमें उदात्त मानव-मूल्यों के साथ पारम्परिकता एवं पौराणिक बोध का समन्वय है। उसकी सौन्दर्यानुभूति के साँचों में परम्परा से भिन्न नवीनता का समावेश नहीं है। इसी दृष्टि से वे व्यवस्था का समर्थन करते हैं। और जातीय गुणों की सीमा में मनुष्य को अपना विकास करने की प्रेरणा देते हैं। उनकी जातीयता की विद्रूपता पर दृष्टि नहीं जाती वे शूद्रों को सलाह अवश्य देते हैं कि वे अपने वर्ण से घृणा न करें, और सत्कर्मो से अपने को ऊँचा उठाने का प्रयास करें।'[4]

इसी प्रकार उन्होंने नारियों को जो मात्र उपभोग की वस्तु समझी जाती थी उसे ऊँचा उठाने तथा परम्परागत में ढाल कर उसे नारी होने की अपराध भावना से मुक्त कराना चाहते थे। उन्होने उसे आर्थिक रूप से स्वावलम्बी तथा स्वस्थ सामाजिक जीवन प्रदान करने का सार्थक एवं सफल प्रयास किया। वे नारी दुर्दशा के प्रति चिन्तित व संवेदनशील थे। उन्हें स्त्री की दुर्दशा से मुक्ति का रास्ता पतिपरायण होकर घर का हिसाब-किताब रखने और सीना-पिरोना सीखने में दिखाई देता था। साहित्य में उन्होने यशोधरा, उर्मिला जैसी उपेक्षित नारियों को इसीलिये प्रतिष्ठित किया।

गुप्तजी ने उन व्यक्तियों तथा स्थितियों की निन्दा की है जो पुत्रियों के जन्म को शोक का कारण मानते हैं। जिससे उसमें से 'अबला' का भाव समाप्त होकर नव-जागरण का असीम और अदम्य उत्साह व्यक्त हो सके। वे अपना कर्तव्य - पथ निर्भीक होकर स्वयं चुन सकें। गुप्तजी की सौन्दर्यानुभूति में परिवर्तन की छटपटाहट है। इसी कारण वे मिथकीय चरित्रों को मानवीय गुणों से परिपूर्ण करते हैं। गुप्तजी के राम मातृभूमि के प्रगाढ़ प्रेम में डूबे हैं - 'जन्म भूमि ले प्रणति और प्रस्थान दे', जैसे राम के ये कथन इसी के परिचायक हैं। राम अपनी जन्म भूमि को माता और स्वयं को उसका बालक मानते हैं। यह गुप्तजी की सौन्दर्यानुभूति है। अपने काव्य के अनेक स्थलों पर पात्रों के चारित्रिक गुणों के माध्यम से विकास के प्रश्न को उठाया है , और अनेक स्थलों पर तो सभी के कल्याण को महत्व दिया है।

गुप्त जी ने नायिका भेद वाली सौन्दर्यानुभूति के प्रति घृणा व्यक्त की है। ऐसी सौन्दर्यानुभूति में डूबे सांस्कृतिक कर्मियों और कलाकारों को देश का शत्रु माना है, उन्हें कुछ न लिखकर मौन रहने की सलाह दी है। वे अर्थोपार्जन के लिये कला सर्जना को घृणित कार्य

मानते हैं। क्योंकि ऐसी कला पाठक का सस्ता मनोरंजन करती है और समाज को गर्त में गिराती है।[5]

गुप्तजी के भाव एवं विचार सांस्कृतिक और पारम्परिक प्रतिरूपों के अन्तर्गत ही सौन्दर्य के नवीन मूल्यों की खोज करना चाहते हैं, जिसके कारण यथार्थ और प्रगतिशीलता के वे वृक्ष कट जाते हैं जिनकी खोज भारतेन्दु ने की थी और प्रेमचन्द्र जिसे पूरी जागरूकता से साथ आगे बढ़ा रहे थे।

मातृभूमि से अत्यधिक प्रेम होने के कारण गुप्त जी ने प्राकृतिक सौन्दर्य के भी अत्यन्त सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं। द्विवेद्वी युग के कवि होने के कारण गुप्त जी का मानस गाँधीवादी और आर्यसमाजी नैतिकता से परिपूर्ण था। द्विवेद्वी स्वंय नायिका भेद की कविता के स्थान पर उपदेशात्मक कविता के समर्थक थे अत: गुप्त जी की रचनाओं में भी नारी के ललित सौन्दर्य की योजना तक ही सीमित नहीं है बल्कि वे वैचारिक काव्य को भी समर्थन देते हैं। वे स्वंय लिखते हैं-'यदि हम किसी निबन्ध की एक-एक पंक्ति में रस की खोज करने लगेगें तो काव्य की तो बात क्या, काव्य को भी अपना स्थान छोड़ने के लिये बाध्य होना पड़ेगा। एक-एक पत्ते में फूल खोजने की चेष्टा व्यर्थ होगी और ऐसे फूलों का कोई मूल्य भी न रह जायेगा।[6] निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि गुप्त जी ने अपनी रचनाओं में स्वावलम्बन, श्रम, देश-प्रेम आदि सौन्दर्य मूल्यों को स्थान दिया है अत: उन्होंने अपने पात्रों की रचना करते समय उन्हें इसी प्रकार के भाव-विचारों एवं क्रिया कलापों में ढाला है।

गुप्त जी द्वारा की गई पात्र-सर्जना ही उनकी सौन्दर्यानुभूति की विशेषताओं को उद्घाटित करती है। प्रबन्ध काव्यों में 'साकेत' तथा अन्य खण्डकाव्यों में उन्होंने प्राचीन कथानकों का आधार लेकर भारतीय आदर्श को व्यक्त कर सौन्दर्यानुभूति को व्यंजित किया है।

मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी काव्य संरचना में सौन्दर्य के अनेक रूप चित्रण-दिव्य सौन्दर्य, प्राकृतिक सौन्दर्य, पुरुष सौन्दर्य, नारी सौन्दर्य, शिशु सौन्दर्य, बिम्ब विधान, तुलनात्मक सौन्दर्य तथा नख-शिख वर्णन आदि को व्यक्त किया है।

रूप चित्रण- रूप सौन्दर्य का अर्थ है मानव शरीर के विविध अंगों के सौन्दर्य और उसके रूप शृंगार का सौन्दर्य। अत: यह रूप सौन्दर्य शारीरिक गठन और अंगों की भाव भंगिमाओं से सम्बधित है। रीतकाल में रूप चित्रण को नख-शिख वर्णन के नाम से जाना जाता है। रूप सौन्दर्य क्षणिक होते हुये भी मनमोहक और मादक होता है। इसलिये मनुष्य समाज में स्त्री

और पुरुष सौन्दर्य के विषय को आकर्षण का विषय माना है तथा प्रेम भावना की प्रवृत्ति भी इसी रूप सौन्दर्य पर आधारित है। **डॉ. नलिनीकांत गुप्त जी** ने रूप-सौन्दर्य को परिभाषित करते हुये लिखा है- 'केवल आकारगत सौन्दर्य भी एक शक्ति है, पर ऊपरी शक्ति है वस्तु का जो स्वरूप स्वकीय आत्मा की अभिव्यक्ति से सुन्दर होता है उसमें लय-ताल की गम्भीर योग्यता होती है।'[7]

रूप-सौन्दर्य के अन्तर्गत अलौकिक सौन्दर्य- दिव्य और प्राकृतिक लौकिक सौन्दर्य- पुरुष सौन्दर्य नारी सौन्दर्य, शिशु सौन्दर्य का वर्णन किया जाता है जो कि निम्न प्रकार है -

अलौकिक सौन्दर्य- अलौकिकता का साहित्य में एक विशेष स्थान है। हिन्दी का भक्ति साहित्य ऐसी ही अलौकिक शोभा के अनूठे सौन्दर्य के वर्णनों से भरा पड़ा है। इसी कारण से हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल 'स्वर्ण काल' के नाम से जाना जाता है। इस भारत-भूमि में उत्पन्न प्रत्येक प्राणी सदियों से देवी-देवताओं के प्रति नत-मस्तक रहा है, और उसने उसकी अनुपम सत्ता को स्वीकार कर अपनी भावों से परिपूर्ण पुष्पाजंलि अर्पित की है। अत: गुप्तजी भी अपनी इस भाव-भागीरथी में अवगाहन के बिना नहीं रह सके हैं।

दिव्य सौन्दर्य- सौन्दर्य का दिव्य रूप मन को तुरन्त अभिभूत कर लेता है। दिव्य सौन्दर्य के प्रति साहित्य सर्जक सदा से विनत रहे हैं। श्रद्धालु रचनाकार अपने आराध्य के रोम-रोम में सौन्दर्य का दर्शन करता है। अवतारी मर्यादा पुरुषोत्तम राम तथा योगेश्वर कृष्ण के दिव्य सौन्दर्य की माधुरी से कौन व्यक्ति पुलकित और प्रभावित नहीं होता। संत कबीर के मत से यह दिव्य सौन्दर्य अनिवर्चनीय और अलौकिक है।[8] यही धारणा सभी संत कवियों में विद्यमान है।

गुप्त जी ने भी अपने निकष पर मर्यादा पुरुषोत्तम राम, जगज्जननी सीता, योगी नटवर कृष्ण-कन्हैया, शक्ति स्वरूपा देवी दुर्गा, पतित-पावनी गंगा आदि के उच्छल सौन्दर्य का उन्मुक्त कंठ से गान किया है।

गुप्त जी ने अपने काव्य में दिव्य सौन्दर्य का वर्णन दो रूपों में किया है-

(क) देव सौन्दर्य वर्णन

(ख) देवी सौन्दर्य वर्णन।

देव सौन्दर्य वर्णन - देव सौन्दर्य के अन्तर्गत गुप्त जी ने विशेषत: श्री राम और नटवर कन्हैया के ही सौन्दर्य को शब्दाकार रूप दिया है। उनके काव्य में व्यंजित देवों की दिव्यता, गौरव और औदात्य का विवेचन किया जा सकता है।

गुप्त जी ने नीलकमल सदृश्य तथा धर्म धुरी श्रीराम के शक्ति रूप का अनुपम तथा मनमोहक वर्णन किया है जो दृष्टव्य है-

क्षण भर में देखी रमणी ने
एक श्याम शोभा बाँकी
क्या शस्य श्यामल भूतल ने
दिखलाई निज नर झाँकी [9]

प्रस्तुत पक्तियों में गुप्त जी ने अपने हृदय में बसे अपने इष्ट श्रीराम की निर्मल शोभा का पंचवटी में अपने पात्र सूर्पनखा के द्वारा व्यक्त कर अपनी भावना को शब्दों का बड़ा निर्मल रूप प्रदान किया है।

'गुप्त जी ने राम को सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में प्रस्तुत करते हुये लिखा है-

हो गया निर्गुण-सगुण साकार है
ले लिया अखिलेश ने अवतार है।[10]

योगी कृष्ण की वंशी की धुन हृदय में प्रेम और समर्पण के भाव को उत्पन्न कर देती है। वह धुन सिर्फ गोकुल की गोपियों - ग्वालों को ही मदमस्त नहीं करती वरन गुप्त जी के हृदय में भी समाहित हो जाती है।

आइये गुप्त जी द्वारा वर्णित कृष्ण सौन्दर्य के कुछ अंशो पर दृष्टि डालें - प्रस्तुत पंक्तियों में अक्रूर जी कृष्ण के मनभावन रूप सौन्दर्य से मुग्ध हो कह रहे हैं-

क्या जाने क्या देख यहाँ पर
यह औत्सुक्य उमड़ता-
मानो अभी किसी झुरमुट से
वह है निकला पड़ता।
सखा साथ में वेणु हाथ में
ग्रीवा में वन माला
केकि-किरीट पीत-पट भूषित
रज रंजित लट-बाला। [11]

कुब्जा जब कंस के लिये फूल-माला, कस्तूरी चन्दन, इत्र आदि लेकर जाती है। तब राह में उन्हें कृष्ण मिलते हैं और कुब्जा उस कन्हैया के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहती है-

कसी क्षीण कटि, पीन वक्ष था,
कच कन्धरा ढँके थे;
स्वर्ण-वर्ण के उत्तरीय में
चित्रित रत्न टँके थे।
दुगने से भुज विशाल थे
पार्श्व छीलते-छीलते ;
गंड-द्युति-मण्डल से मण्डित
श्रुति कुँडल थे हिलते।
चिबुक देख फिर चरण चूमने
चला चित्त चिर चेरा ;
वे दो ओंठ न थे, राधे, था
एक फटा उर तेरा।
फिर भी उसके दन्त-हास में
मोती खो जावेगें ;
उस नासा को निरख कुटिल भी
सीधे हो जावेगें
देख लिया मैने सहस्त्र दल
ले उस मुख की झाँकी
वृद्ध न होकर बाल बनी थी
पलट प्रौढ़ता बाँकी।
उन काली आँखों में कैसी
उजली दृष्टि निहारी ;
जान पड़ा ब्रज-कुँज-बिहारी
मुझको विश्व-बिहारी। [12]
'मेरे मन में मूर्ति ढली थी
उसके साँचे में वह ;
खेल रहा था नारायण ही

नर के ढाँचे में वह।
मोर पंख भी मुकुट बना था
उसके अपनाने से
सिंह पुरुष बन जाय हाय ! वह
पीताम्बर पाने से।'[13]

प्रस्तुत पंक्तियों के द्वारा गुप्त जी ने अपने मन के भावों को कुब्जा के माध्यम से बड़े ही सुन्दर ढँग से कहलाया है। अत: यहाँ राम और कृष्ण का व्यापक प्रभाव गुप्त जी पर परिलक्षित होता है।

दैवी सौन्दर्य- दैवी सौन्दर्य के अन्तर्गत गुप्त जी ने सिर्फ जानकी जी और शक्ति रूपा दुर्गा के ही सात्विक सौन्दर्य की कल्पना की है।

पंचवटी में सूर्पनखा सीता की अनुपम शोभा को देखकर चौंक पड़ती है, यथा -

चौंक पड़ी प्रमदा भी सहसा
देख सामने सीता को
कुमुद्वती-सी दबी देख वह
उस पद्मिनी पुनीता को
एक बार ऊषा की आभा
देखी उसने अम्बर में
एक बार सीता की शोभा
देखी विगताडम्बर में।[14]

गुप्त जी ने अपने काव्य में भावानुकूल शब्दों का प्रयोग कर भावों की मूर्ति खड़ी की है और वह मूर्ति चलती फिरती-सी प्रतीत होती है। आइये, नव वधू सीता की अनुपम शोभा का वर्णन देखते चलें -

'थी अतिशय आनन्द युता, पास खड़ी थीं जनकसुता।
गोट जड़ाऊँ घूँघट की, बिजली जलदोपम पट की -
परिध बनी थी विधु मुख की सीमा थी सुषमा-सुख की।
भाव-सुरभि का सदन अहा ; अमल कमल-से रदन अहा !
अधर छबीले छदन अहा ! कुन्द-कली-से रदन अहा !

साँप खिलाती थी अलकें, मधुप पालती थी पलकें ;
और कपोलों की झलकें, उठती थी छवि की छलकें।
गोल-गोल गोरी बाँहें, दो आँखों की दो राहें।
भाग सुहाग पक्ष में थे, अंचल बद्ध कक्ष में थे।
थी कमला-सी कल्याणी, वाणी में वीणा पाणि।'[15]

निम्नलिखित पंक्तियों में कवि ने प्रकृति के उत्कृष्ट उपमानों द्वारा सीता की सौन्दर्य शोभा की निराली छवि प्रस्तुत की है-

अंचल पट कटि में खोंस , कछोटा भारे
सीता माता थी आज नई धज धारे।

** **

कर, पद, मुख तीनों अतुल अनावृत पट-से
थे पत्र-पुंज में अलग प्रसून प्रकट-से।
कंधे ढक कर कच छहर रहे थे उनके,
रक्षक तक्षक-से लहर रहे थे उनके।
मुख धर्म बिन्दुमय ओस-भरा अम्बुज-सा
पर कहाँ कंटकित नाल सुपुलकित भुज-सा।

** **

तनु गौर केतकी-कुसुम कली का गाभा,
थी अंग सुरभि के संग तरंगित आभा।
भौरीं से भूषित कल्पलता-सी फूली,
गाती थी गुन-गुन गान भान-सा भूली।[16]

दुर्गा शक्ति और तेज की देवी हैं, दैत्यों के वध हेतु जब देवी दुर्गा अवतार लेती हैं तो उस देवी दुर्गा का रूप वर्णन कवि ने बड़े ही निराले ढंग से प्रस्तुत किया है और दुर्गा को व्यापक रूप देने में सफल हुये हैं उसके कुछ उदाहरण द्दष्टव्य हैं-

देवी में दर्शित था सबका तेजः पूर्ण प्रताप ;
चरणों में विधि, हाथों में हरि मुख में हर का आप।
काल-रूप-मय था विशाल वह उनका केश कलाप,

अंगुलि और नखों में थी वसु- विभाकरों की छाप।
माँ के पीन पयोधर युग थे इन्दु-सुधा-परिपूर्ण
और अग्नि-तेजोमय उनके दृग थे विषम विघूर्ण। [17]

अणु-अणु से हो गया अचानक कितना उच्च स्तूप ?
पुण्य-स्तम्भ पाप पशुओं की बलि का अहवर यूप।
कैसा सुन्दर, कैसा भीषण, था देवी का रूप।
इधर अमृत की चारु चन्द्रिका, उधर प्रलय की धूप !
जिसका पक्ष करें वे कुछ भी, उसका भक्षक कौन ?
कुछ विपक्ष में हो जिसके उसका रक्षक कौन ? [18]

वाम हस्त में महिम खड्ग था, दक्षिण में करवाल,
पर दक्षिण कर और खड्ग था नीचा ही उस काल।
वाम चरण से दैत्य दबा था, दक्षिण से भूचाल ;
देह लता कुछ झुकी हुयी थी, पर ऊँचा था भाल।
प्रकट वीरता अड़ी खड़ी थी पकड़े पाशव-शृंग ;
सबका मन हो उसी प्रौढ़तम पाणि-पद्म का भृंग। [19]

'मन में मृदुता कर में दृढ़ता तेरी रहे सदैव;
शेष समय पर किन्तु तोष की धारा बहे सदैव।
यह कह कर भव-सागर-मग्नों की बांहे गहे सदैव,
यह मुख अभय अमृत पुत्रों की वाणी कहे सदैव।
रहें सभी हम तेरे बल से सबल और सम्पन्न,
उपजे तेरी दया दृष्टि से इस अवनी पर अन्न। [20]

गुप्त जी ने मंगलकारिणी तथा पतित पावनी गंगा की स्तुति भी पूर्ण श्रद्धा और तन्यमता के साथ की है। गंगा के निर्मल पवित्र जल की लहरों से उठती कल-कल ध्वनि से उनका मन अभिभूत हो कह उठता है। -

पूरी निर्मल नीर से बह रही थी पास ही मालिनी,
वृक्षाली जिसके प्रतीर पर थी भूरि-प्रभा शालिनी।
लीला सी लहरें अनेक उठती थीं लीन होती थीं तथा-
मीनाक्षी सरिता कटाक्ष करती भ्रूक्षेप से थी यथा।[21]

गंगा के तट पर श्रद्धालुओं की भीड़ इकट्ठी होने पर वे कहते हैं-

गंगादि नदियों के किनारे भीड़ छवि पाने लगी,
मिलकर जल ध्वनि में जल ध्वनि अमृत बरसाने लगी।
सस्वर इधर श्रुति-मन्त्र लहरी उधर जल लहरी अहा,
तिस पर उमंगों की तरंगें स्वर्ग में अब क्या रहा।[22]

गंगा के समान ही यमुना का भी सौन्दर्य उन्होंने अपने काव्य में यत्र-तत्र बिखेरा है-

यह वृन्दावन, यह वंशीवट,
यह जमुना का तीर हरे!
यह तरते तारम्बर वाला,
नीला सुनिर्मल नीर हरे।
यह शशि रंजित सितघन व्यंजित,
परिचित त्रिविध समीर हरे।[23]

इस प्रकार गुप्त जी ने दिव्य ज्योति सीता, दुर्गा, मंगलकारिणी गंगा-यमुना के सौन्दर्य का वर्णन कर अज्ञान रूपी अधंकार को दूर किया है। माँ सीता की शरण में गुप्त जी प्रतिपल समर्पित हैं।

देव-देवियों के सौन्दर्य की इन छटाओं को देखकर यह सहज ही कहा जा सकता है कि गुप्त जी एक आस्तिक साहित्यकार थे। देवताओं के प्रति उनका विश्वास था, वे उनमें श्रद्धा रखते थे और यही श्रद्धा-भावना पूरी निर्मलता के साथ उनके काव्य में व्यक्त हुयी है।

प्राकृतिक सौन्दर्य:- चिर नवीना, अलौकिक जैसे अनेक रूपा को प्रकृति के अनेक हृदयाकर्षी रूप है जो भिन्न-भिन्न रूपों को धारण कर मानव को बरबस अपनी ओर आकृष्ट करता है। अत: यह कहा जा सकता है कि प्रकृति मानव की चिरसंगिनी है। प्रकृति ने अपने आपको मनुष्य के सुख-दु:ख में समर्पित कर उसके क्षण-क्षण को आनन्दमय बना दिया है।

गुप्त जी, प्रकृति को दिव्य और अलौकिक रूप का ही एक अंग मानते हैं। उन्होने प्रकृति

को अपने काव्य में नारी रूप में चित्रित किया है। उन्होने प्रकृति को ममता की सजल स्नेहमयी अभिव्यक्ति प्रदान की है:-

'सरल तरल जिन तुहिन कणों से
हँसती हर्षित होती है ;
अति आत्मीया प्रकृति हमारे
साथ उन्हीं से रोती है।
अनजानी भूलों पर भी वह
अदय दण्ड तो देती है,
पर बूढ़ों को भी बच्चों सा
सदय भाव से सेती है।'[24]

मनुष्य प्रकृति को सदैव अपने अनुरूप देखता है इसी कारण उसे प्रकृति कभी, शान्त, कभी कठोर, कहीं वियोगिनी तथा कहीं अनुरागनी सी प्रतीत होती है। अत: प्रकृति भी मनुष्य स्वभाव के अनुरूप ही संगति करती दिखाई पड़ती है। प्रकृति सत्यं, शिवं, सुन्दरं, का आगार है और मानव भी सत्य और सौन्दर्य का पुजारी, अत: इन दोनों के मिलन से शिवत्व की गंगा स्वयं ही प्रवाहमान हो उठती है। ऋग्वेद की ऋचाओं में प्रकृति के विराट रूप का वर्णन मिलता है। इसी तरह सांख्य दर्शन में प्रकृति को सृष्टि[25] बताया गया है।

गीता में प्रकृति को माया का रूप देते हुये कहा है-

-'प्रकृते: क्रियामाणानि गुणै: कर्मणि सर्वश:।'[26]

कालिदास ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ रघुवशंम् में 'शाश्वत सत्य' तथा 'प्रज्ञा' बताया है। और मेघदूत में उसी प्रकृति को उन्होंने 'विचार शून्य' कहा है।

-'मरण प्रकृति शरीरिणां विकृति जीवितमुच्यते बुर्धः।'[27]

- रघुवंशम्

-'प्रवर्त्तता प्रकृति हिताय पार्थिव: सरस्वती श्रुति महती महीयान्।'[28]

- मेघदूतम्

-'कामार्त्ता हि प्रकृति: कृहणाश्चेतना चेतनेषु।'[29]

- मेघदूतम्

तथा भर्तृहरि ने उसे 'स्वभाव' के रूप में अपनी स्वीकृति प्रदान की है -

-'प्रकृति सिद्धमिदं हि महात्ममाम्।'[30]

अत: **डॉ. किरण कुमारी गुप्ता** के शब्दों में प्रकृति के अर्थ को विश्लेषित करते हुये कहा जा सकता है कि-'स्वाभाविक अन्त:प्रकृति के अन्तर्गत वही वस्तुयें आती हैं जिसे मानव के हाथों मैने सजाया और सम्भाला है व जो स्वंय ही नैसर्गिक छटा से आकर्षित करती हैं।'[31]

गुप्त जी का प्रकृति चित्रण- भारतीय साहित्य में प्रकृति का सौन्दर्य-विधान अनेकानेक रूपों में विद्यमान है। प्रकृति से विशेष अनुराग होने के कारण उन्होंने उसे अपने काव्य का एक विशेष अंग बनाकर अंगीकार किया है। मन को मुग्धावस्था तक पहुँचाने वाली प्रकृति की निराली और मनोरम छवियों को उन्होने अपने काव्य में उतारा है। जो चित्त को उल्लास और उत्साह से परिपूर्ण रखता है। गुप्त जी की लेखनी ने चाहे फूल हों या काँटे, सागर या सरिता, रात हों या दिन, और चाहें ऋतुयें ही क्यों न हो सभी को यथार्थ रूप प्रदान किया है। उनके काव्य में विद्यमान प्रकृति चित्रण को देख कर ऐसा प्रतीत होता है जैसे कवि का उससे गहरा सम्बन्ध रहा हो क्योंकि उस प्रकृति सुन्दरी की स्वाभाविकता कहीं भी नष्ट नहीं हुयी है। अत: गुप्त जी के प्रकृति चित्रण को निम्नलिखित खण्डों में बाँटा जा सकता है-

1. आलम्बन रूप
2. उद्धीपन रूप
3. संवेदात्मक रूप
4. वातावरण निर्माण का रूप
5. प्रतीकात्मक रूप
6. अलंकार रूप
7. लोक शिक्षा का रूप
8. मानवीकरण का रूप
9. दूत या दूती रूप

इन खण्डों का विस्तृत विवेचन हम अपने सप्तम अध्याय में करेगें जिनसे यह स्पष्ट होगा कि गुप्त जी के काव्य में प्रकृति अनेकानेक रूप में विद्यमान है, और कवि ने उसमें वर्णनानुरूप ही शब्द चयन और रस-विधान को स्पष्ट किया है। तात्पर्य यह है कि कवि ने प्रकृति के कण-कण में निहित सौन्दर्य को परखा ही नहीं बल्कि बड़ी सूक्ष्मता और कल्पना के माध्यम से उसे आकार रूप भी प्रदान किया है।

लौकिक सौन्दर्य- लौकिक सौन्दर्य वास्तव में वस्तुगत सौन्दर्य ही है किन्तु इसका प्रमुख आकर्षण भोग और विलास है। अत: इसके अन्तर्गत वे चित्रण आते हैं जिनमें ऐन्द्रिय आकर्षण होता है। जिसमें पुरुष सौन्दर्य, नारी सौन्दर्य, शिशु सौन्दर्य प्रमुख है। आइये, अब इनके विस्तृत विवेचन पर दृष्टि डालें :-

पुरुष सौन्दर्य - पुरुष की प्रकृति गाम्भीर्य होती है। उसकी देहयष्टि, पुष्ट ,सुगठित होती है। वक्ष प्रशस्त, भुजा-प्रगल्भ, ललाट उन्नत और आकर्षक मुख मण्डल होता है। साहित्य में नारी सौन्दर्य की तुलना में पुरुष सौन्दर्य का वर्णन प्राय: कम ही किया गया है। किन्तु फिर भी गुप्त जी ने स्वस्थ, सुन्दर और जन-मन रंजक पुरुष सौन्दर्य का वर्णन अपने काव्यों में अनेक स्थलों में व्यक्त किया है- आइये कुछ उदाहरणों पर दृष्टिपात करते चलें-

राजा विजय सिंह जब अपने सरदार देवी सिंह से बार-बार यह पूछते हैं कि ' यदि तुम रूठ जाओ तो क्या करोगे 'इस पर वह शान्त मुद्रा में मौन हो जाता है। उस शान्त, गौर वर्ण और गम्भीर मुद्रा को गुप्त जी ने इन पंक्तियों में कितने सुन्दर ढंग से कहा है-

'लाली दौड़ गई सौम्य शान्त गौर गात्र में,
बदन हुआ गम्भीर, किन्तु रहे मौन वे।'[32]

पुरुष के व्यक्तितव की सबसे बड़ी कसौटी वीरता है अत: जब सवाई सिंह अपने बाबा देवीसिंह और पिता जैत सिंह की मृत्यु के बाद राजा विजय सिंह के दरबार में पहुँचता है तब उसके शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन इन पंक्तियों में जीवन्त हो उठा है-

'बदन गम्भीर था,
उठता शरीर मानो अंगों में न आता था,
वक्ष स्थल देख के कपाट खुले जाते थे,
मरने मारने ही को मानो कटि थी कसी,
शोभित सुखड्ग उसमें था खरे पानी का,
पर्तली पड़ी थी उपवीत तुल्य कन्धे में,
उसमें कटार खोंसी, जिसकी समानता.
करने में भौहें भव्यभाल पर थीं तनीं !
छू रहा था बाँया हाथ बढ़कर जानु को,
दायें हाथ में थी साँग पीठ पर ढाल थी ;

तोड़े के स्वरूप में था सोना पड़ा पैरों में ;

आकृति ही देती थी परिचय प्रकृति का।'[33]

राज्य प्राप्ति के लिये जब औरगंजेब और दारा के युद्ध में जोधपुर के महाराज जसवन्त सिंह ने दारा का साथ दिया किन्तु कुछ कारणों से औरगंजेब की विजय हुयी और राजा जसवन्त सिंह भी युद्ध से विगत होकर जोधपुर पहुँचे गये। हारकर वापस आने पर महारानी सिसौदिनी ने राजाजी को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होने राजा को उनके वीरत्व और सुगठित देहयष्टि की याद दिलाई है-

'विशाल वक्ष स्थल, दीर्घ भाल,

अजानु लम्बे युग बाहु-जाल।

थे देखते हो भरके तुम्हारे,

ज्यों चित्र में अंकित अंग सारे।'[34]

मद्य जिन्हें गौतम बुद्ध का एक साधनावतार माना जाता है। गुप्त जी ने अपने काव्य अनघ में मद्य को एक समाज सेवक के रूप में प्रतिष्ठित किया है। मगध देश की राजधानी मचलग्राम की जनता तथा उनके समर्थक उनके शान्त, गम्भीर तथा सेवक रूप का वर्णन करते हुये कहते हैं-

'कहें हम चाहे जो कुछ फिर भी,

मूर्ति है इसकी शान्त रुचिर भी।

शिरोपरि चिकुर-जाल शोभन है,-

सुधा-मधु-चक्र लोक-लोभन है।

मुकुरता देखो तो इस मुख की-

पड़ी है छाया-सी पर दुःख की।

शुष्क आभा ही नहीं दृगों में,

सरसता इतनी कहाँ मृगों में।

प्रकृति में क्या ही भोला पन है।

आर्द्र उर में ज्यों ओलापन है।

गौर तनु-कान्ति सौम्य शुभ रुचि है,

सहज ही दीख रहा यह शुचि है।

हाथ हैं लम्बें-लम्बें कैसे,

सुलभ ऊँचे फल भी जैसे।

धीर-गीत त्रिविध पवन तकता है,

ताप तलवे भी छू सकता है।'[35]

अपने ही राज्य के कर्मचारियों द्वारा सोमनाथ दर्शन हेतु कर लेने से दुःखी होकर प्रसिद्ध जयसिंह की माँ मीलनदे, जब अपनी सोमनाथ यात्रा बीच में ही अधूरी छोड़ कर वापस हो जाती है तो राह में उन्हे उनका पुत्र जयसिंह मिलता है। उस वीर जयसिंह की ओजस्विता से परिपूर्ण सम्पूर्ण व्यक्तित्व की एक झलक प्रस्तुत है-

-'युवक उदार-वीर उदयाद्रि के

शिखर समान,चित्रभानु-सा किरीट था,

सहज प्रसन्न-मुख, लोचन विशाल थे,

भाल पर भौहें दृढ़ निश्चय की रेखा-सी।

लाल-लाल होठों पर सूक्ष्म मसि-लेखा थी।

किन्तु पड़ती थी दृष्टि जाके वहीं उल्टी,

हेतु हो रहा था आप डीठ का डिठौना ही।

पीन वृष स्कन्ध, क्षीण सिंह-कटि,साहसी

दीर्घ हस्ति-हस्त, मानो पशुता के गुण्य की

देव-साधना का वह पुण्य नरक्षेत्र था।'[36]

राजा जय सिंह जब अपनी माँ के कहने पर अपने दुश्मन अर्णोराज को बन्दी बना कर राज भवन में लाता है तब अर्णोराज राजमाता को प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद लेता है तभी मंत्री आकर राजातिथि रूप में गढ़ में निवास की व्यवस्था के विषय में बताता है तब सहानुभूति के साथ सब उसे देखते हैं। परन्तु काँचनेद आँखें भर आने के कारण ठीक प्रकार से उस राजबन्दी राजा को देख नहीं पाती है और एकान्त में उसके विषय में सोचती है-

-'कितना अभीत वह, कितना विनीत है।

कैसा भद्र, कैसा भला, और कैसा भोला है।

दीप्त भाल, काले बाल, नयन विशाल क्या,

भृकुटी कुटिल और नासा क्या सरल है।

लाल-लाल होंठ हँसना ही सदा चाहते ,

किन्तु बीच-बीच में कठोरता झलकती।
हाथ लम्बे-लम्बे और वक्ष चौड़ा-चौड़ा है ;
डग हैं अडग जैसे धरती दबाये से।
होकर अकेला भी विपक्षियों के बीच में,
कहता है कैसे अनायास बात अपनी ;
हारा, किन्तु आन बान हारी नहीं उसने।
वाणी अर्थ-पूर्ण अहा ! स्वर क्या गम्भीर है,
मानो किसी अन्य की अपेक्षा नहीं उसको;
मानो परिपूर्ण वह आप अपने में ही ?' [37]

एकलव्य एक भील युवक है जो गुरु द्रोण के पास धनुर्विद्या की शिक्षा हेतु गया था परन्तु गुरु ने उसे क्षत्रिय न होने के कारण शिक्षा से वंचित कर दिया था तब उसने जंगल में आकर गुरु की प्रतिमा स्थापित की तथा धनुष-बाण की शिक्षा प्राप्त करने लगा।

तभी एक दिन गुरु द्रोण अपने शिष्यों कौरव और पाण्डवों के साथ जंगल में जाते हैं और वहाँ एक नवयुवक आकर गुरु को प्रणाम करता है जिसके आवयविक सौन्दर्य की प्रस्तुति गुप्त जी ने निम्न प्रकार से की है-

'कैसी गँसी थी माँस-पेशियाँ,श्याम चिकना चर्म,
बना आप ही था जो अपना जन्मजात वर वर्म।
भाल ढंका-सा था बालों में, ढाल बना था वक्ष,
घर्षित-सी भुजदण्डों से थे, उत्कर्षित युग कक्ष।'[38]

जब हस्तिनापुर के कुमारों कौरव और पाण्डवों की शिक्षा-दीक्षा समाप्त हो जाती है तब उनकी परीक्षावधि आती है। उस परीक्षा में सभी कुमार अपने को श्रेष्ठ साबित करने के लिये तत्पर हैं। मैदान सजाया जाता है। राजा-रानी, पितामह, कुन्ती, विदुर, प्रजाजन सभी उस प्रांगण में उपस्थित हैं। अन्त में गुरु द्रोण वहाँ शिष्यों के साथ आते हैं। उनके मुख-मण्डल की चमक को देखकर सभी उनकी ओर देखने लगते हैं-

'जब शिष्यों के संग आर्य आचार्य पधारे,
खिंच-से उनकी ओर गये दर्शक-दृग सारे।
श्वेत केश थे, श्वेत वसन भी थे गुरुवर के,

मूर्तिमन्त वे स्मरण -रूप - से थे शंकर के।'[39]

गुप्त जी का व्यक्तित्व यदि ओज और गर्व से दीप्त था तो साथ ही साथ कोमल और मधुर भावनाओं से युक्त भी था। अपनी इन्हीं भावनाओं के कारण गुप्त जी ने अपने काव्य में वर्णित पुरुष पात्रों को सात्विक और उज्ज्वल रूप में प्रस्तुत किया है। जो वास्तव में बहुत ही सहज बन पड़ा है।

नारी सौन्दर्य- नारी का सौन्दर्य पुरुष से विशिष्ट होता है। वह सुकोमल होती है साथ ही ममता स्नेह से भरी रहती है। रीतिकालीन कवियों ने अपने घिसे-पिटे उपमानों के द्वारा उसके सौन्दर्य रूप का वर्णन किया किन्तु आधुनिक युग के कवियों ने उस परिपाटी को तोड़ कर नारी के प्रति अपनी दृष्टि बदल कर उसे सहधर्मिणी, सहकर्मिणी और स्वतन्त्र सत्ता के रूप में स्वीकार किया। अत: गुप्त जी ने भी नारी की स्वयं सत्ता को स्वीकारते हुये अनेक उपेक्षित नारियों को अपने काव्य में स्थान देकर उन्हें सम्मान दिया है। आइये, उन्हीं नारी पात्रों के रूप-वर्णनों पर अपनी दृष्टिपात करें-

-' अरुण पट पहने हुये आह्लाद में,
कौन यह बाला खड़ी प्रासाद में ?
प्रकट मूर्तिमती उषा ही तो नहीं,
कान्ति की किरणें उजाला कर रहीं।
यह सजीव सुवर्ण की प्रतिमा नयी,
आप विधि के हाथ से ढाली गयी।
कनक लतिका भी कमल-सी कोमला,
धन्य है उस कल्प शिल्पी की कला।
जान पड़ता नेत्र देख बड़े-बड़े,
हीरकों में गोल नीलम हैं पड़े,
पद्म रागों से अधर मानो बने,
मोतियों से दाँत निर्मित हैं घने।'[40]

प्रस्तुत पद्यांश में गुप्त जी ने सौम्य और अलंकृत शब्दों के द्वारा उर्मिला की रूप माधुरी को प्रस्तुत किया है।

पाण्डव जब अज्ञात वास के समय राजा विराट के यहाँ नौकर भेष में रहते हैं तब द्रौपदी की

सुन्दरता मलिनवेश धारण करने पर भी छिप नहीं पाती-

छिपी हुयी भी प्रकट रही मानो पांचाली ;
छिप सकती थी कहाँ कान्ति की कला निराली।
वह अंगों की गठन और अनुपम अलकाली,
जा सकती थी कहाँ चाल उसकी मतवाली ?
काली-काली आँखें बड़ी कानों से थी लग रहीं,
और रूप की ज्योतियाँ स्वाभाविक थीं जग रहीं। [41]

मूढ़ मदान्ध कीचक सैरन्ध्री की रूप प्रशंसा करते हुये कहता है-

'हे अनुपम आनन्द-मूर्ति, कृशतनु, सुकुमारी,
बलिहारी यह रुचिर रूप की राशि तुम्हारी।'[42]

शकुन्तला के स्वाभाविक रूप का वर्णन कवि ने बड़े ही स्वाभाविक ढंग से किया है। आइये, उसकी कुछ झाँकी देखें -

'उसके रूप-रंग-सौरभ से
महक उठा वह वन सारा;
जीवन की धारा थी मानो
मंजु मालिनी की धारा।'[43]

'उसकी भोली-भाली आकृति
एक बार जिसने देखी-
मानो सुर-गुरु-कन्या ही की
अनुपम छवि उसने लेखी' -[44]

'फूलों के गहने पहने वह
विपिन वासिनी सुकुमारी-
उतरी थी भूतल पर मानो
दिव्य लोक की नव- नारी। '[45]

राजा दुष्यन्त आश्रम में शकुन्तला की अलौकिक सुन्दरता को देखकर मुग्ध हो जाते हैं-

'कर रही थी जो अलौकिक रूप-रस की दृष्टि,
जा पड़ी सखियों समेत शकुन्तला पर दृष्टि।
जो कि आश्रम वाटिका में सींचती थी नीर,
नव्य यौवन पूर्ण जिसका था सुभव्य शरीर।'[46]

कामिनी हिडिम्बा के सुन्दर रूप को देखकर महाबली भीम चौंक कर अनिमेष उसे देखते रह जाते हैं-

सुन पड़ी राग की नई सी टेक उनको,
दीख पड़ी सुन्दरी समक्ष एक उनको।
उत्थित वसुन्धरा से रत्नों की शलाका थी,
किंवा मानो हुयी मूर्तिमती राका थी।
अंग मानो फूल, कच मृंग हरी शाटिका,
कर-पद-पल्लवा थी जंगम-सी वाटिका।
ओस मुस्कान बन ओठों पर आई थी,
सुरभि तंरग वायु मण्डल में छाई थी।'[47]

युधिष्ठिर अपनी माँ कुन्ती से हिडिम्बा के रूप गुण शील की प्रशंसा करते हुये कहते हैं-

'आई यातु वंश में हिडिम्बा किसी भूल से,
वैसे संस्कार वह रखती है मूल से।
स्त्री का गुण रूप में है और कुल शील में,
पद्मिनी की पंकजता डूबे किसी झील में।'[48]

गुप्त जी नारी के शील-सौन्दर्य से काफी प्रभावित थे अत: उसके गरिमामय गुणों का बखान करते हुये भाव विभोर हो उठते हैं-

'लाल सिंह नरेन्द्र के सम्पूर्ण सद्गुण संयुता,
थी हिमाचल नन्दिनी-सी एक अति प्यारी सुता।
ज्यों अलौकिक रूप में थी वह विशेष प्रभावती,
थी विदित त्यों ही सुहृदया शील-मूर्ति महामती।'[49]

इन्द्र की पत्नी शचि की एक झलक मात्र पड़ने से ही राजा नहुष का हृदय व्यथित हो जाता है, और वे सोचने लगते हैं-

'अहा कैसी तेजस्विनी आभिजात्य अमला,
निकली सुरसरि से यों क्षीर से जो कमला।'[50]

विधवा तपस्वनी प्रौढ़ नारी की सुन्दरता के उन्मीलन का दृश्य निम्नलिखित पंक्तियों में प्रस्तुत है-

'भीतर परन्तु उदासीनता की मूर्ति है,
सोलंकी शशांक- स्वर्गवासी कर्ण देव की
वर्षीय-सी विधवा, तपस्वनी-सी शोभनी ;
बैठी है अकेली, खड़ी आड़ में हैं दासियाँ।
शान्त कान्त रूप मुख प्रौढ़ पम्ब बुद्धि से,
दीप्ति तथा-दीप, सौम्य नासा शिखा-रूपणी।'[51]

नारियाँ स्वाभाविक रूप से सुन्दर होती हैं। आभूषणों से रहित होने पर भी उनमें निसर्गोज्ज्वलिमा विद्यमान रहती है। यह तथ्य निम्न पंक्तियों को पढ़कर अक्षरश: प्रतीत होता है:-

गगन सिन्धु ने दिया उन्हें यह रत्न विशेष,
सुर भी जिसको देख रह गये अनिमेष।
ठहर गई थी लहर चपला की-सी-कान्ति,
मानो कान्ता न थी, किन्तु कान्ता की भ्रान्ति।'[52]

गुप्त जी सौन्दर्य के पारखी हैं। उनके पारखी मन ने नारी-रूप-सौन्दर्य की व्यंजना सुकुमारता, मृसणता, लालिमा, उज्ज्वल आभा, मधुरता, शील आदि के साथ व्यंजित की है।

शिशु-सौन्दर्य- शिशुओं का भोलापन शिशु-सौन्दर्य का अनिवार्य हिस्सा है और इसकी सहज अभिव्यक्ति शिशुओं में होती है। शिशु के सम्पूर्ण सौन्दर्य में उसकी मुस्कान ही अधिक मोहक और हृदयग्राही होती है।

गुप्त जी ने भी बालक की चपलता, कौतुक, मनोविनोद, कोमलता, मुस्कान,अटपटी चाल, तोतली भाषा आदि की मधुर झाँकी अपने काव्यों में चित्रांकित की है :-

कौतुक और चपलता-

'नित नये कौतुक से होने लगे घर में,
चकित चमत्कृत थे माता-पिता देख के।
शिशु की चपलता के ऊपरी उलाहने,

सहते यशोदा-नन्द-से थे रीझ-खीझ के।
एक दिन छोड़ कर मोदक, विनोद से
खाने लगे मिट्टी प्रभु माँ ने कहा-'यह क्या ?'
मूल मिट्टी में ही नहीं माँ क्या सब द्रव्यों का ?
है क्यों नहीं बेटे, किन्तु अखिल पदार्थ जो,
हमको खिलाती है, उसी को हम खाँय क्या ?
हँस प्रभु लिपट गले से गये माता के।'[53]

तोतली भाषा और भोलापन-

'खिला हुआ मुख कंज मंजु दशनावली
अरुण अधर दशावली,कलकण्ठ तोतली काकली।
कोमल केश कलाप धन्य विधु चातुरी ;
मुग्ध हुये नृप देख बाल छवि-माधुरी।'[54]

कोमलता -

'यह छोटा-सा छोना
कितना उज्ज्वल कैसा कोमल, क्या ही मधुर सलोना।
क्यों न हँसू, रोऊँ मैं, लगा मुझे यह टोना ;
आर्य पुत्र, आओ सचमुच मैं दूँगी चन्द्र खिलौना।'[55]

अटपटी चाल-

'किलक अरे, मैं नेक निहारूँ,
इन दातों पर मोती वारूँ।
पानी भर आया फूलों के मुँह में आज सवेरे,
हाँ गोपा का दूध जमा है राहुल ! मुख में तेरे।
लटपट चरण, चाल अटपट-सी, मन भाई मेरे ;
तू मेरी अँगुली धर अथवा मैं तेरा कर धारूँ ?
इन दाँतो पर मोती वारूँ।'[56]

मनोविनोद-

'ठहर, बाल गोपाल कन्हैया।

राहुल राजा भइया।
कैसा धारूँ, पारूँ तुमको हार गई मैं दैया ;
सद्‌द दूध प्रस्तुत है बेटा, दुग्ध फेन सी शैया।
तू ही एक खिवैया, मेरी पड़ी भँवर में नैया।
आ मेरी गोदी में आजा, मैं हूँ दुखिया भैया ?
भैया है तू- अथवा मेरी दो थन वाली गैया ?
रोने से यह रिस ही अच्छी तिली लिली ता थैया।'[57]

हठ-

'मेरे बेटा भैया-राजा,
उठ मेरी गोदी में आजा,
भौंरा नाचे बजे हाँ बाजा।'[58]

इस प्रकार गुप्त जी को पुरुष, नारी, और शिशु सौन्दर्य की सरलता, सहजता, पवित्रता, निर्मलता ने आकर्षित किया है जिसे उन्होने अपने काव्य में भलीभांति प्रदर्शित किया है।

बिम्ब विधान- बिम्ब विधान कवि की सौन्दर्य योजनाओं को इंगित करता है। बिम्बों के द्वारा ही काव्य की उत्कृष्टता और उसके मानदण्ड को मापा जाता है। बिम्ब मानस-पटल पर एक खण्ड प्रस्तुत करता हुआ भावों को मूर्तता प्रदान करता है।

तात्पर्य यह है कि जिसका सम्बन्ध मानव के व्यावहारिक जीवन तथा शाश्वत जगत् से है, जो कवि की सजीव अनुभूति वासना एवं भावना से परिपूर्ण होते हैं और गत्यात्मक, सजीवता,सुन्दरता, एवं रसात्मकता के कारण जीते-जागते, चलते फिरते एवं बोलते-चालते जान पड़ते हैं[59] बिम्ब कहलाते हैं।

साहित्यकार पाठक को भाव जगत की सामान्य भूमि पर लाने के लिये इन्हें साधन के रूप में अपनाते हैं। अत: वह काव्य-रचना की एक प्रक्रिया मात्र हैं। इस सन्दर्भ में **डॉ. नगेन्द्र** का कथन उल्लेखनीय है-'बिम्ब काव्य का अत्यन्त प्रभावी माध्यम है और इस लिये काव्य के सन्दर्भ में उसका मूल्य असंदिग्ध है, परन्तु वह स्वतन्त्र नहीं है......माध्यम ही हैं, प्राण तत्व नहीं हैं, काव्य का सहकारी मूल्य अवश्य है प्राथमिक मूल्य नहीं है।'[60]

बिम्ब को चित्र की संज्ञा देने वाले **सुमित्रानन्दन पंत** का कथन है कि -'कविता के लिये चित्र भाषा की आवश्यकता पड़ती है। उसके शब्द सस्वर होने चाहिये, जो बोलते हों, सेब की

तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण झलक पड़े जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सके, जिससे झंकार में चित्र और चित्र में झंकार हो।'[61]

पाश्चात्य विद्वान भी बिम्ब विधान का प्रयोग कविता, कहानी, नाटक में बहुत खूबसूरती से करते हैं। बिम्ब को अंग्रेजी में इमेजरी कहा जाता है, अत: जिस कवि या लेखक की इमेजरी जितनी उच्च और उन्नत होती है वह उतना ही महान् माना जाता है। काव्य के इस बिम्ब-विधान में जिस बिम्ब का सी-डे लेविस ने बताया है।[62] सी.सी.डी. डेविस लिखते हैं- 'प्रत्येक रचना को बिम्ब की अपरिहार्य आवश्यकता होती है और कविता स्वयं में बिम्ब होती है।'[63]

लेविस के विचारों से साम्यता रखते हुये आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि-'कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ सम्बन्ध के संकुचित मण्डल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य, भाव-भूमि पर ले जाती है जहाँ जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है। इस भूमि पर पहुँचे हुये मनुष्य को कुछ काल के लिये अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोकसत्ता में लीन किये रहता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है। इस अनुभूति योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।'[64]

इस प्रकार कवि की प्रतिभा, कला जीवन, विचार तथा भावों का परिचय उसके बिम्बों को देख कर लगाया जा सकता है।

बिम्ब-भेद के सम्बन्ध में भी काफी मतभेद है। डॉ. सुशीला शर्मा ने बिम्बों के बीस भेद बताये हैं - चाक्षुष, श्रावण, घ्राण परक, स्पर्श परक, आस्वाद परक, संवेदात्मक, गत्वर, स्थिर, वेगोद्भेदक, शब्द बिम्ब, वर्ण बिम्ब, समानुभूतिक, संश्लिष्ट, एकल, सामाजिक, प्रसृत, जैव बिम्ब आदि।[65]

किन्तु मुख्यत: पाँच प्रकार के बिम्ब ही स्वीकार किये गये हैं-

1. दृश्य (चाक्षुष) बिम्ब
2. श्रव्य (श्रवण) बिम्ब
3. घ्रातव्य (घ्राणज) बिम्ब
4. रस्य (रासनिक) बिम्ब
5. स्पृश्य (स्पार्शिक) बिम्ब

अतः इन्हीं संवेदनाओं के आधार पर ही बिम्बों का विश्लेषण उचित प्रतीत होता है। गुप्त जी द्वारा उनके काव्य में रचित बिम्बों का बिम्बायन निम्न रूप से किया जा सकता है-

दृश्य बिम्ब- गुप्त जी दृश्य बिम्ब के विधान में अत्यन्त विदग्ध हैं। पंचवटी के सुरम्य स्थान पर मुग्ध मनोहारी नायक की छवि का चाक्षुष (दृश्य) बिम्ब बनाते हुये कहते हैं-

'पंचवटी की छाया में
सुन्दर पर्ण कुटीर बना
उसके सम्मुख स्वच्छ शिला पर
धीर वीर निर्भीक मना
जाग रहा ये कौन धनुर्धर
जबकि भुवन भर सोता है
भोगी कुसुमायुध योगी सा
बना दृष्टिगत होता है।'[67]

उपर्युक्त पंक्तियों में पंचवटी का सम्पूर्ण वातावरण साकार हो उठता है। भाषा के माध्यम से यही चित्र योजना स्वतः ही चाक्षुष बिम्ब का रूप धारण कर लेती है।

रूपसी शकुन्तला की पावन कान्ति को बिम्बायित करते हुये गुप्त जी कहते हैं-

'पुष्प राशि समान उसकी देख पावन कान्ति-
भूल सी होने लगी जगम लता की भ्रान्ति-
क्या मनोभिष से उन्हीं के जानकार अरविन्द-
घूमता था वर वदन पर एक मुग्ध मिलिन्द-' [68]

प्रस्तुत पंक्तियों में एक नायिका के रूप-सौन्दर्य का मनोहारी मुग्ध रूप रचा गया है। एक पाणि-गृहण का दृश्य देखिये-

'दृश्य पाणि-गृहण का था नित्य होकर भी नया
वह पसीजा-कर वधू का वर उसी का हो गया।
उस समय सबके दृगों से प्रेममय जलकण चुये,
इस अचल सम्बन्ध के सम्पूर्ण सुर साक्षी हुये।'[60]

इसमें विवाह की पृष्ठभूमि में पाणिगृहण संस्कार का सुन्दर एवं प्रभावोत्पादक वर्णन किया गया है। वर-वधू का हाथ ग्रहण कर स्वयं अपने को ही उसे सम्पूर्ण रूप में समर्पित कर देता है।

कवि ने इसी भाव को बिम्ब के माध्यम से रूपायित करने का प्रयत्न किया है।

शब्द बिम्ब- शब्द बिम्ब उसे कहते हैं जिसमें एक शब्द को अर्थगत प्रेषणीयता से अति भाराक्रान्त कर किसी सन्दर्भ में इस प्रकार योजित किया जाता है कि इसी शब्द के अर्थातिशय से युक्त एक शब्द का इकहरा-दुहरा या तिहरा प्रयोग किया जाता है। [70] शब्द बिम्ब अनुभूति को सटीकता के साथ व्यंजित करने के लिये भी उत्तम होता है।

'चारु चन्द्र की चंचल किरणें
खेल रही हैं जल थल में,
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुयी है
अवनि और अम्बर तल में।
पुलक प्रकट करती है धरती
हरित तृणों की नोकों से
मानो झीम रहे हैं तरु भी
मन्द पवन के झोंको से।'[71]

उक्त पद में 'च' शब्द की कई बार आवृति हुयी है और जो प्रकृति के सुन्दर वातावरण को और भी सुन्दर बना रही है।

'झोंके-झिलमिल झेल रहे थे दीप गगन के,
खिल-खिल हिल मिल खेल रहे थे दीप गगन के। [72]

प्रस्तुत पक्तियों में शब्दो के चमत्कार के द्वारा गगन में स्थित तारों का वर्णन अत्यन्त प्रभावपूर्ण है।

घ्राणबिम्ब- शब्द, स्पर्श, रूप, रस के द्वारा अनुभूति का जो पक्ष व्यंजित नहीं हो पाता है, वहाँ पर गुप्त जी ने घ्राणबिम्ब का आश्रय लिया है। घ्राणबिम्ब का बड़ा सजीव चित्रण गुप्त जी ने अपनी इन पंक्तियों में किया है-

जिनकी अपूर्व सुगन्धि से इन्द्रिय-मधुपगण थे हिले
सद्भाव सरसिज वर जहाँ पर नित्य रहते थे खिले।
लहरें उठाने में जहाँ व्यवहार मारुत लग्न था,
उन्मत आत्मा-हंस उनके मानसों में मग्न था। [73]

घ्राण बिम्ब का एक और बिम्बायन देखिये-

'गन्ध है भिन्न-भिन्न सुमनों का,
भाव है यो ही मनुज-मनों का।
सुहावेगा जो गन्ध तुमको,
मिटा दोगे क्या उसके द्रुम को।'[74]

रस्य (रस संवेदन) बिम्ब- रस का सम्बन्ध मानव की रसेन्द्रिय से होता है। अनेक अनुभूतियाँ ऐसी हैं जिनकी व्यंजना के लिये कवियों का ध्यान आस्वाद्यता की ओर जाता है जब कोई जीवन को रसाल कहता है तो रसाल (आम्रफल) के माध्यम से जीवन की सरसता को व्यंजित करता है।[75] गुप्तजी ने इस रसेन्द्रिय के विषयरस को इस प्रकार बिम्बित किया है-

'हँसती तथा रोती हुयी,
सुध-बुध सभी खोती हुयी
कहने लगी कुन्ती कि- सब जीते रहो,
मेरी तुम्हीं से आस है,
मन में बड़ा विश्वास है,
तुम नित नये यश का अमृत पीते रहो।'[76]

प्रस्तुत उद्धरण में सुख-दुख के मिश्रित भाव का चित्रण यश रूपी अमृत पीने के रस-बिम्ब द्वारा किया गया है।

स्पर्श बिम्ब-स्पर्श-बिम्बों में कुछ स्पर्श क्रियाओं के द्वारा बिम्ब विधान किया जाता है। गुप्त जी ने काव्य में स्पर्श बिम्ब बहुतायत मात्रा में उपलब्ध हैं-

मुक्त पवन मेरे अंगों का वन स्वेद सुखाती थी
घनी-घनी छाया पेड़ों की गोदी में बिठलाती थी।'[77]

यहाँ वायु के स्पर्श और वृक्षों के माँ जैसे स्नेहिल स्पर्श की अनुभूति को व्यंजित किया गया है। रत्नावली अपनी गाय से स्नेहवश लिपट जाती है और कहती है-

बाँध उसे सहलाकर उस दिन
लिपट गई मैं प्यार से,
उसने भी मेरा सिर सूँघा
निज नथनों की ब्यार से
कूँद रही थी बँधी पास ही,

बाँ-बाँ कर बछिया भली।
मेरी थपकी से उसमें भी
प्रकट हुयी पुलकावली। [78]

प्रस्तुत पंक्तियों में गाय, बछिया और रत्नावली मध्य स्थित मधुर भावों के द्वारा स्पर्श बिम्ब का सुन्दर सजीव चित्रण हुआ है।

उदात्त बिम्ब- भाव की दृष्टि से काव्य के हृदय को दिगंत-व्याप्त करने के लिये विराट-चित्रों की प्रतिष्ठा करना भी आवश्यक है। [79] अतः गुप्त जी ने 'साकेत' महाकाव्य में सीता का उदात्त बिम्ब निम्नाँकित रूप में प्रस्तुत किया है -

मुख धर्म- बिन्दुमय ओस-भरा अम्बुज सा,
पर कहाँ कटंकित नाल सुपुलकित भुज-सा ?
पाकर विशाल कच-भार एड़ियाँ धँसती,
तब नखः-ज्योति-मिस, मृदुल अँगुलियाँ हँसती।'[80]

प्रदक्षिणा में वन गमन के समय श्री राम की अलौकिक शोभा को इस उदात्त बिम्ब के द्वारा कितनी सुन्दरता के साथ प्रस्तुत किया गया है -

'कसे निषंग पीठ पर प्रस्तुत,
और हाथ में धनुष लिये।
गये शीघ्र रामनुज वन में,
आर्तनाद को लक्ष्य किये। [81]

यहाँ कवि की बिम्ब योजना राम के विराट और दुर्जेय व्यक्तित्व के द्वारा प्रस्तुत हुयी।

रंगाश्रित बिम्ब- प्रातःकाल हिमाच्छादित पर्वत की चोटियों पर किरणों का आगमन होता है और पवन अपनी सुगन्धि को चारों ओर बिखेर देता है-

सौध-शिखर पर स्वर्ण वर्ण की आतप आभा भा रही।
शीतल-मन्द-पवन वन-वन से सुरभि निरन्तर ला रही। [82]

वर्षा आगमन पर प्रकृति-नटी अपने भिन्न रूपों द्वारा सबको आकर्षित करती है और मोर, कोयल, चातक उसे अपना सहयोग देते हैं-

'मोर नाचते थे उमंग से, मेघ मृदंग बजाते थे,
कोयल के सहयोगी होकर, चचंल चातक गाते थे।

रस बरसाती हुयी घटा भी नीचे उतरी आती थी,

प्रकृति नटी निज पट पल-पल में प्रकट पलटती जाती थी।'[83]

यहाँ बोध का बिम्ब प्रस्तुत किया गया है और प्रकृति की मनोहरी छटा को बिखेर कर हृदयाकर्षी बिम्ब रचा गया है।

समानुभूतिक बिम्ब- गुप्त काव्य में भी समानुभूतिक बिम्बों का रूपायन हुआ है। पवन का तेज गति से चलना, अंधकार न उगलना, वर्षा द्वारा भंयकर रूप धारण करना आदि क्रिया व्यापार समानुभूतिक क्रिया व्यापार बिम्ब है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

'यह धन तन सन सन पवन जाल

मन-मन करता यह काल व्याल।'[84]

'घनघोर वर्षा हो रही, गगन गर्जन कर रहा,

घर से निकलने को कड़ककर वर्ज वर्जन कर रहा।'[85]

गत्वर बिम्ब- इस बिम्ब विधान के द्वारा गतियुक्त वस्तुओं ,स्थितियों, दृश्यों का अंकन प्रस्तुत किया जाता है। इसमें कवि को अप्रस्तुतों की योजना करनी पड़ती है कि संकेतों से ही गति के गोचर प्रत्यक्षीकरण का आभास मिल सके। [86]

गुप्त काव्य में गत्वर के बिम्ब दो रूपों प्राप्त हैं-

1. संस्मृत बिम्ब

2. तात्कालिक बिम्ब

संस्मृत बिम्ब- संस्मृत बिम्ब को कवि ने स्मरण के माध्यम से प्रस्तुत किया है। 'विष्णु-प्रिया' की ये पंक्तियाँ इस दृष्टि से द्रष्टव्य हैं-

बहती सदैव रही अश्रुधारा उनकी

कभी कृष्ण योग, कभी राधिका वियोग में।

कीर्तन में मग्न हुये नाचते ही नाचते,

होकर अचेत प्राय: गिर पड़ते थे वे

चोट से सम्भालने का भार नित्यानन्द को

देकर भी चिन्ताकुल रहती थीं माँ शची।

नित्यानन्द दोनों हाथ फैलाकर बहुधा,

पीछे रहते थे, जो सम्भाल सकें उनको।

किन्तु चोट सहती थी विष्णु प्रिया उनकी। [87]

तात्कालिक बिम्ब- (गत्यात्मक) इस बिम्ब में प्रत्यक्ष वस्तुस्थिति का अंकन किया जाता है जैसे- 'गई अरुणिमा जगी अनल में
नवलोज्वलता जल में,
नभ में नव्य लोज्वलता जल में,
हरियाली भूतल में।'[88]

सांस्कृतिक बिम्ब-भारतीय संस्कृति के अनन्य पुजारी होने के कारण उन्होने अपनी काव्य रचनाओं में कहीं-कहीं सांस्कृतिक बिम्बों की भी छटा बिखेरी है -

' राम सीता धन्य धीराम्बर इला, शौर्य सह सम्पत्ति लक्ष्मण उर्मिला
भरत कर्त्ता माण्डवी उनकी क्रिया, कीर्ति सी श्रुतकीर्ति शत्रुह्न प्रिया।'[89]

प्रस्तुत बिम्ब में सभी प्रयुक्त उपमान भारतीय संस्कृति से लिये गये हैं और भारतीय संस्कृति से कवि कितना प्रभावित है,यह प्रस्तुत बिम्ब देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

सामाजिक बिम्ब- बिम्ब विधान की भी सामयिक चेतना की सापेक्षता में कोटियाँ की जा सकती हैं। [90] गुप्त जी भी सामयिक परिस्थितियों से प्रभावित हैं। उनका हृदय तत्कालीन वर्ग-वैषम्य की भावना से दग्ध है। क्योकि कवि ने कहीं - कहीं सामाजिक जीवन से अपने बिम्बों की सामग्री एकत्र की है। किसी की मृत्यु होने पर अंग पीले पड़ जाते हैं। शरीर पर पहने आभरण ढीले हो जाते हैं। इसी तथ्य को दर्शाते हुये रात्रि व्यतीत होने का एक बिम्ब प्रस्तुत है -

सूर्य का यद्यपि नहीं आना हुआ, किन्तु समझो रात का जाना हुआ
क्योंकि उसके अंग पीले पड़ चले, रम्य रत्नाभरण ढीले पड़ चले। [91]

ऐसे ही समाज में जब किसी व्यक्ति की मृत्यु निकट आती है, तब उसका गला बैठ जाता है, ज्वर तेज हो जाता है, शरीर में जड़ता आ जाती है ऊर्ध्व-साँस चलने लगती है। इन्हीं वस्तुओं का प्रयोग कर बसन्त की समाप्ति का सुन्दर सजीव वर्णन किया है-

'ओहो, मेरा यह वराक बसन्त कैसा ?
ऊँचा गला रुँध गया अब अन्त जैसा।
देखो बढ़ा ज्वर जरा जड़ता जगी है,
लो, ऊर्ध्व साँस उसकी चलने लगी है।'[92]

तात्पर्य यह है कि विभिन्न स्त्रोतों से सामग्री एकत्रित कर गुप्त जी ने अपने काव्य में सुन्दर

सजीव बिम्ब विधान प्रस्तुत किया है। उनके बिम्बों में विविधता, मौलिकता तथा नवीनता के दर्शन होते हैं। इस प्रकार गुप्त जी का बिम्ब विधान पुष्ट और समृद्ध है।

तुलनात्मक सौन्दर्य- गुप्त जी ने तुलनात्मक सौन्दर्य में भी अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। तुलनात्मक सौन्दर्य के लिये हम उनके काव्य में वर्णित उषा-प्रभात, संध्या-रात्रि, ऋतुवर्णन, संयोग वर्णन, वियोग वर्णन, मंगलाचरण (गणेश स्तुति), मानवीय सौन्दर्य, देशप्रेम आदि विषयों को ले सकते हैं।

उषा-प्रभात- रात्रि के अन्तिम प्रहर से उषा का अभ्युदय होता है। पूर्व दिशा में गगन को राग-रंजित होते देख कर गुप्त जी का हृदय भी रंजित हो उठा है। ऐसी परिस्थिति में उनकी विचारों की तूलिका स्वयं ही चल उठती है। पंचवटी में सीता का प्रकटीकरण उषा के उदय के साथ अंकित किया गया है। प्रभात का उदय पूर्व दिशा में छाने वाली लालिमा, चन्द्र का सूर्य के डर से पश्चिम में जा कर छिपना, लक्ष्मण के चेहरे पर लज्जा रूपी लहरों का मचलना आदि मादक सौन्दर्य को रूपायित करता है-

अहा ! अम्बरस्था उषा भी,
इतनी शुचि सस्फूर्ति न थी।
अवनी की उषा सजीव थी,
अम्बर की- सी मूर्ति न थी।
वह मुख देख पाण्डु-सा पड़कर
गया चन्द्र पश्चिम की ओर
लक्ष्मण के मुख पर भी लज्जा,
लेने लगी अपूर्व हिलोर।'[93]

प्रस्तुत पद्य में कवि ने सूर्योदय का सम्पूर्ण रूप प्रस्तुत कर दिया है। विस्मय, शोभा दिव्यता और शुचिता जैसा अनूठा समन्वय गुप्त साहित्य में प्राप्त होता है, वैसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता है।

'हँस देता जब प्रात सुनहरे,
अँचल में बिखरा रोली,
लहरों की बिछलन पर जब
मचल पड़तीं किरणें मोली।

तब कलियाँ चुपचाप उठाकर
पल्लव के घूँघट सुकुमार
दल की वलकों से कहती हैं
कितना मादक हैं संसार।[94]

इसी प्रकार जय शंकर प्रसाद ने भी लिखा है-

'बीती विभावरी जाग री।
अम्बर पनघट में डुबो रही-
तारा-घट ऊषा नागरी।'
खग कुल कुल- कुल-सा बोल रहा
किसलय का आँचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई-
मधु-मुकुल नवल रस-गागरी।'[95]

साकेत में प्रभातकालीन सूर्योदन की सुन्दर अभिव्यंजना कवि ने सांगरूपक के माध्यम से भी प्रस्तुत की है :-

'सखि नील नभस्सर में उतरा यह हंस अहा! तरता-तरता,
अब तारिक मौक्तिक शेष नहीं निकला जिनको चरता-चरता।
अपने हिम बिन्दु बचे तब भी चलता उनको धरता-धरता,
गड़ जायें न कंटक भूतल के, कर डाल रहा डरता-डरता।'[96]

इसी प्रकार-

' अभय शंख बजा तुम्हारा विश्व में
प्रथम रवि की किरण की, निकल जब तितली,
कली के गोरे अधर को चूमकर,
अनिल से पल्लव हिंडोला झूलती।'[97]

इसी प्रकार-

चुभते ही तेरा अरुण बाण,
बहते कन-कन से फूट-फूट, मधु के निर्झर से सजलगान।
इन कनक रश्मियों में अथाह, लेता हिलोर तम सिन्धु जाग।

बुद-बुद से बह चलते अपार,उसमें विहगों के मधुर राग।

बनती प्रबाल का मृदुल कूल, जो क्षितिज रेख थी कुहर-म्लान। [98]

इस प्रकार गुप्त जी ने प्रकृति के सुन्दर, उपादानों पर चेतना को आरोपित कर उसे वास्तव में चेतन बना दिया है।

संध्या- संध्या का अत्यन्त सचेतात्मक चित्रण गुप्तजी ने अपने काव्य फलक पर किया है। आइये, उस पर एक नजर डालें-

'यह संध्या तप का सहज सुनहला,

मुकुट बाँध वृक्षाली;

पथ देख रही है खड़ी सजाये

फल फूलों की डाली

अम्बर की लाली पकड़ रही है

धरती की हरियाली

संवाद ले रहा पवन कि अब तक

कहाँ रहे वनमाली।'[99]

उद्यान में चारों ओर फैली संध्या की शोभा के साथ धरती पर फैली हरियाली को देख कर मन मुग्ध हो जाता है।

इसी प्रकार-

'गुलालों से रवि का पथ लीप,

जला पश्चिम में पहला दीप।

विहँसती संध्या भरी सुहाग,

द्दगों से झरता स्वर्ण पराग। [100]

एक अन्य उदाहरणा देखें -

' दिवसावसान का समय

मेघमय आसमान से उतर रही है,

वह संध्या सुन्दरी परी-सी

धीरे-धीरे-धीरे।' [101]

रात्रि- सूर्यास्त के पश्चात् संध्या की सुनहरी लालिमा नीलिमा में बदल जाती है। उस

नीरव, नि:शब्द रात्रि में भी प्रकृति के कार्यकलाप बराबर होते रहते हैं :-

'क्या ही स्वच्छ चाँदनी है यह,
है क्या ही निस्तब्ध निशा।
है स्वच्छन्द सुमन्द गन्ध वह,
निरानन्द है कौन दिशा ?
बन्द नहीं अब भी चलते हैं,
नियति नटी के कार्य-कलाप।
पर कितने एकान्त भाव-से,
कितने शान्त और चुपचाप।'[102]

इसी प्रकार-

झिलमिलाती रात भेरी,
साँझ के अन्तिम सुनहले।
हास सी चुपचाप आकर,
मूक चितवन की विभा-
तेरी अचानक छू गई भर
बन गई दीपावली तब आँसुओं की पांत मेरी।'[103]

यह उदाहरण भी द्रष्टव्य है -

'निशा का यह स्पर्श शीतल
भर रहा है हर्ष उत्कट
तारिकाओं की विभा से स्नात
अलियों की कुन्द- कलिकागात
हिल रहा है श्वेत अँचल शांत
पवन से अज्ञात प्रतिपल।'[104]

ऋतु :- हमारे देश का कोना-कोना प्रकृति के सुन्दर दृश्यों से भरा पड़ा है। यहाँ की प्रकृति ऋतुओं के माध्यम से अपनी शोभा को बढ़ाती है। गुप्त जी उच्चकोटि के सौन्दर्य सृष्टा और द्रष्टा रहे हैं। कवि ने प्रकृति के उन दृश्यों को बड़ी आत्मीयता से निहार कर अपनी रचनाओं के उकेरा है और उन्होंने हर ऋतु के आगमन पर अपनी लेखनी से प्रफुल्ल चित्रण प्रफुल्ल मन से

किया है-

ग्रीष्म - लपट से झट रूख जले, जले,

नद-नदी घट सूख चले-चले।

विकल वे मृग-मीन मरे, मरे,

विकल ये दृग दीन भरे-भरे।

या तो पेड़ उखाड़ेगा, या पत्ता न हिलायेगा,

बिना धूल उड़ाये हा ! ऊष्मानिल न जायेगा।'[105]

इसी प्रकार-

जेठ के दारुण आतप से, तप के जगती-तल जावै जला,

नभ मण्डल छाया मरुस्थल-सा दल बाँध के अंधड़ आवै चला।

जलहीन जलाशय, व्याकुल हैं पशु-पक्षी प्रचंड है मानु कला,

किसी कानन कुंज के धाम में प्यारे , करैं विसिराम चलौ तो भला।। [106]

इसी प्रकार-

'ग्रीष्म तापमय, लू की

लपटों की दोपहरी

झुलसाती किरणों की

वर्षो की आ ठहरी।'[107]

इसी प्रकार-

'जेठ जरै जग, चलै लुवारा। उठहिं ववंडर परहिं अंगारा।'[108]

घनघोर वर्षा हो रही, गगन गर्जन कर रहा ;

वर्षा- ' चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा, साजा विरह दंदु दल बाजा ।।

धूम साम, धौरे घन घाये ; सेतु धजा वग पांति देखाये।।

खड़ग बीजु चमकै चहुँ ओरा, बुंदबान बरसहिं घनघोरा।। [110]

इसी प्रकार-

'श्याम घटा घन घिर आयी।

पुरवाई फिर-फिर आयी।

बिजली कौंध रही है छन छन,

काँप रहा है उपवन उपवन ',[111]

इसी प्रकार-

'घन घमण्ड नभ गरजत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा॥

दामनि दमक रह न घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥ '[112]

शरद- 'शरद विजय की यात्रा का शुभ हो नया सवेरा,

खग खंजन आ गये लौटकर कहाँ विहंगम मेरा।

जल-थल नभ सुप्रभ सब चम-चम यह घर किन्तु अंधेरा,

मेरी वृष्टि रुकी क्या अब भी, तुम्हें कहाँ दूँ डेरा।'[113]

'जानि शरद रितु खंजन आये। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये। [114]

'शुभ्र शरत् आई अम्बर पर ;

बड़ी रास कमलों की सर-सर।

खंजन देख पड़े आये हैं,

देख, महारव वन छाये हैं।'[115]

शिशिर- 'बाहर निकलना मौत है, आधी अँधेरी रात है ;

आह: शीत कैसा पड़ रहा, थरथराता गात है। [116]

'पूस जाइ थर-थर तन काँपा। सुरुजु जाई लंका दिसि चाँपा॥ [117]

'बह चली अब अलि शिशिर-समीर !

काँपा फीरु-मृणाल वृन्त पर

नील-कमल कलिकायें थर-थर,

प्रात अरुण को करुण अश्रुभर

लखती अहा अधीर।'[118]

बसन्त- सार्थक बसन्त काल मधु या रसाल था-

भौंरे न हुये थे वहाँ और आम भौंरे थे।

फूले थे असंख्य फूल और भौंरे सुध भूले थे ;[119]

'सखि बसन्त आया

भरा हर्ष वन के मन

नवोत्कर्ष छाया।'[120]

बौरे आम फरै अब लागै। अबहुँ आव घर कंत सभागे॥
सहस भाव फूली वनसीती। मधुकर धूमहिं सँवरि मालती॥ [121]

संयोग वर्णन - साकेत का श्रीगणेश ही लक्ष्मण उर्मिला की विनोदवार्ता से हुआ है ; जिसमें नवदम्पत्ति के हास-परिहास, एकान्त विलास एवं दाम्पत्य प्रेम की अनुपम झाँकी अंकित की गई है। इनकी विनोदवार्त्ता में एक सुखी गृहस्थ जीवन का आमोद-प्रमोद तथा युवा दम्पत्ति के हृदयस्थ भावों का समावेश किया गया है। यहाँ कवि ने लक्ष्मण और उर्मिला के विरह की गहनता और भावों की विषमता को चित्रित करने के लिये दोनों के मिलन की कल्पना की है। [122]

-हाथ लक्ष्मण ने तुरन्त बढ़ा दिये,
और बोले -'एक परिरम्भण प्रिये।'
सिमिट-सी सहसा गई-प्रिय की प्रिया,
एक तीक्ष्ण अपांग ही उसने दिया।
किन्तु घाते में उसे प्रिय ने किया,
आप ही फिर प्राप्य अपना ले लिया।'[123]
'स्पर्श से लाज लगी ;
अलक पलक में छिपी छलक
उर से नव-राग जगी।
चुम्बन-चकित चतुर्दिक चंचल
हेर-फेर मुख, कर बहु-छल,
कभी हास, फिर त्रास,साँस बल
उर सरिता उमगी।
प्रेम चयन के उठा नयन नव,
विद्यु-चितवन, मन में मधु कलरव;
मौन पान करती अधरासव
कण्ठ लगी उरगी।'[124]

'अस कहि फिरि चितए तेहिं ओरा। सिय मुख ससि भय नयन चकोरा॥
भए विलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल॥ [125]

विरह वर्णन - विरह प्रेम कसौटी है। विरह में ही प्रेम परिपुष्ट होता है और विरहाग्नि में

जलकर ही कुन्दन बनता है। उत्कट प्रेमासक्ति ही विरह की सर्वोच्च अवस्था है जिसमें प्रिय और प्रेमी का पार्थक्य दूर हो जाता है और वियोग में भी संयोग सुख का सा अनुभव होने लगता है। विरह ही जीवन की वह पवित्र स्थिति है, जिसमें प्रिय और प्रेमी दोनों निश्छल और निर्मल भाव से एक दूसरे की आँखों में समाये रहते हैं।[126] डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार -'मानवीय प्रतिष्ठा की अनुभूति के लिये आत्मा की मर्मान्तिक पीड़ा अत्यन्त आवश्यक है।'[127] इस प्रकार कवि मानवीय पीड़ा का परिष्करण कर अपने अभीष्ट को प्राप्त करने में सफल होता है। यही कारण है कि मानवीय वेदना की अभिव्यक्ति उर्मिला के विरह के माध्यम से अनुकूल रूप में सम्भव हो सकी है।

-मानस मन्दिर में सती पति की प्रतिमा थाप,
जलती सी उस विरह में बनी आरती आप।[128]
'अपने इस सूनेपन की मैं हूँ रानी मतवाली,
प्राणों के दीप जलाकर करती रही दीवाली।'[129]
'वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा-सी,
वह दीपशिखा-सी शांत भाव में लीन।'[130]
'तजौ देह करु बेग उपाई। दुसह विरहु अब नहिं सहि जाई।।
आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई।।'[131]
'बिन गोपाल बैरिन भई कुंजैं।
तब वै लता लगति तन शीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजैं।'[132]
'अब महि विरह दिवस मा राती। जरी विरह जस दीपक बाती।'[133]

मंगलाचरण- ग्रन्थारम्भ के समय कवि गणेश वन्दना कर ग्रन्थ निर्माण में उपस्थित होने वाले दैहिक, दैविक और भौतिक ताप का हरण करने की कामना करता है। क्योंकि गजानन पराक्रमशीलता और विघ्न-शमन शक्ति के परिचायक हैं अत: गुप्त जी ने भी इन तापों से दूर रखने की प्रार्थना कर स्वयं को गणपति के चरणों में समर्पित किया है -

गणेश वन्दना-

जयति कुमार-अभियोग गिरा गौरी-प्रति,
स-गण गिरीश जिसे सुन मुस्काते हैं-
देखो अम्ब, हेरम्ब मानस के तीर पर,
तन्दिल शरीर एक ऊधम मचाते हैं।

गोद भरे मोदक धरे हैं, सविनोद उन्हें,
सूँड़ से उठा के मुझे देने को दिखाते हैं
देते नहीं कन्दुक-सा ऊपर उछालते हैं,
ऊपर ही ऊपर झेल, खेलकर खाते हैं।[134]
'बालक मृणालनि ज्यों तोरि डारै सबै काल,
कठिन कराल त्यों अकाल दीहि दुख कों।
विपति हरत हठ पद्मिनी के पात सम,
पंक ज्यों पाताल पेलि पठवै कलुख को।
दूरि के कलंक-अंक भव सीस ससि सम,
राखत हैं, 'केशोदास' दास के वपबुख को।
साँकरे की साँकरन सनमुख होत तोरै,
दसमुख मुख जोवैं गजमुख मुख कों।'[135]
'गाइये गनपति जग बंदन।
संकर- सुवन भवानी-नंदन॥
सिद्धि-सदन, गज-वदन विनायक।
कृपा-सिंधु, सुन्दर सब लायक॥ '[136]

मानवीय सौन्दर्य - मानवीय सौन्दर्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है क्योंकि वह अनेक सौन्दर्य का उद्भावक और प्रस्तारक होता है। मानवीय सौन्दर्य को हम दो रूपों में बाँट सकते हैं :-

1. पुरुष सौन्दर्य   2. नारी सौन्दर्य

पुरुष सौन्दर्य-

क्षण भर में देखी रमणी ने
एक श्याम शोभा बाँकी,
क्या शस्य श्यामल भूतल में।'[137]

इसी प्रकार-

'सुन्दर!
मैं मुग्ध हो गई हूँ देख
अनुपम रूप तुम्हारा

जैसे मैं सुन्दरी हूँ
योग्य ही हो मेरे तुम
मचल रहा मानस मन
इच्छा यह पूर्ण करो
कामिनी की कामना
अपूर्ण नहीं रखते पुरुष।'[138]

सूपनखा रावन की बहनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी।।
पंचवटी सो गई एक बार। देख विकल भई जुगल कुमार।।
रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई।।
तुम सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँयोग विधि रचा बिचारी।।
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेऊँ खोजि लोक तिहुनाँहीं।।
ताते अब लगि रहिऊँ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहि निहारी।।[139]

नारी सौन्दर्य - सृष्टि की अनुपम रचना नारी के सौन्दर्यांकन में गुप्त जी ने अपनी सूक्ष्म और पैनी दृष्टि का परिचय दिया है। उन्होने नारी के अन्तर में छिपे मनोभावों को देखने की चेष्टा करने के साथ-साथ उसके बाह्य रूप-सौन्दर्य पर भी अपनी दृष्टि डाली है। इस प्रकार उनकी दृष्टि नारी के हार्दिक, उदात्त एवं उज्ज्वलिता की ओर रही है-

-'उसके रूप-रंग-सौरभ से
महक उठा वह वन सारा ;
जीवन की धारा थी मानो,
मन्जु मालिनी की धारा।'[140]

साहित्य के अर्न्तगत नारी की सुन्दर देहयष्टि ही मुख्य रही है। गुप्त जी को नारी की सुन्दर देहयष्टि ने काफी प्रभावित किया है, शायद इसी कारण उन्होंने प्रस्तुत पंक्तियों में नारी के रूप-सौन्दर्य का इतना हृदयस्पर्शी चित्र अंकित किया है , वैसा अन्यत्र नहीं है।

इसी प्रकार-

वह सुर- सरिता सैकत सी गोरी बाला।'[141]

राष्ट्र प्रेम- गुप्त जी में देशप्रेम कूट-कूटकर भरा था। उन्हें अपनी जन्म भूमि भारत से बड़ी प्रीति थी, वे उसमें अपनी माँ के सम्मान श्रद्धा भाव स्नेह रखते थे यही कारण है कि

उन्होंने भारत के सौन्दर्य और मंगलकारी महिमा का वर्णन किया है-

'ब्राह्मी-स्वरूपा, जन्मदात्री, ज्ञान गौरव शालिनी
प्रत्यक्ष लक्ष्मी रूपिणी धन-पूर्णा, पालिनी,
दुर्द्धर्ष रुद्राणी स्वरूपा, शत्रु-सृष्टि लयंकरी,
वह भूमि भारत वर्ष की है भूरि भावों से भरी।'[142]

प्रस्तुत पद्य में भारत माता के आन्तरिक व बाह्य सुषमा सौन्दर्य का समन्वय सराहनीय है।

इसी प्रकार-

ज्योति भूमि जय भारत देश
समाधिस्थ सौन्दर्य हिमालय श्वेत शान्ति आत्मानुभूतिलय
गंगा यमुना जल ज्योतिर्मय हँसता यहाँ अशेष।
फूटे जहाँ ज्योति के निर्झर ज्ञान भक्ति गीता वंशी स्वर
पूर्ण काम जिस चेतन रज पर लोटे हँस लोकेश।' -**' सुमित्रानन्दन पंत'**

इसी प्रकार-

अरुण यह मधुमय देश हमारा
वहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा
सरस ताम्ररस गर्भ विभा पर नाच रही तरु शिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुमकुम सारा।
लघु सुरधनु से पंख पसारे शीतल मलय समीर सहारे।'[143]

इसी प्रकार-

' भारत एक भाव है, जिसको पाकर मनुष्य जगता है,
भारत एक जलज है जिस पर जल का न दाग लगता है।' **- दिनकर**

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि माँ सरस्वती के चरणों में समर्पित गुप्त जी के काव्यों की भाषा सहजता, सुबोधता तथा स्वाभाविकता से परिपूर्ण है। जो कि हृदय को सहज ही आकर्षित कर लेती है। किन्तु सभी काव्य रचनाओं में साकेत का स्थान मन्दिर के उस सर्वोच्च कलश के समान है क्योंकि उसकी गरिमा, महिमा और शालीनता अनूठी है। श्रीराम की पावन कथा होने के कारण यह अनन्तकाल से देशवासियों का कंठहार रही है। लक्ष्मण उर्मिला का प्रेमी जीवन, साकेत का कौटुम्बिक जीवन, केकई के चरित्र सम्बन्धी दोष का निवारण, उर्मिला का विरही

जीवन, भरत के पास संजीवनी बूटी का होना, लक्ष्मण शक्ति के बारे में सुनकर अयोध्यावासियों की रणसज्जा तथा उर्मिला का वीरांगना के वेश में महल से बाहर निकलना वशिष्ठ जी का अपने योगबल से सम्पूर्ण युद्ध का दृश्य दिखाना जैसी नवीन उद्भावनाओं तथा प्रकृति चित्रण में प्राचीन और नवीन का समन्वय और भारतीय संस्कृति का अनूठा और अनोखा वर्णन होने के कारण साकेत की श्रेष्ठता असंदिग्ध है।

इस प्रकार गुप्त जी की सौन्दर्यानुभूति अद्वितीय है तथा वे द्विवेद्वी कालीन कवियों में श्रेष्ठ कृतिकार के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं।

नख-शिख वर्णन- नारी सृष्टिकर्त्ता की अद्भुत रचना है। विधाता की कला की पूर्ण पराकाष्ठा नारी के रूप में आकारित हुयी है। नारी का बाह्य रूप ही सबसे पहले पुरुष को आकर्षित करता है किन्तु उसकी आन्तरिक चारुता सभी को आकर्षित करती है। इसलिये अनुरागमयता, सुजनता, प्रशांतता, मधुरता, कांतता, शान्तिमयता आदि आन्तरिक गुणों से नारी ने बाहरी सुन्दरता से अन्वित होकर जो दिव्य रूप प्राप्त किया है वह अद्वितीय है। नारी, सौन्दर्य की ऐसी ही निराली सकल छवि होती है।[144]

नारी आदिकाल से जीवन और साहित्य की प्रेरणास्त्रोत रही है। परिणामस्वरूप साहित्य का कोई भी भाग नारी के नख-शिख वर्णन से अछूता नहीं रह सका है। गुप्त जी ने भी नारी के सौन्दर्य की उज्ज्वल आभा, लालिमा तथा मधुरता का मिश्रण कर उसे अद्भुत रूप प्रदान किया है। इसी श्रेणी में उन्होने नारी के अंगो की मनोहरी छटा अपने काव्य में यत्र-तत्र बिखेरी है। आइये, उनके काव्य में वर्णित नारी-सौन्दर्य के इन प्रतिमानों पर अपनी दृष्टि डालें।

साकेत में उर्मिला का दर्शन दिव्य सौन्दर्य सम्पन्न नव-विवाहिता राजवधू के रूप में होता है। कवि ने उसे मूर्तिमती ऊषा, सुवर्ण की सजीव प्रतिमा, कनक-लतिका, कल्प- शिल्पी की कला आदि रूप देकर उसके शारीरिक सौन्दर्य की झाँकी प्रस्तुत की है -

अरुण पट पहने हुये आह्लाद में
कौन यह बाला खड़ी प्रासाद में ?
प्रकट मूर्तिमती ऊषा ही तो नहीं,
कान्ति की किरणें उजाला कर रहीं।
यह सजीव सुवर्ण की प्रतिमा नयी,
आप विधि के हाथ से ढाली गई।

कनक लतिका भी कमल-सी कोमला,
धन्य है उस कल्प शिल्पी की कला।
जान पड़ता नेत्र देख बड़े-बड़े,
हीरकों में गोल नीलम हैं जड़े।
पद्म रागों से अधर मानो बने,
मोतियों से दाँत निर्मित हैं घने। [145]

प्रस्तुत पंक्तियों में उसके गौर वर्ण और यौवन की अरुणिमा पूर्णतया झलक रही है। सीता जी के अंग-सौन्दर्य के चित्रण में अन्विति, सौष्ठव, सामंजस्य, कोमलता, विशिष्टता, सुड़ौलपन आदि उपमान विद्यमान हैं।

मुख धर्म बिन्दुमय ओस भरा अम्बुज-सा,
पर कहाँ कंटकित नाल सुपुलकित भुज-सा ?
पाकर विशाल कच भार एड़ियाँ धँसतीं,
तब नख:-ज्योति-मिस मृदुल अँगुलियाँ हँसतीं,
पर पग उठने में भार उन्हीं पर पड़ता,
तब अरुण एड़ियों से सुहास-सा झड़ता।
क्षोणी पर जो निज छाप छोड़ते चलते,
पद-पद्मों में मंजीर मराल मचलते।
रुकने-झुकने में ललित लंक लच जाती,
पर अपनी छवि में छिपी आप बच जाती।
तनु गौर कुसुमकली का गाभा,
थी अंग सुरभि के संग तरंगित आभा।
भौरों से भूषित कल्पलता-सी फूली,
गाती थी गुन-गुन गान भान-सा भूली। [146]

प्रस्तुत पंक्तियों में प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ सीता के नख-शिख वर्णन की अनुपम झाँकी स्पष्ट रूप से झलक रही है। कवि ने भावानुकूल शब्दों का प्रयोग कर भावों की साकार प्रतिमा सीता रूप-वर्णन में इस प्रकार की है कि वह साकार रूप धारण कर चलती फिरतीं सी दृष्टि गोचर होती हैं -

थी अतिशय आनन्दयुता, पास खड़ी थीं जनकसुता।

गोट जड़ाऊँ घूँघट की, बिजली जल दोपम पट की-
परिधि बनी थी विधु मुख की, सीमा थी सुषमा सुख की।
भाव सुरभि का सदन अहा ; अमल-कमल-सा बदन अहा।
अधर छबीले छदन अहा। कुन्द कली से रदन अहा।
साँप खिलातीं थीं अलकें, मधुप पालती थीं पलकें ;
और कपोलों की झलकें, उठती थीं छवि की छलकें।
गोल-गोल गोरी बाहें, दो आँखों की दो राहें।
भाग सुहाग पक्ष में थे, अँचलबद्ध कक्ष में थे।
थी कमला-सी कल्याणी, वाणी में वीणा पाणि। [147]

कवि ने सीता की इस मनोहारी छवि को सुन्दर शब्दावली में इस प्रकार ढाला है कि सीता की अतुलित सौन्दर्यमयी छवि स्वंय चित्रित हो जाती है।

शकुन्तला की छवि भी गुप्तजी ने कुछ इस तरह प्रस्तुत की है-

'भ्रकुटिल थे किन्तु सुस्थिर, पलक पट अनमोल,
दीर्घ थे, द्युति पूर्ण थे पर थे न लोचन लोल
भाव-सा झलका रहे थे विमल गोल-कपोल,
घोल देते थे सुधा-सी सरल मुख के बोल।
घट-बहन- से कन्ध नत थे और करतल लाल,
उठ रहा था श्वास गति-से वक्ष देश विशाल।
श्रवण-पुष्प परिगृही था स्वेद सीकर-जाल,
एक कर से थी सँम्भाले मुक्त काले बाल। [148]

गुप्त जी ने शकुन्तला के नारी सौन्दर्य को परम्परा से हटकर नया निराला रूप प्रदान किया है और विभिन्न कमनीय अंगों का सफलता तथा सुन्दरता के साथ चित्रांकन किया है। शकुन्तला के सौन्दर्य की पूर्णता के साथ-साथ उसकी आन्तरिक चारुता का सहज प्राकट्य हुआ है। कामिनी की सुन्दर देहयष्टि का वर्णन पंचवटी में कवि ने प्रस्तुत किया है उसकी अरुण के सदृश्य कान्ति और नक्षत्रों के समान उज्ज्वल आभा देखते ही बनती है-

'एक बार अपने अंगों की
ओर दृष्टि उसने डाली,

उलझ गई किन्तु बीच में
थी विभूषणों की जाली।
एक बार फिर वैदेही के,
देखे अंग अदूषण वे-
सनक्षत्र अरुणोदय ऐसे-
रखते थे शुभ-भूषण वे।[149]

कहीं-कहीं गुप्त जी ने नारी के कटि प्रदेश पर भी दृष्टि डाल उसके सौन्दर्य को उभारा है-

कटि के नीचे चिकुर जाल में
उलझ रहा था बाँया हाथ,
खेल रहा हो ज्यों लहरों से
लोल कमल भौंरों के साथ
दाँया हाथ लिये था सुरभित-
चित्र विचित्र सुमन-माला,
टाँगा धनुषिक कल्पलता पर
मनसिज ने झूला डाला।'[150]

बड़ी-बड़ी हिरनी समान आँखें उस समय और भी सुन्दर हो जाती हैं जब उनकी भारी पलकें किसी चीज का प्रमाण-सा देती प्रतीत होती हैं-

- आश्रम में कृष्णा कदम्ब की शाखा धरे खड़ी थी,
मानो किसी कुशल-शिल्पी ने मन की मूर्ति मड़ी थी।
ढँक न पा रहीं थीं आँखों की ढली हुयी पलकें,
प्राण-प्रतिष्ठा का प्रमाण-सा देती थीं उड़ अलकें।[151]

गुप्त जी ने नासिका को एक अनोखा रूप प्रदान किया है। नाक में पड़ी मोती की चमक उन्हें तोते की-सी भ्रान्ति दे रही है। -

नाक का मोती अधर की कान्ति से,
बीज दाड़िम का समझ कर भ्रान्ति से।
देख कर सहसा हुआ शुक मौन है,
सोचता है, अपर शुक यह कौन है।[152]

कनक मोती समान पानी की बूँदे गिराते बाल गुप्त जी को अतिप्रिय लगते थे, तभी तो उन्होंने बालों की सुन्दरता दर्शाते हुये लिखा है-

'मुक्ता तुल्य बूँदें टपकीं जो बड़े बालों से,
चू रहा था विष या अमृत वह कालों से।
आ रहीं हैं लहरें अभी तक मुझे यहाँ,
जल-थल-वायु तीनो पानेच्छुक थे वहाँ।'[153]

केशों का एक और चित्रण देखिये-

'लपट समा मेरी सांसो में, रज रम जा बालों में।'[154]

उरोज द्वय नारी के आकर्षण का सर्वाधिक सशक्त अंग होता है। शकुन्तला की वल्कल की चोली को सखी कैसे हँसते हुये ढीली करती है-

'नित्य उरोजों के उभार से,
अंगों को कसने वाली,
वल्कल की चोली हँस-हँसकर
ढीली करती थी आली।'[155]

इस विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि गुप्त जी ने नारी के बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा उसके आन्तरिक सौन्दर्य को अधिक महत्व दिया है। यही कारण है कि उनके साहित्य में नारी का आंगिक सौन्दर्य बहुत कम ही प्राप्त होता है। उन्होंने नारी के शील- सौन्दर्य से प्रभावित होकर उसके गरिमामय आन्तरिक गुणों का खुले दिल से बखान किया है। उन्होंने अपने काव्य में नारी को अनेक रूपों में प्रतिष्ठित किया है। कहीं वह शक्ति का रूप धारण कर दैत्यों का संहार करती है तथा कहीं करुणा और दया की प्रतिमूर्ति बन जाती है। कहीं योगिनी बनकर विरह के दीप को जलाये रहती है। कहीं पातिव्रत्य धर्म को सर्वस्व मानकर अपना सम्पूर्ण जीवन उसी के लिये अर्पित कर देती है । इसीलिये गुप्त जी ने नारी को सकल गुणों की खान माना है जो कि स्वाभाविक और समीचीन है।

संदर्भ सूची

1. आधुनिक काव्य में सौन्दर्य बोध के विविध आयाम, डॉ. छोटे लाल दीक्षित, पृष्ठ- 9
2. आधुनिक काव्य में सौन्दर्य बोध के विविध आयाम, डॉ. छोटे लाल दीक्षित, पृष्ठ- 92
3. भारत-भारती, मैथिलीशरण गुप्त, भूमिका भाग, पृष्ठ- 6
4. आधुनिक काव्य में सौन्दर्य बोध के विविध आयाम, डॉ. छोटे लाल दीक्षित, पृष्ठ- 93-94.
5. आधुनिक काव्य में सौन्दर्य बोध के विविध आयाम, डॉ. छोटे लाल दीक्षित, पृष्ठ- 96
6. आधुनिक काव्य में सौन्दर्य बोध के विविध आयाम, डॉ. छोटे लाल दीक्षित, पृष्ठ- 97
7. प्रकाश की ओर, नलनीकांत गुप्त, पृष्ठ-3
8. पोयम्स ऑफ कबीर, रवीन्द्रनाथ टैगोर, 1961 संस्करण,पृष्ठ- 103-104
9. पंचवटी. पृष्ठ 32
10. साकेत, पृष्ठ 10 प्रथम सर्ग
11. द्वापर, पृष्ठ- 90 (अक्रूर)
12. द्वापर, पृष्ठ- 102-103 (कुब्जा)
13. द्वापर, पृष्ठ- 103 (कुब्जा)
जयभारत, रथ निमन्त्रण, पृष्ठ- 298
जयभारत, रथ निमन्त्रण, पृष्ठ- 298.
14. पंचवटी पृष्ठ- 27
15. साकेत, चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ-93-94.
16. साकेत, पृष्ठ
17. शक्ति पृष्ठ-9
18. शक्ति पृष्ठ - 10
19. शक्ति पृष्ठ- 18
20. शक्ति, पृष्ठ-23
21. शकुन्तला, पृष्ठ-27
22. भारत-भारती, पृष्ठ -60
23. द्वापर, पृष्ठ- 12
24. पंचवटी, पृष्ठ-8
25. भारतीय दर्शन , सांख्य दर्शन, पृष्ठ-335.
26. गीता, 3/27.
27. रघुवंशम्, कालिदास, 8/87
28. रघुवंशम् , कालिदास
29. मेघ दूतम्, पूर्वमेघ, श्लोक-3 कालिदास,
30. नीतशतकं, मर्तृहरि, श्लोक-63
31.हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण, डॉ. किरण कुमारी गुप्ता , पृष्ठ-10
34. पत्रावली, पृष्ठ-22.
35. अनघ, पृष्ठ-21
36. सिद्धराज, प्रथम सर्ग, पृष्ठ 20-21
37. सिद्धराज, चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ- 90-91
38. जय भारत, एकलव्य, पृष्ठ-52

39. जय भारत, परीक्षा , पृष्ठ- 60
40. साकेत, प्रथम सर्ग, पृष्ठ-24.
41. सैरन्ध्री, पृष्ठ-5.
42. सैरन्ध्री, पृष्ठ-26
43. शकुन्तला, पृष्ठ-9
44. शकुन्तला, पृष्ठ-12
45. शकुन्तला, पृष्ठ -13
46. शकुन्तला, पृष्ठ - 15
47. हिडिम्बा ,पृष्ठ-12-13.
48. हिडिम्बा,पृष्ठ-28
49. रंग में भंग,पृष्ठ-4
50. नहुष, स्वर्ग भोग, पृष्ठ- 42
51. सिद्धराज, प्रथम सर्ग, पृष्ठ- 4
52. जय भारत, पृष्ठ- 162.
53. विष्णु-प्रिया, पृष्ठ- 11
54. शकुन्तला, पृष्ठ- 56
55. यशोधरा, पृष्ठ-31
56. यशोधरा, पृष्ठ -54
57. यशोधरा, पृष्ठ - 55
58. यशोधरा, पृष्ठ -72.
59. साकेत, में काव्य संस्कृति और दर्शन, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृष्ठ - 270
60. काव्य-बिम्ब, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ - 62.
61. पल्लव, सुमित्रानन्दन पंत, पृष्ठ-26
62. 'द वॉयटिक इमेज इज द ह्यूमन माइंड
63. द इमेज इज प्रजैन्टकॉन्सटैन्टली इन ऑल पॉलट्री, एण्ड एवरी पोयम इज इन इट्सली एन इमेज ।- 'द पॉयटिक इमेज-पृष्ठ -17
64. चिन्तामणि, भाग-1 रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ- 193.
65. तुलसी साहित्य में बिम्ब योजना, डॉ. सुशीला शर्मा, पृष्ठ -16.
66. समीक्षा लोक : सुमित्रानन्दन पंत विशेषांक ; पंत की बिम्ब योजना, पृष्ठ - 63.
67. पंचवटी, पृष्ठ - 6.
68. शकुन्तला, पृष्ठ - 15
69. रंग में भंग, पृष्ठ- 10
70. छायावाद का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन, डॉ. कुमार विमल, पृष्ठ- 191
71. पंचवटी, पृष्ठ-5
72. साकेत, द्वाद्स सर्ग, पृष्ठ- 462
73. भारत-भारती, पृष्ठ-12
74. अनघ, पृष्ठ-20
75. महादेवी वर्मा के काव्य में सौन्दर्य भावना, डॉ. गोविन्दपाल सिंह, पृष्ठ-221
76. वक-संहार, पृष्ठ- 39.
77. किसान, पृष्ठ- 10
78. रत्नावली, पृष्ठ-12-13.
79. पद्य प्रबन्ध, निराला, पृष्ठ-154.

80. साकेत, अष्टम सर्ग, पृष्ठ- 221.
81. प्रदक्षिणा, पृष्ठ- 44.
82. यशोधरा,पृष्ठ -115.
83. किसान, पृष्ठ -11
84. यशोधरा , पृष्ठ - 23.
85. भारत-भारती, पृष्ठ - 101
86. महादेवी वर्मा के काव्य में सौन्दर्य भावना, डॉ. गोविन्द पाल सिंह, पृष्ठ-231.
87. विष्णु-प्रिया, पृष्ठ - 34-35.
88. द्वापर, पृष्ठ - 193
89. साकेत, अष्टम सर्ग, पृष्ठ-18.
90. आलोचना पत्रिका दिसम्बर- 1972, टी, माचिरेड्डी, पृष्ठ - 37
91. साकेत, पृष्ठ-24.
92. साकेत, पृष्ठ - 286
93. पंचवटी, मैथिलीशरण गुप्त , छन्द- 65, पृष्ठ-27,
94. गीत पर्व, महादेवी वर्मा, पृष्ठ - 36,
95. लहर, जय शंकर प्रसाद,
96. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ - 286.
97. निराला रचनावली, निराला, पृष्ठ- 2/430
98. यामा, महादेवी वर्मा, पृष्ठ-96.
99. अनघ (उद्यान) मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ 35.
100. रश्मि, महादेवी,पृष्ठ - 15.
101. निराला रचनावली- निराला, पृष्ठ- 1/65-66
102. पंचवटी, मैथिलीशरण, पृष्ठ- 65
103. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृष्ठ- 333
104. निराला रचनावली 2/108.
105. साकेत, नवम सर्ग, मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ - 287.
106. श्री धर पाठक,
107. निराला रचनावली, 2/189
108. पद्मावत, मलिक मुहम्मद जायसी।
109. भारत-भारती, वर्तमान खण्ड , पृष्ठ- 101.
110. पद्मावत, मलिक मुहम्मद जायसी,
111. निराला रचनावली, 2/205.
112. रामचरित मानस, किष्किन्धाकाण्ड, गोस्वामी तुलसी दास, पृष्ठ- 662.
113. रत्नावली पृष्ठ 35
114. रामचरित मानस, किष्किन्धा काण्ड, पृष्ठ- 775
115. निराला रचनावली, 2/45
116. भारत-भारती, वर्तमान खण्ड , पृष्ठ - 101
117. पद्मावत्, मलिक मुहम्मद जायसी,
118. निराला रचनावली, 1/797.
119. सिद्धराज,पृष्ठ - 112.
120. निराला रचनावली, 1/239.
121. पद्मावत्, मलिक मुहम्मद जायसी।

122. साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन, द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृष्ठ - 71.
123. साकेत, प्रथम सर्ग, पृष्ठ - 40.
124. निराला रचनावली, 1/206
125. रामचरित मानस, बालकाण्ड, पृष्ठ - 238.
126. साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृष्ठ - 98.
127. पूर्व और पश्चिम : कुछ विचार, डॉ. राधाकृष्णन, अनुवाद : रमेश वर्मा, पृष्ठ - 56
128. साकेत, नवम् सर्ग, पृष्ठ - 268.
129. नीहार, महादेवी पृष्ठ - 46.
130. निराला रचनावली, 1/60
131. रामचरित मानस, सुन्दर काण्ड, पृष्ठ-806
132. सूरसागर , भ्रमरगीत, सूरदास ।
133. पद्मावत् , मलिक मुहम्मद जायसी ।
134. साकेत, गुप्त जी , मंगलाचनण,
135. रामचन्द्रिका , केशवदास
136. विनय पत्रिका, तुलसीदास ।
137. पंचवटी, पृष्ठ -32.
138. निराला रचनावली, 1/49.
139. रामचरित मानस, अरण्यकाण्ड , पृष्ठ - 710 - 711.
140 शकुन्तला मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ - 9.
141. निराला रचनावली, 1 /68.
142. भारत-भारती 'अतीत खण्ड ', पृष्ठ- 61.
143. चन्द्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद
144. निराला की सौन्दर्य चेतना, अंजु शर्मा, पृष्ठ -39.
145. साकेत प्रथम सर्ग, पृष्ठ - 221 - 222.
146. साकेत अष्टम सर्ग, पृष्ठ - 221- 222.
147. साकेत , चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ - 93 -94.
148. शकुन्तला पृष्ठ - 15.
149. पंचवटी , पृष्ठ - 27.
150. पंचवटी , पृष्ठ - 16.
151. जय भारत , पृष्ठ - 223.
152. साकेत , पृष्ठ- 29
153. नहुष, पृष्ठ - 43.
154. रत्नावली,पृष्ठ -
155. शकुन्तला , पृष्ठ - 13.

सप्तम परिच्छेद

गुप्त जी का अनुभूति और अभिव्यक्ति पक्ष

सप्तम परिच्छेद

गुप्त जी का अनुभूति और अभिव्यक्ति पक्ष

गुप्त जी का अनुभूति पक्ष- प्रबन्ध काव्य साहित्य की वह विधा है जिसमें आत्मा के मनकों की तरह विभिन्न घटनायें सुसम्बद्ध होकर एक क्रमबद्ध कथा के रूप में विद्यमान रहती हैं। प्रबन्ध काव्य एक ऐसी विस्तृत वनस्थली है, जिसमें सुन्दर सरोवर, रमणीय पुष्पोद्यान, मनोरंजक विहार स्थल, चित्ताकर्षक लता कुंजें, मनोहर पशु-पक्षी, घनी झाड़ियाँ, शान्तिदायक तपोवन, अनेक पेड़-पौधे शोभायमान रहते हैं और देखने पर सभी मिलकर सामूहिक रूप से हृदय पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाते हैं। इसमें एक ऐसी सानुबंध और श्रृंखलाबद्ध कथा रहती है, जिसमें अनेक अवान्तर कथायें एवं घटनायें उठती हैं, परन्तु उन सभी अवान्तर कथाओं एवं घटनाओं का प्रवाह धारावाहिक रूप से चलता रहता है। यदि एक अवान्तर कथा कहीं समाप्त होती है तो तुरन्त ही दूसरी आकर प्रबन्ध काव्य की मुख्य कथा के प्रवाह को आगे बढ़ा देती है। इस तरह जब तक दूसरी कथा या घटना आकर उसे सहारा नहीं देती, तब तक कथा का प्रवाह अविरल रूप से नहीं चलता। यही कारण है कि प्रबन्ध काव्य पूर्वापर निरपेक्ष न होकर सापेक्ष होता है। और उसका पूवार्द्ध उत्तरार्द्ध या मध्य भाग पढ़ने मात्र से काम नहीं चलता। उसमें आदि से अन्त तक डुबकी लगाये बिना आनन्द की प्राप्ति नहीं होती। प्रबन्ध काव्य की कथा वर्णनात्मक होती है। इसका मूल कारण यह है कि प्रबन्ध काव्य में विषय की प्रधानता रहती है, जिससे उसकी कथा में वर्णनात्मकता आ जाती है और उसका सम्पूर्ण कलेवर वस्तु वर्णनों से भरा रहता है। [1]

किसी कवि के अनुभूति पक्ष पर विहंगम दृष्टि डालने से पूर्व यह आवश्यक होता है कि वह कितना भावुक है, कितना सहृदय है तथा उसमें कितनी सूक्ष्म ग्राहिका शक्ति है, जिसके द्वारा मनोरम व भाव प्रेरक स्थलों का चयन करके पाठकों में रस की तीव्रानुभूति प्रादुर्भूत कर सके।

संस्कृत के आचार्य ने भाव की परिभाषा नहीं दी। स्थाई और संचारी भाव अथवा अभिचारी भाव का विस्तृत विवेचन करने वाले आचार्य भी निर्विशेषण 'भाव' को शायद स्वत: व्यक्त समझ कर छोड़ गये। वस्तुत: यह विशेष रूप से मनोवैज्ञानिक अध्ययन क्षेत्र में आता है। फिर भी काव्य की आधारशिला होने के कारण शास्त्र की परिधि के बिल्कुल बाहर भी नहीं है। अत: काव्य के आधुनिक विद्वानों ने थोड़ा बहुत विचार किया है। आइये, उन पर विहंगम दृष्टि डालते चलें :-

बाबू गुलाब राय के अनुसार- 'सुख और दु:ख को हम-भाव कहते हैं।'[2]

-'मनुष्य के हृदय में बाह्य जगत की संवेदनाओं के कारण जो विकार उठते हैं, वे भाव की संज्ञा प्राप्त करते हैं।'[3] **- लक्ष्मी नारायण 'सुधांशु'**

हिन्दी के **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने बड़े सशक्त शब्दों में इस बात की घोषणा की है- 'प्रत्यय बोध, अनुभूति और वेगयुक्त प्रवृत्ति इन तीनों के गूढ़ संश्लेष का नाम 'भाव' है।[4] यहाँ वेगयुक्त प्रवृत्ति से अभिप्राय-प्रवृति के उत्तेजन से विशेष कर्मो की प्रेरणा है। अत: निश्चित ही जब तक अनुभूति और प्रवृत्ति अथवा प्रयत्न नहीं होगा तब तक भाव का अस्तित्व नहीं माना जा सकता। भाव मूलत: दो ही हैं - सुख और दु:ख। शास्त्रीय शब्दावली में इन्हीं को राग और द्वेष कहा जाता है।[5]

ये राग द्वेष ही आलम्बन भेद से विभिन्न रूप धारण करते हैं। उदाहरणर्थ - श्रेष्ठ के प्रति राग सम्मान अथवा श्रद्धा का, सम्मान के प्रति प्रीति का, हीन के प्रति करुणा का रूप धारण कर लेता है। द्वेष भी अधिक बलवान के प्रति भय में, समबल के प्रति क्रोध में तथा हीन के प्रति दर्प में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार भावन मन के प्राय: सभी भाव सुख और दु:ख दो में समाहित हो जाते हैं।[6]

मनोविश्लेषण शास्त्री इससे भी आगे बढ़े। उन्होने केवल एक ही मूल भाव माना है। फ्रायड ने उसे 'काम', एडलर ने 'हीन भावना' तथा युंग ने उसे जिजीविषा कहा है। काव्य शास्त्रियों ने साधारणतय: बयालीस भावों का उल्लेख किया है। यह संख्या निर्धारण भी अन्तिम तथा सर्वथा निर्दोष नहीं है, लेकिन फिर भी यह अधिक व्यावहारिक तथा काव्य की दृष्टि से अधिक तर्कसंगत है। 42 भावों में से नौ को स्थाई भाव तथा शेष तैतीस को संचारी भाव माना गया है। मनोविज्ञान ने इस प्रकार का कोई विभाजन स्वीकार नहीं किया, उसके लिये ये आवश्यक भी नहीं है, किन्तु काव्य शास्त्र के आचार्यों ने अपेक्षा-कृत स्थिर मनोवेगों- रति, हास, विस्मय, उत्साह, क्रोध, जुगुप्सा, भय, शोक और निर्वेद को स्थाई की संज्ञा दी गई है। चिन्ता, मोह, स्मृति, घृति, व्रीड़ा आदि अपेक्षाकृत अस्थिर भावों को संचारी भाव अथवा व्यभिचारी के नाम से अभिहित किया गया है।

संचारियों में तो नहीं पर स्थाई भाव को लेकर साहित्य शास्त्र में काफी घटा-बढ़ी हुयी है। भरत ने स्थाई भाव केवल आठ माने हैं, बाद में निर्वेद भी जोड़ दिया गया। भक्ति और वात्सल्य को लेकर काफी विवाद हुआ। आधुनिक युग में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एक प्रकृति रस भी चाहते हैं। स्पष्ट शब्दों में उन्होने ऐसा कहीं नहीं कहा। फिर भी उनके विशद विवेचन

और प्रकृति के प्रति उनके सबल अनुराग से ऐसा भासित होने लगता है।[7] गर्व, ग्लानि, असूया आदि के विषय में तो **डॉ. नगेन्द्र** ने स्पष्ट कहा है-'.......परन्तु कम से कम कुछ एक में - जैसे-गर्व, ग्लानि, असूया आदि में रस परिणति की क्षमता अवश्य माननी पड़ेगी।[8]

इस विषय पर **डॉ. उमाकान्त** का विनम्र निवेदन है-' कि ये सब भावनायें शास्त्रों में लिखित स्थाई भाव के समान दीर्घकाल तक स्थाई नहीं है अतएव उन्हें स्थाई पद नहीं दिया जा सकता है। भक्ति का शृंगार और शान्त में अन्तर्भाव हो सकता है पर वात्सल्य को निश्चय ही रति के अन्तर्गत नहीं माना जा सकता। यद्यपि फ्रायड- प्रतिपादित व्यापक काम के अन्तर्गत वह भी आ सकता है, फिर भी हमारा मानस-कोश वात्सल्य और रति में अंश-अंशी-भाव मानने को कदापि तैयार नहीं होगा। और यह भाव है भी बहुत तीव्र, पुत्रैषणा से इसका सीधा सम्बन्ध है। सूर, तुलसी, मीरा आदि के काव्य के अध्ययन के पश्चात् भक्ति की स्थायित्व-क्षमता में भी सन्देह नहीं रह जाता। वास्तव में चारों खूँट बाँध लेने वाला कोई निश्चित नियम इस दिशा में असम्भव है।'[9]

संचारियों को संख्याबद्ध करना तो और भी दुष्कर है ,क्योंकि मनोविकार तो सीमातीत हैं। कौन कह सकता है कि सभी मनोविकारों का संधान एवं नामकरण भी हुआ है अथवा नहीं। ऐसी दशा में उनकी संख्या निश्चित करने का प्रश्न ही नहीं उठता- वह सम्भव नहीं है।

वास्तव में जैसा प्रसिद्ध वैज्ञानिक **जेम्स** ने कहा है कि- 'मनोविकारों 'की गणना करना तथा उनका पृथक रूप में वर्णन करना कठिन ही नहीं असम्भव भी है। क्योंकि मनोविकार तो मन की वस्तु के प्रति प्रतिक्रिया है, जो प्रत्येक वस्तु के साथ बदलती रहती है।'[10]

डॉ. उमाकान्त के विचार से-'संचारी भाव के नाम से आख्यात इन मिश्र या अमिश्र मनोविकारों के सीमा निर्धारण का प्रयत्न ही व्यर्थ है। लेकिन शास्त्र में उनकी गणना हुयी है-संचारी की संख्या तैतीस मानी गई है। इन तैतीस में मरण, आलस्य, अपस्मार, निद्रा आदि शारीरिकता-प्रधान संचारियों का मनोविकार कहना असंगत होगा। इस प्रकार उनकी संख्या और भी कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त आदर, श्रद्धा, दया, उदासीनता आदि कुछ जाने-बूझे मनोविकार छूट भी जाते हैं- गिनती में आते ही नहीं।'[11]

विद्वान **पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र** व्यभिचारी परिगणन का कारण 'शास्त्र-चर्चा' की सुविधा मानते हैं- '.......संचारियों के सम्बन्ध में दो बातें और हैं। वे स्थाई भाव की तरह परिमित नहीं होते थे, बहुत से हो सकते हैं, किन्तु काव्य में शास्त्र चर्चा की सुविधा के लिये प्रमुख तैतीस ही संचारी कहे गये हैं। तैंतीस की संख्या निश्चित हो जाने से कभी लोगों को भ्रम हो जाया करता है।

जैसे हिन्दी में कुछ लोगों को यह भ्रम हुआ कि कवि 'देव' ने 'भाव-विलास' में 'छल' नामक चौतीसवाँ संचारी भाव लिखकर रस के क्षेत्र में बहुत बड़ा अन्वेषण किया। पर बात ऐसी नहीं है, छल ही क्या दया, दाक्षिण्य, उदासीनता आदि न जाने कितने भाव हैं, जिनकी गणना तैंतीस संचारियों में नहीं है।[12]

अत: आलोच्य कवि अत्यन्त व्यापक दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति है। जीवन में जितनी भिन्न-विभिन्न स्थितियाँ और परिस्थितियाँ सम्भव हैं, उनमें से अधिकांश को गुप्त जी ने अपने काव्य का विषय बनाया है और भाव, स्थाई भाव, संचारी भावों के द्वारा सुन्दर रस की सर्जना की है। गुप्त जी ने अनेक ऐसे भाव ग्रहण किये हैं ; जिनके द्वारा सहृदय पाठक तुरन्त ही प्रभावित हो जाता है। देवत्व में मानवत्व की प्रतिष्ठा गुप्त जी की अनूठी देन है। साकेत में लक्ष्मण और उर्मिला की साधारण दम्पतियों की भांति संयोग के क्षणों में चापल्य प्रदर्शित कर बैठते हैं। सहज और स्वाभाविकता का यह मनोरम चित्र अवलोकनीय है।[13]

चित्रकूट पर सीता जी के प्रयत्न से साकेतकार लक्ष्मण और उर्मिला की भेंट दिखलाता है। कैसे मार्मिक भाव गुप्त जी ने निम्नांकित पंक्तियों में व्यक्त किये हैं-

'मेरे उपवन के हरिण आज वनचारी।
मैं बाँध न लूँगी तुम्हें तजो भय हारी॥[14]

इसी प्रकार नवम् सर्ग की अनेक पंक्तियाँ इस सन्दर्भ में उल्लिखित की जा सकती हैं। वास्तव में गुप्त जी मार्मिक भावों के सहृदय चितेरे हैं।[15]

आलोच्य कवि सदैव शिवत्व का पक्षपाती रहा है। भाव के भोग से उन्नयन ही उसका विश्वास रहा है। इसलिये उसकी अधिकांश कृतियों में उदात्त जीवन एवं मनुष्यता की उच्च्व भूमि के दर्शन हो जाते हैं। आदर्शीकरण पर विशेष ध्यान रहने के कारण गुप्त जी के विपुल-परिमाण काव्य में संयोग शृंगार जो सदैव भोग प्रधान हुआ करता है बहुत कम मिलता है। उसकी स्थिति सिंधु में बिन्दु के समान है। गुप्त जी के काव्य में वियोग का अधिक चित्रण मिलता है। क्योंकि उसमे भाव के उन्नयन का अधिक अवकाश रहता है। विरह विह्वल यशोधरा की रति का ऊर्ध्वायन देखिये-

जायें, सिद्धि पावें वे सुख से,
दुखी न हों इस जन के दुख से,
उपालम्भ दूँ मैं किस मुख से ?-

आज अधिकांश वे भाते।[16]

भाव का कैसा अनुकरणीय उन्नयन है। विश्व के सुख के निमित्त अपने जीवनाधार के चिर-अभिलाषित सम्पर्क के त्याग से बढ़कर और क्या त्याग हो सकता है ? सुधांशु जी तो शायद इसके मूल में भी स्वार्थ की खोज करना चाहेंगे- 'मूल रूप से मनुष्य स्वार्थी है, इसी कारण परार्थ व परमार्थ के अन्तर्गत कहीं न कहीं स्वार्थ अवश्य छिपा बैठा पाया जाता है। जब तक स्वार्थ की प्रेरणा न हो तब तक जीवन में कोई क्रिया कोई द्वन्द्व लक्षित नहीं होता है।'[17] गुप्त जी ने अन्यान्य प्रकारों को भी उन्नमित किया है। धर्मराज युधिष्ठिर को बन्धुओं के बिना स्वर्ग भी स्वीकार नहीं है। नरक में कर्ण, भीमार्जुन, नकुल सहदेव, द्रौपदी का करुण चीत्कार सुनकर वे स्वंय भी वहीं रहने का निश्चय कर लेते हैं। देवदूत को कह देते हैं-

'जाओ तुम यहीं रहूँगा मैं,
इन आत्मीयों के साथ सदा
स्वर्गाधिक नरक सहूँगा मैं,
जा कर सुरेन्द्र को तुम देना
कह, मैं हूँ सन्तुष्ट यहीं
मुझको वह स्वर्ग नहीं लेना।'[18]

यहाँ निर्विवाद रूप से धर्मराज के मनोगत भाव का उन्नयन सौन्दर्य ही उद्भाषित है। करुण के मूल में प्राय: व्यक्तिगत न होकर समष्टिगत होता है। जयद्रथवध में उत्तरा का विलाप प्रथम प्रकार का है- वहाँ करुणा का भोग हुआ है। किन्तु भारत-भारती में उसका उन्नयन मिलता है क्योंकि उसकी मूल प्रेरणा- 'हम कौन थे क्या हो गये और क्या होंगे अभी।'

तात्पर्य यह है कि गुप्त जी भाव की व्यंजना मात्र से संतुष्ट नहीं है। वे उच्चतर लक्ष्य में उसकी परिणति का प्रयास करते हैं। यही कारण है कि उसमें काव्य में भाव का भोग नहीं वरन् उन्नयन हुआ है।

षट्ऋतु वर्णन- यद्यपि ऋतु वर्णन प्रकृति चित्रण के अन्तर्गत ही आता है किन्तु फिर भी जिन कवियों में भावों का वैशिष्ट्य होता है वे पृथक-पृथक रूप में अपने भावों को व्यक्त कर अपने काव्य को श्रेष्ठता प्रदान करते हैं। यही कारण है कि ऋतु वर्णन कवि के व्यवहार पक्ष को दर्शाता है। इन वर्णनों में भाषा की तीनों शक्तियाँ नृत्य करती हुयी प्रतीत होती हैं। अत: यह विधा अत्यन्त सशक्त व सबल है। प्राचीन तथा मध्यकाल के कवियों ने भी इस विधा का प्रयोग कर

ऋतु वर्णन के बड़े ही सुन्दर चित्र खीचें हैं जो अत्यन्त सजीव बन पड़े हैं।

आधुनिक कालीन कवि भी इस विधा में पूर्णत: पारंगत है। गुप्त जी ने भी अपने सम्पूर्ण काव्य में षट् ऋतु वर्णन की परम्परा को अपनाकर उसके संश्लिष्ट , सुकुमार, और सुरम्य जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है। आइये, उसकी कुछ छवियों पर एक विहंगम दृष्टि डालते चलें-

ग्रीष्म ऋतु-

'बरसा रहा है रवि अनल भूतल तवा सा जल रहा।'
है चल रहा सन-सन पवन, तन से पसीना ढल रहा ॥[19]
लपट से झट रूख जले - जले।
नद नदी घट सूख चले-चले ॥
विकल वे मृग मीन भरे - भरे।
विफल ये दृग दीन भरे- भरे ॥ [20]

वर्षा ऋतु-

'दरसो परसो घन बरसो'
सरसो जीर्ण - शीर्ण धरती के ;
तुम नव यौवन बरसो,
घुमड़ उठो आषाढ़ उमड़ कर ;
पावन सावन बरसो,
भाद्र-भद्र अश्वनि के चित्रित ; हस्ति स्वाति धन बरसो। [21]

'धन घोर वर्षा हो रही, गगन गर्जन कर रहा है।'
घर से निकलने को कड़क कर वज्र वर्जन कर रहा। [22]

शरद ऋतु-

निरख सखी ये संजन आये।
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मन भाये।
स्वागत, स्वागत शरद भाग्य से मैने दर्शन पाये,
नभ से मोती वारे, लो ये अश्रु अर्ध्य भर लाये। [23]

हेमन्त ऋतु-

' आलि काल है, काल अन्त में '

उष्ण रहे चाहे वह शीत।
आया यह हेमन्त दयाकर,
देख हमें संतप्त सभीत।[24]

हेम पुंज हेमन्त काल के इस आतप पर वारूँ,
प्रिय स्पर्श की पुलकावलि मैं कैसे आज विसारूँ।[25]

शिशिर ऋतु-

'किन्तु शिशिर ये ठन्डी साँसे हाय! कहाँ तक धारूँ'?
तन गारूँ, मन गारूँ, पर क्या मैं जीवन भी हारूँ?[26]

'बाहर निकलना मौत है, आधी अँधेरी रात है'
आ: शीत कैसा पड़ रहा है, थरथराता गात है।

बसन्त ऋतु -

सार्थक बसन्त काल मधु या रसाल था-
बौरे महुये थे वहाँ और आम भौंरे थे।
फूले थे असंख्य फूल भौंरे सुध भूले थे;
आ गई उष्णता खगों के कल कण्ठों में;
गन्ध छा गया था मन्द-शीतल-समीर में;
लहरा रहे थे खेत सुन्दर सुनहले।[28]

रस योजना- रस मानव हृदय व मस्तिष्क में हवा के झोंकों के समान हलचल मचा कर मनुष्य को व्यग्र और बेचैन कर देते हैं तथा कुछ क्षणों के लिये निश्चल सा बना मन को भावित या भासित कर देते हैं। मन को तन्मय की-सी स्थिति में पहुँचाने वाले ये रस ही भाव होते हैं। इस प्रकार मनुष्य की चित्तवृत्तियाँ और उसकी भावनायें इन रसों के द्वारा ही अभिभूत हो उठती हैं। गुप्त जी अत्यन्त व्यापक दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति हैं। जीवन में जितनी भिन्न-विभिन्न स्थितियाँ सम्भव हैं उनमें से अधिकांश को अपने काव्य का विषय बनाया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने एक स्थान पर कहा है-'पूर्ण भावुक वे ही हैं जो जीवन की प्रत्येक स्थिति में मर्मस्पर्शी अंश का साक्षात्कार कर सकें और उसे श्रोता या पाठक के सम्मुख अपनी शब्द शक्ति के द्वारा प्रयत्क्ष कर सकें।[29]

इस दृष्टि से गुप्त जी पूर्णरूपेण भावुक कवियों की कोटि में आते हैं। सचमुच उनकी भाव

परिधि बहुत व्यापक है। व्यापकता की दृष्टि से आधुनिक साहित्यकारों में प्रेमचन्द्र के अतिरिक्त और कोई भी मैथिलीशरण के समकक्ष नहीं है।

भावों का सम्बन्ध रसों से है। भारतीय काव्य शास्त्र में भाव की चरम परिणति को रस कहा जाता है और रसों की संख्या साधारणत: नौ मानी गई है। नौ रसों में शृंगार, वीर, शान्त और करुण का सम्बन्ध जीवन के अधिक प्रबल और उपयोगी भावों से है , अत: ये प्रमुख हैं। गुप्त जी ने अपने काव्य में इन चार रसों का विशेषत: तथा शेष पाँच का साधारण चित्रण किया है। इस प्रकार उनके काव्य में सभी रसों का समावेश है।

आइये, गुप्त साहित्य में वर्णित रसो पर विहंगम दृष्टि डालते चलें:-

शृंगार रस:-

'हो चुका शृंगार जब पूरा यथोचित रीत से
ले चली वर के निकट सखियाँ उसे तब प्रीत से।
ललित लज्जा भार से ग्रीवा रुचिर नीचे किये,
मन्द गति से वह गई, अवलम्ब उन सबका लिये। [30]

यहाँ वधू को विवाह मण्डप में ले जाने का दृश्य है। यहाँ वधू आश्रय तथा वर आलम्बन है। वर का सामीप्य उद्धीपन, हर्ष और लज्जा संचारी भाव तथा गर्दन झुकाना अनुभाव है। इस प्रकार रस की सम्पूर्ण सामग्री उपस्थित है।

करने लगी थी मैं अनुकरण स्वनूपुरों से,
चंचला थी चमकी घनाली घहरायी थी,
माई मुख लज्जा उसी छाती में छिपाई थी। [32]

रीतकालीन वर्णन की झलक भी कहीं-कहीं उनके काव्य में दृष्टिगत होती है-

हलधर बन्धु को उठाये गिरिराज सुन,
आई वृषा-भानुजा मराल की-सी चाल से।
देख सखियों के संग सुन्दर लता-सी उसे,
मुग्ध गिरधारी हुये चंचल तमाल से।
डगता जान कम्प से करस्थ शैल क्रीड़ा का,
ब्रीड़ा वश बन्द किये लोचन विशाल से। [31]

इसमें उस युग की अमर्यादित उच्छृंखलता नाम की भी नहीं है और रस के विभिन्न अवयव

उपर्युक्त उद्धरण में स्पष्ट हैं ही। उपर्युक्त उद्धरण शृंगार रस के संयोग पक्ष के हैं , किन्तु रति की सघनता व व्यापकता की वास्तविक व्यंजना उसके दूसरे रूप वियोग रस द्वारा ही सम्भव है। दूसरे संयोग में तो व्यक्ति घर की चार दीवारी में ही सीमित रहता है , किन्तु वियोग में व्यक्तित्व का असीम विस्तार हो जाता है।

सीता के विरह में राम पशु-पक्षियों तक से वार्त्तालाप करना चाहते हैं -

'हे खग-मृग, हे मधुकर श्रेणी,
तुम देखी सीता मृगनयनी।' -राम चरित मानस

गुप्त जी ने शृंगार के विप्रलम्भ पक्ष का अपेक्षाकृत अधिक चित्रण किया है-

'मैं निज अलिन्द में खड़ी थी, सखि एक रात
रिमझिम बूँदे पड़ती थीं घटा छाई थी ;
गमक रहा था केतकी का गन्ध चारों ओर,
झिल्ली झनकार यही मेरे मन भाई थी,
करने लगी थी मैं अनुकरण स्वनूपुरों से,
चंचला थी चमकी घनाली घहरायी थी,
आई मुख लज्जा उसी छाती में छिपाई थी। [32]

इस छन्द में स्मृति की ध्वनि मानी जा सकती है- किन्तु ऐसा नहीं है। पं. राम दहिन मिश्र ने प्रस्तुत पद्य के विषय में स्पष्ट लिखा है कि- ' यहाँ पूर्वानुभूत सुखोपभोग की स्मृति का वर्णन रहने पर भी उसकी प्रधानता सिद्ध न होने से भाव ध्वनि नहीं है।'[33]

वस्तुत: यहाँ वियोग शृंगार के सभी अवयव उपस्थित हैं। आश्रय उर्मिला, आलम्बन लक्ष्मण हैं। एकान्त स्थान, बूँदों का पड़ना, झिल्ली की झंकार तथा केतकी की गन्ध का प्रसार आदि उद्धीपन हैं। मुख का आरक्त हो जाना, छाती में मुँह छिपाना अनुभाव और हर्ष, स्मृति, विबोध आदि संचारी हैं। सब मिलाकर रति स्थाई-भाव विप्रलम्भ शृंगार के रूप में ध्वनित है।

वियोग शृंगार का एक और उदाहरण देखिये-

'उनका यह कुंज कुटीर वही झड़ता उड़ अंशु अबीर जहाँ'
अलि, कोकिल, कीर शिखी सब हैं सुन चातक की रट पीव कहाँ ?
अब भी सब साज-समाज वही तब भी सब आज अनाथ यहाँ,
सखि, जा पहुँचे सुध गंध कहीं यह अन्ध सुगन्ध-समीर वहाँ।

गौतम के प्रति यशोधरा का हृदयगत रति भाव कोयल, भोर, भ्रमर लता-मण्डप, आदि से उद्धीप्त (प्रतीयमान) वितर्क औत्सुक्य आदि से परिपुष्ट तथा विवर्णता आदि से परिव्यक्त होकर वियोग की तीव्रता और सघनता को प्रकट कर रहा है। अत: गुप्त जी ने अपनी रचनाओं में वियोग की समस्त एकादश दशाओं का चित्रण किया है।

वीर रस-

'वीर रस का अत्यन्त उत्साह से प्रादुर्भाव होता है।' [35]

आलम्बन, उद्धीपन, आदि के भेद से उत्साह के चार मुख्य रूप हो सकते हैं। उन्ही के अनुसार वीर रस के भी भेद होते हैं- युद्ध वीर, दानवीर, दयावीर, धर्मवीर। सर्वप्रथम इसमें युद्धवीर ही है किन्तु गुप्त जी ने युद्धवीर का वर्णन बहुत कम ही किया है। उनके काव्य में युद्ध का चित्रण न मिलकर कथन अधिक है। यथा-

कर्ण था अटूट सार-धारी का प्रपात-सा,
सामने जो आया वही डूबा बहा उसमें।
आशा भी किसी के बचने की रही किसको ?
सीमा छोड़ मानो महा सिंधु वहाँ उमड़ा। [36]

फिर उसका सर्वथा अभाव नहीं है। गुप्तजी की सर्वप्रथम रचना रंग में भंग का एक चित्र-

'वीर कुम्भ ! विचार ऊँचे हैं तुम्हारे सर्वथा,
किन्तु दोषारोप अब मुझ पर तुम्हारा है वृथा।
वीर बूँदी के स्वयं मौजूद हो जब तुम यहाँ ,
तो कहो प्रण पालना झूठा रहा मेरा कहाँ ?'
क्रुद्ध हो तब कुम्भ ने शर से उन्हें उत्तर दिया,
किन्तु राना ने उसे झट ढाल पर ही ले लिया।
फिर वहाँ कुछ देर को पूरी लड़ाई थम गई,
वध किये उस वीर ने मरते हुये भी रिपु कई। [37]

यहाँ राणा और हाड़ा कुम्भ आलम्बन तथा आश्रय हैं। राजा के वचन तथा उसके प्रहार उद्धीपन है। कुम्भ का शर-संधान तथा अनन्य शस्त्रों द्वारा प्रहार अनुभाव है। शेष तथा मातृभूमि के निमित्त बलिदान का हर्ष संचारी है। उत्साह स्थाई तो है ही। इस प्रकार वीर के सम्पूर्ण अवयव नियोजित हैं। शक्ति की निम्न पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं-

गरजी अट्टहास कर अम्बा देख ठट्ट के ठट्ट,

दहल उठे जल थल अम्बा तल घटा विकट संघट्ट। [38]

यहाँ भी युद्ध वीर रस के रूप में ध्वनित हो रहा है।

करुण रस- मुख्यत: गुप्त साहित्य में करुण रस का प्राधान्य है। इस विशेषता से प्रभावित एवं प्रेरित होकर- 'डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी' ने गुप्त जी के काव्य की करुण धारा नामक एक पुस्तक लिखी है। जयद्रथ वध का एक उदाहरण द्रष्टव्य है:-

मैं हूँ वही जिसको किया था विधि-विहित अर्द्धांगिनी,

भूलो न मुझको नाथ, हूँ मैं अनुचरी चिर संगिनी।

जो अंग रागांकित-रुचिर- सित सेज पर थी सोहती,

शोभा अपार निहार जिसकी मैं मुदित हो मोहती।

तब मूर्ति क्षत- विक्षत वही निश्चेष्ट अब भू पर पड़ी!

बैठी तब मैं देखती हूँ, हाय री छाती कड़ी।

हे जीवितेश! उठो-उठो, यह नींद कैसी घोर है। [39]

यहाँ अभिमन्यु का शव आलम्बन तथा उत्तरा आश्रय है। पति की सुन्दरता, वीरता तथा प्रेम का स्मरण आदि उद्धीपन है। चिन्ता, दैन्य आदि संचारी तथा उत्तरा का विलाप अनुभाव है। इन सबसे परिपुष्ट स्थाई भाव शोक की करुण रस में परिणति होती है।

करुण रस से परिपूर्ण एक उद्धरण और द्रष्टव्य है-

'आज मैं विदेशिनी हूँ, अपने ही देश में,'

बन्दिनी-सी आप निज निर्मम निवेश में।

हा! दु: स्वप्न ही मैं इसे मान नहीं सकती,

मेरी यह दिव्य धरा आप पराधीना है।

इन्द्राणी अभागिनी है, देवेश्वरी दीना है। [40]

इन्द्र के स्वर्ग भ्रष्ट होने पर नहुष इन्द्र बनते हैं। इस स्थिति से इन्द्राणी बहुत दु:खी हैं। यहाँ इन्द्र का पराभव आलम्बन, इन्द्राणी आश्रय, स्वर्ग की पराधीनता (मानव द्वारा इन्द्रासन ग्रहण करने के कारण) आदि उद्धीपन हैं। ग्लानि, चिन्ता, विषाद आदि संचारी तथा उच्छ्वास, विवर्णता और इन्द्राणी का वचन अनुभाव है। इस प्रकार करुण रस ध्वनि है।

साकेत में दशरथ मरण-प्रंसग में करुणा की आर्द्रता का एक उत्कृष्ट निदर्शन देखिये-

बस यही दीप निर्वाण हुआ, सुत-विरह वायु का बाण हुआ।
धुँधला पड़ गया चन्द्र ऊपर, कुछ दिखलाई न दिया भू पर।
अति भीषण हा हाकार हुआ, सूना-सा सब संसार हुआ।
अर्द्धांग नारियाँ शोक कृता, मूर्छित हुयीं या अर्द्ध मृता।
हाथों से नेत्र बन्द करके, सहसा यह दृश्य देख डर के।
'हा स्वामी ! कुछ ऊँचे रव से, दहके सुमन्त्र मानो दव से।'
अनुचर अनाथ से रोते थे, जो थे अधीर सब होते थे।
थे भूप सभी के हितकारी, सच्चे परिवार भार धारी। [41]

यह बन्धुनाश जन्य करुण है। रसावयव सहज स्पष्ट हैं- महाराज दशरथ आलम्बन हैं, रानियाँ, सुमन्त्र तथा अन्य भृत्य (अभिप्राय यह है कि वहाँ- उपस्थित सभी जन) आश्रय हैं। दशरथ के शव का दर्शन, सर्व हितकारिता, परिवार-पालन कुशलता आदि उनके प्रशंसनीय गुणों का स्मरण आदि उद्दीपन है। रोदन, नेत्र निमीलन, प्रलाप, मूर्च्छा, आदि अनुभाव तथा आवेग, दैन्य, जड़ता विषाद आदि संचारी भाव हैं। उपयुक्त सामग्री से परिपुष्ट शोक की करुण रस के रूप में चरम परिणति हुयी है।

शान्त रस-

पंचवटी के निम्नलिखित पद्य में शान्त रस का सौन्दर्य देखिये-

शुभ सिद्धान्त वाक्य पढ़ते हैं शुक सारी भी आश्रम के,
मुनि कन्यायें यश गाती हैं क्या ही पुण्य पराक्रम के।
अहा : अर्ध्य विपिन-राज्य में सुख पूर्वक सब जीते हैं,
सिंह और मृग एक घाट पर आकर पानी पीते हैं। [42]

स्वच्छ शिला पर बैठे हुये धीर, वीर, निर्भीकमना लक्ष्मण पंचवटी की शोभा निहार रहे हैं। पंचवटी ही यहाँ आलम्बन है। आश्रय हैं लक्ष्मण। पंचवटी का शान्त वातावरण शुक और सारिका का शुभसिद्धान्त वाक्य पढ़ना सबका सुख पूर्वक जीना। सिंह और मृग का एक ही घाट पर पानी पीना आदि उद्धीपन है। एकान्त वातावरण में रमना संसार के तथाकथित सुख-वैभव से पराङ्मुखता आदि अनुभाव है। हर्ष, मति, आदि संचारी हैं, अत: सभी अवयवों से युक्त शान्त रस यहाँ व्यंजित है।

रौद्र रस- गुप्त जी ने अपने साहित्य में रौद्र का प्रचुर मात्रा में चित्रण किया है। कतिपय

उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

श्रीकृष्ण के सुन वचन अर्जुन क्रोध से जलने लगे,
सब शोक अपना भूलकर करतल युगल मलने लगे।
संसार देखे अब हमारे शत्रु रण में मृत पड़े,
करते हुये यह घोषणा वे हो गये उठकर खड़े। [43]

यहाँ पापकर्मा कौरव तथा उनके सहायक आलम्बन हैं। अर्जुन आश्रय तथा उनका हाथ मलना, खड़े हो जाना एवं उनके आरक्त नेत्र तथा उपर्युक्त गर्वोक्ति अनुभाव है। उद्दीपन हैं कृष्ण के वचन और अभिमन्यु से पुत्र की मृत्यु। गर्व और आवेग संचारी हैं।

इस पद्य में रौद्र रस के सम्पूर्ण अवयवों का संकल संयोजन किया गया है।

मुक्तक संग्रह मंगल-घट से भी अवतरित एक उद्धरण द्रष्टव्य है-

'ठाकुर ने त्यौरियों के साथ तलवार भी,
खींच ली तुरन्त और क्रोध [44] कर यों कहा-
'पार कर दूँगा अभी आँते गिर जायेंगी,
कहता हूँ, फिर भी उतार दे, उतार दे! [45]

भयानक रस- 'जयद्रथ वध' से अवतरित निम्न पद्य में भयानक रस की उत्कृष्ट व्यंजना हुयी है-

'बोला तब कातर होकर वह भूल यशोलिप्सा सारी-
'देखो, देखो वृहन्नले यह सेना है कैसी भारी!
इसे देख कर धैर्य घूटता, अंग काँपते हैं थकते,
मैं क्या, इसे स्वयं सुरगण भी रण में नहीं हरा सकते।
मैं किस भांति लडूंगा इससे मोड़ो रथ के अश्व अभी,
................................। [46]

कौरव सेना विराट की राजधानी पर आक्रमण करती है। महाराज का पुत्र उत्तर वृहन्नला नामधारी अर्जुन को सारथी बना युद्ध के लिये जाता है। किन्तु शत्रु की विशाल वाहनी को देखकर वह घबरा जाता है। इससे कुरुराज की सेना आलम्बन, राजकुमार उत्तर आश्रय हैं। शत्रु सेना की विशालता, विकरालता और दुर्जेयता उद्दीपन है। कातर-वचन अधीरता, कम्प, श्रम, (प्रतीयमान) वैवर्ण्य आदि अनुभाव है तथा चिन्ता, आवेग, त्रास आदि संचारी हैं। काव्य वर्णित

ये विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव, वासना रूप में रसिक के हृदयस्थ भय को रस की दिशा में परिवर्तित करने में सक्षम हैं।

हास्य रस- स्वभावत: गुप्त जी हास प्रिय है। गम्भीर से गम्भीर स्थिति में भी वे हास के अवसर निकाल लेते हैं। उदाहरणार्थ-सात्यकि के कहने पर कि कृष्ण और अर्जुन मुझे आपकी रक्षा के लिये छोड़ गये हैं, तो युधिष्ठर का अधोलिखित कथन कैसा हास्य- तरल है-

'सीता के समीप जैसे लक्ष्मण को छोड़ के,
माया मृग मारने गये थे राम वन में।[47]

यहाँ पर यह युक्ति आलम्बन और युधिष्ठर का स्वभाव उद्धीपन है। आश्रय कवि और पाठक को मानना चाहिये। वास्तव में हास्य की यह विशेषता है कि कोई भी उसका आश्रय बन सकता है।

अद्‌भुत रस- 'आश्चर्यजनक विचित्र वस्तुओं को देखने से अद्‌भुत रस व्यक्त होता है।[48] गुप्त जी के काव्य में अद्‌भुत रस का चित्रण काफी कम हुआ है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

'खींचकर श्वास आस-पास से प्रयास बिना,
सीधा उठ शूर हुआ तिरछा गगन में,
अग्नि शिखा ऊँची भी नहीं है निराधार कहीं,
वैसा सारा वेग कब पाया साध्य घन में ?
भूपर से ऊपर गया या वारनेन्द्र मानो,
एक नया भद्र भौम जाता था लगन में,
प्रकट सजीव चित्र-सा था शून्य पट पर,
दण्डहीन केतन दया के निकेतन में।[49]

यहाँ हनुमान के आकाश आरोहण का चित्रण है। इसमें अद्‌भुत का चमत्कार है। भरत, माण्डवी, शत्रुह्न तथा अन्य दर्शक वृन्द आश्रय हैं। उपर्युक्त अलौकिक घटा आलम्बन है। बिना प्रयास एक दम ऊपर चढ़ते चले जाना उद्दीपन तथा (प्रतीयमान) रोमांच नेत्र विस्फारण आदि अनुभाव हैं। हर्ष, चपलता, औत्सुक्य आदि संचारी भी सहज-अनुभूति हैं। इन सभी से पुष्ट विस्मय की अद्‌भुत रस के रूप में प्रतीति होती है।

वीभत्स रस- 'गोल-कपोल पलट कर सहसा बने भिड़ों के छत्रों से,'
हिलने लगे उष्ण साँसों से होंठ लपालप लत्रों से।

कुन्द-कली-से दाँत हो गये बढ़ बराह की डाढ़ों से,
जहाँ लाल साड़ी थी तनु बना चर्म का चीर वहाँ,
कन्धों पर के बड़े बाल वे बने अहो ! आँतो के जाल
फूलों की वह वरमाला भी हुयी मुण्डमाला सुविशाल। [50]

राम-लक्ष्मण दोनों से निराश शूर्पनखा के विकृत रूप धारण करने का अंकन है। इसमें राम, लक्ष्मण, सीता आश्रय हैं। शूर्पनखा की रूप-विकृति (निर्लज्ज, काम-लिप्साजन्य) आलम्बन है। भिड़ के छत्रों जैसी कुरूपता, दाँतों की विकरालता, चर्म, चीर, आँत- जाल एवं मुण्डमाला की विगर्हणा आदि उद्धीपन हैं। थुत्कार, मँह फेर लेना आदि अनुभाव हैं। तथा वैवर्ण्य, मोह व्यभिचारी हैं। इन सब अवयवों से पोषित जुगुप्सा रस रूप में व्यंजित है।

वात्सल्य और भक्ति रस- वैसे तो वात्सल्य और भक्ति का रसत्व विवादग्रस्त है। फिर भी इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इन दोनों भावों में इस दशा तक पहुँचने की क्षमता है। **पं. राम दहिन मिश्र** ने तो इन्हें स्वतन्त्र रस के रूप में परिभाषाबद्ध भी कर दिया है- 'जहाँ ईश्वर विषयक प्रेम विभावादि से परिपुष्ट होता है। वहाँ भक्ति रस माना जाता है।'[51] 'जहाँ पुत्रादि के प्रति माता-पिता आदि के वात्सल्य परिपूर्ण स्नेह की विभावादि द्वारा पुष्टि हो वहाँ वात्सल्य रस होता है।' [52]

निम्न पंक्तियों में भक्ति और वात्सल्य दोनों का निदर्शन द्रष्टव्य है-

'धनुर्वाण वा वेणुलो, श्याम रूप के संग,'
मुझ पर चढ़ने से रहा, राम दूसरा रंग। [53]

यह निर्विघ्न समाप्ति के लिये ग्रन्थारम्भ में लिखा गया मंगलाचरण है। स्थाई भाव है ईश्वरानुराग। राम आलम्बन हैं- उनका स्यामल सौन्दर्य तथा धनुर्वाण अथवा वेणु धारण उद्धीपन है। आश्रय यहाँ स्वयं कवि ही है। हर्ष, मति, औत्सुक्य आदि संचारी और गद्गद वचन अनुभाव है। यहाँ भक्ति और वात्सल्य की कितनी सुन्दर और सफल अभिव्यंजना है।

इस प्रकार गुप्त जी की मूल व्यंजना का आधार स्थाई- भाव है। आधुनिक युग में विकसित मानव चेतना की सूक्ष्म तरल विवृत्तियाँ तथा उसके आधार तत्व-मौलिक-मनोवेग (जो मानव-जीवन के आदिम वासनाओं के व्यक्त रूप हैं) से उसकी रस सामग्री का निर्माण होता है जिसके द्वारा पाठक को एक प्राकृतिक शक्ति व ऊर्जा प्राप्त होती है और वह सहज हो जाता है। गुप्त जी के काव्य में रस अपने सम्पूर्ण रूप में स्थित है। यह स्थिति शायद उनके प्रबन्धकार होने को कारण ही

सम्भव हो सकी है। पन्त, महादेवी, बिहारी, निराला, प्रसाद जैसे कवि जहाँ सूक्ष्म चेतना, वस्तु चिह्न, उदात्त विचार तथा कल्पना की रागात्मक परिणति द्वारा रस की चेष्टा करते हैं वहाँ मैथिलीशरण जी का उद्रेक और उसका मूल उत्स स्थाई भाव से ही होता है। यही कारण है कि गुप्त जी रचनाओं में विस्तार है, प्रबलता है और गहराई है।

प्रकृति चित्रण- प्रकृति का रूप अत्यन्त मन भावन तथा मनोहारी है। अपने इसी मन भावन रूप के कारण ही वह मानव मन को सहज ही आकर्षित कर लेती है। उसके सहज सौन्दर्य से आकर्षित होकर ही मानव शिशु के समान उसकी गोद में अपनी क्रीड़ायें करता है और प्रकृति उसे एक माँ के समान अपनापन देकर अपने भिन्न-भिन्न रूप दिखा कर उसे लुभाती है। इस कारण प्रकृति के लुभावने स्वरूप की ओर आकर्षित होना मानव के लिये स्वाभाविक है।

'गुप्त जी मानव-जीवन के मर्मज्ञ हैं। वह बाह्य जगत की शोभा और प्रकृति के व्यक्त सौन्दर्य के प्रशंसक हैं। त्रेता और द्वापर युग में उनकी मनोवृत्तियाँ रमती है, पर सतयुग जिस भांति उनका काव्य है और वर्तमान प्रतिपाद्य,उसी भांति प्रकृति का सौन्दर्य भी उन्हें भावाभिभूत कर देता है। कालिदास के प्रभाव और आधुनिक बँगला काव्य के संसर्ग से गुप्त जी प्रकृति- प्रेमी कवि बने। उन्होंने 'दुर्दशा-निवेदन' में कालिदास के 'ऋतु-संहार' का अनुकरण किया। 1907 और 1908 की सरस्वती में निदाध-वर्णन, वर्षा-वर्णन, ग्रीष्मागमन आदि रचनायें छपीं। आधुनिक युग में स्वच्छन्दतावाद का प्रर्वतन होने पर सर्जनात्मक मन में अनेक रुद्ध कपाट खोले गये। **स्व. श्रीधर पाठक जी** ने प्राकृति-वर्णनों द्वारा उन्हें उन्मुक्त किया। [54] गुप्त जी का साहित्य-प्रवेश ही हेमन्त के प्रकाशन से सुनिर्दिष्ट हुआ। [55]

गुप्त जी प्रकृति-प्रेमी हैं, उसका सौन्दर्य उन्हें सर्जनात्मक आवेश प्रदान करता है। पर वे प्रकृति-सौन्दर्य के कवि नहीं है वे सामाजिक जीवन के कवि हैं। वे बुन्देलखण्ड की प्राकृतिक रमणीयता पर अधिक मुग्ध हैं। वार्तालाप में उसका वर्णन भी बड़ी सहृदयता के साथ करते हैं। पर गुप्त जी के काव्य में स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण प्राय: नहीं हुआ है। चिरगाँव के पास की प्राकृतिक सुषमा पहाड़ियाँ तथा बेतवा के जल की धारा ने उन्हें प्राय: उल्लसित किया है। प्रकृति के प्रति वे सहृदय हैं,उसकी रमणीयता पर वे मुग्ध हैं तथा उसके प्रभाव में वे तल्लीनता का अनुभव करते हैं , पर कवि की मनोभावना प्रकृति के अस्तित्व की जीवन सापेक्ष स्थिति ही स्वीकार करती है, उसे किसी आध्यात्मिक चेतना से सम्पन्न नहीं मानती। वह उसकी सौन्दर्य राशि को काव्य रचना का उत्पादन बनाता है, प्रकृति के स्वतन्त्र सौन्दर्य चित्र अंकित नहीं करता। प्रकृति का बाह्य रूप ही वह देखता है, उसके

किसी अन्तरंग तत्वों का आख्यान नहीं करता। पंचवटी और परवर्ती रचनाओं में कवि ने प्रकृति सौन्दर्य के भव्य वर्णन और रम्य चित्र प्रस्तुत किये हैं, सिद्धराज और साकेत में प्रकृति चित्रण के कई स्थल आये हैं। आशय यह है कि प्रकृति प्रेम कवि के जीवन का एक अंग है, जो उसकी भावुकता को प्रकट करता है, स्वच्छन्दतावादी काव्य को नहीं।[56]

अत: गुप्त जी ने अपने काव्य में अपने विचारों की कलम से प्रकृति के अनेक रूपों- आलम्बन, उद्दीपन, संवेदात्मक, वातावरण निर्माण, प्रतीकात्मक, अलंकार, लोक-शिक्षा, मानवीकरण दूत या दूती आदि रूपों के चित्र खींचे हैं। आइये, गुप्त जी के काव्य में वर्णित इन रूपों पर विहंगम दृष्टि डालते चलें :-

आलम्बन रूप- 'हमारी परिस्थिति हमारे जीवन का आलम्बन है, अत: उपचार से वह हमारे भावों का भी आलम्बन है।'[57]

प्रकृति का स्वतन्त्र रूप से चित्रित होना ही आलम्बन रूप कहलाता है। यह प्रकृति आलम्बन रूप में दो तरह से चित्रित की जाती है:-

1. बिम्ब ग्रहण के रूप में
2. अर्थ ग्रहण के रूप में

बिम्ब ग्रहण के रूप में प्रकृति का ऐसा संश्लिष्ट चित्र अंकित किया जाता है जिसके पढ़ते ही हमारे मस्तिष्क में भव्य एवं दिव्यचित्र अंकित हो जाता है।

अर्थ ग्रहण के रूप में कोई भी चित्र मस्तिष्क में अंकित नहीं होता, सिर्फ अर्थ ज्ञान ही होता है। इसे परिगणन प्रणाली भी कहते हैं।

गुप्त काव्य में प्रकृति के आलम्बन रूप का चित्रण पर्याप्त मात्रा में हुआ है। प्रकृति के कतिपय संश्लिष्ट रूपों की झाँकी यहाँ विद्यमान है-

'मूँदे अनन्त ने नयन धार वह झाँकी,
शशि खिसक गया निश्चिन्त हँसी-हँस बाँकी।
द्विज चहक उठे हो गया नया उजियाला,
हाटक-पट पहने दीख पड़ी गिरिमाला।
सिन्दूर चढ़ा अपने को आप निहार मुदित था।[58]

प्रस्तुत चित्रण में कवि ने प्रकृति के संश्लिष्ट रूप की सुरम्य और सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की है। प्रभात का एक मनोरम दृश्य देखिये-

उसी समय पौ फटी पूर्व में पलटा प्रकृति नटी का रंग,

किरण - कण्टकों से श्यामाम्बर फटा दिवा के दमके अंग।

कुछ-कुछ अरुण सुनहरी कुछ-कुछ प्राची की अब भूषा थी,

पंचवटी की कुटी खोलकर खड़ी स्वंय क्या ऊषा थी। [59]

देवी सीता उनकी आराध्या हैं और उन्होने उनके सौन्दर्यशील शक्ति से परिपूर्ण समन्वित रूप का बड़ी उमंग के साथ बखान किया है। गुप्त जी ने प्रकृति के बिम्ब ग्रहण रूप के अतिरिक्त अर्थग्रहण प्रणाली को भी पर्याप्त स्थान दिया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है-

नाचो मयूर, नाचो कपोत के जोड़े,

नाचो कुरंग, तुम लो उड़ान के तोड़े।

गाओ दिवि, चातक, चटक, मृग भय छोड़े,

वैदेही के वनवास वर्ष हैं थोड़े। [60]

आलम्बन रूपान्तर्गत प्रकृति के अनेक रूपों जैसे-ऋतु वर्णन, पुरुष सौन्दर्य उषा प्रभात, संध्या, रात्रि, निर्झर, वन-उपवन, सर-सरिता, खगकुल, खेत-खलियान, चाँद-चाँदनी, तारकवलियाँ, बादलों का सुन्दर अंकन गुप्त साहित्य में प्राप्त होता है। आइये उन पर भी अपनी एक दृष्टि डालते चलें :-

ऋतु - हमारे देश का कोना-कोना प्रकृति के सुन्दर दृश्यों से भरा पड़ा है। यहाँ की प्रकृति ऋतुओं के माध्यम से अपनी शोभा को बढ़ाती है। गुप्त जी भी एक उच्च कोटि के सौन्दर्य सृष्टा और दृष्टा रहे हैं। उन्होने हर ऋतु के आगमन पर अपनी लेखनी से प्रफुल्ल चित्रण प्रफुल्ल मन से किया है।

पुष्प सौन्दर्य- पुष्प प्रकृति की सर्वाधिक अमूल्य और हृदयग्राही धरोहर हैं जो चित्त को बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। गुप्त जी को पुष्पों से बेहद स्नेह था इसी कारण वे शायद इससे अछूते नहीं रह सके हैं। राहुल के हठ पर यशोधरा उसे कहानी सुनाती है, उस कहानी में पुष्पों का वर्णन करती हुयी कहती है-

वर्ण-वर्ण के फूल खिले थे

झलमल हिमके बिन्दु झिले थे,

हल्के झोंके हिले-मिले थे,

लहराता था पानी।' [61]

एक और स्थल पर उन्होने प्रकृति को ईश्वर का जादू बताते हुये लिखा है-

भाँति-भाँति के फूल खिले हैं, रंग-रूप-रस गन्ध मिले हैं,

भौंरें हर्ष समेत हिले हैं, गुञ्जा रव है छाया।

अच्छा इन्द्रजाल दिखलाया।[62]

उषा - प्रभात- रात्रि के अन्तिम प्रहर से ही उषा का अभ्युदय होता है। पूर्व दिशा में गगन को राग-रंजित करते हुये गुप्त जी का हृदय भी उससे रंजित हो उठा है। सूर्य की पहली किरण के खिलते ही सम्पूर्ण संसार में जागरण का प्रथम उद्घोष हो उठता है-

'पौ फटी स्थिर हो प्रकृति फिर मुसकाई, '

और सब ने सहज सुख की साँस पाई।

शान्ति धारण की मरुद्गण ने, वरुण ने,

स्वर्ण-पट सब को दिया अरुण ने।[63]

प्रात: काल में ऋषि-मुनियों से अर्ध्य पा कर सूर्य जब अपने पूर्ण रूप में आकर आकाश में चमकता है, उस समय का वर्णन देखिये-

दिनकर द्विजों से अर्ध्य पाकर उठ चला आकाश में'

सब भूमि शोभित हो उठी अब स्वर्ण वर्ण प्रकाश में।

आन्तरिक आलोक इस आलोक में ही मिल गया,

रवि का मुकुट धारण किया स्वाधीन भारत खिल गया।[64]

इस प्रकार गुप्त जी ने प्रातःकाल के वर्णनों में प्रकृति के सुन्दर और अद्भुत उपादानों पर चेतनता को रोपकर प्रत्येक दृश्य पंक्तियों को चेतन स्वरूप प्रदान किया है।

संध्या - संध्या का अत्यन्त सचेतात्मक वर्णन गुप्त जी ने किया है। आइये उनके संध्या सौन्दर्य के वर्णनों पर एक नजर डालते चलें :-

निरख शत्रु की स्वर्णपुरी वह

उन्हें दिशा-सी भूली थी,

नील जलधि-में लंका थी या,

नभ में संध्या फूली थी।[65]

उद्यान में चारों ओर फैली संध्या की शोभा का वर्णन देखिये-

यह संध्या तप का सहज सुनहला,

मुकुट बाँध वृक्षाली ;
पथ देख रही खड़ी सजाये
फल-फूलों की डाली।
अम्बर की लाली पकड़ रही है,
धरती की हरियाली
संवाद ले रहा पवन कि अब तक,
कहाँ रहे वनमाली। [66]

इस प्रकार गुप्त जी ने अपनी अनेक काव्य रचनाओं में संध्या के बड़े सुन्दर मनोहरी दृश्य अंकित किये हैं।

रात्रि- सूर्यास्त के बाद जब संध्या की लालिमा, नीलिमा में परिवर्तित हो जाती है, उस नीरव, निस्तब्ध रात्रि का स्वाभाविक वर्णन देखिये-

अब हो गई है रात,
अब शान्ति या संघात।
यह एक काला वस्त्र,
इसमें छिपे सौ शस्त्र।
कोई करेगा त्राण,
कोई हरेगा प्राण।
निज कार्य अब प्रच्छन्न,
देखे प्रकृति अवसन्न।
कुछ सजग हैं कुछ सृप्त,
सब तिमिर में है लुप्त। '
जो थी वही है सृष्टि,
पर विफल सी दृष्टि। [67]

निर्झर - प्रकृति का उन्मुक्त सौन्दर्य निर्झर झरते हुये प्रवाह में स्पष्ट होता है। आँखों को शीतलता प्रदान करती हुयी झाड़ियों में गिरते हुये निर्झर प्रपात का विहंगम दृश्य देखिये-

'आँखों के आगे हरियाली ;
रहती है हर घड़ी यहाँ,

जहाँ तहाँ झाड़ी में झिरती,
है झरनों की झड़ी यहाँ।
वन की एक-एक हिमकणिका,
जैसी सरस और शुचि है,
क्या सौ-सौ नागरिक जनों की
वैसी विमल रम्य रुचि है। [68]

वन उपवन- चैत्र मास के आगमन पर जो आमोद-प्रमोद और उल्लास का वातावरण रहता है , वह इन पंक्तियों में सजीव हो उठा है।

निज उपवन में चिर चैत्रमास, सब ओर अतुल आमोद वास।
है कली- कली में कुसुम हास, वन देवि! तुम्हीं फिर क्यों उदास। [69]

सरिता-सर-सरिता का वर्णन गुप्त जी के काव्य में बहुत ही सहज और स्वाभाविक स्वरूप के साथ विद्यमान है-

आइये प्रात: कालीन कमलों से शोभित एक जलाशय का वर्णन देखें-

'छलके कमल कोष में प्रात:-
काल मधुर मकरन्द,
और मिलिन्द रहे, क्या फिर भी,
स्थिर, नीरव, निस्पन्द ? [70]

हिमालय से निकलती गंगा का दृश्य देखिये-

'बहे उधर गंगा की धारा,
इधर तुम्हारी गिरा अपार।
प्लावित कर दे अग-जग सारा। [71]

खग-कुल-कीट-पतंग- गुप्त जी ने खगकुल- कीट-पतंगों को भी अपनी रचनाओं में पर्याप्त स्थान दिया है। आइये, उन पर भी कुछ दृष्टि डालते चलें :-

खग-

' निरख सखी ये खंजन आये
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मन भाये।
फैला तन का आतप मन से सर सरसाये,

घूमें वे इस ओर वहाँ ये हैं यहाँ उड़ छाये।
करके ध्यान आज इस जन का निश्चय वे मुस्काये,
फूल उठे हैं कमल अधर- से ये बधूंक सुहाये।[72]

भ्रामरी-

भ्रामरी इस मोहन मानस के सुन मादक है रस भाव सभी,
मधु-पीकर और मदान्ध न हो उड़ जा बस है अब क्षेम तभी।[73]

पद्‌म कांषे के लोभ में कभी-कभी एक भौंरा उर्मिला के मुख पर मँडराने लगता है तो वह उसे फटकारती हुयी कहती है-

भ्रमर इधर मत भटकना, ये खट्‌टे अँगूर
लेना चम्पक गंध तुम किन्तु दूर ही दूर।[74]

मधुमक्खी का वर्णन देखिये-

अरी गूँजती मधुमक्खी........रस की मटकी रक्खी,
लूटेगा घर लक्खी........जहाँ सुधा सी चक्खी।[75]

चाँदनी और तारकावलियाँ- आकाश में चाँद अपने सिंहासन पर आकर विराज गया है और तारों ने उसके आते ही अपना-अपना स्थान गृहण कर लिया है

क्या दण्ड पर न्यारे-न्यारे
चमक रहे हैं प्यारे-प्यारे
कोटि गुणों के तार तुम्हारे
खुली प्रणय की खोल
तुम्हारी वीणा है अनमोल।[76]

चाँदनी का दृश्य-

चारु चन्द्र की चंचल किरणें खेलरही हैं जल थल में,
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुयी है अवनि और अम्बर तल में।[77]

कवि ने प्रकृति के इन विभिन्न रूपों को चित्रित कर यह समझाने का प्रयास किया है कि ऋतुओं के परिवर्तन के द्वारा प्रकृति नटी किस प्रकार अपने नये-नये रूपों को धारण कर विश्व के रंग-मंच पर प्रस्तुत करती हुयी अपना अभिनय दिखाती है।

उद्धीपन रूप- जो रति आदि स्थाई भावों को उद्धीप्त करते हैं- उनकी आस्वाद योग्यता

बढ़ाते हैं वे उद्दीपन विभाव है। [78]

प्रकृति का यह उद्दीपन रूप संयोग के अवसर पर प्राणियों के हृदय में आनन्द और उल्लास का संचार किया करता है और वियोग के अवसर पर सन्तप्त अथवा व्यथित प्राणियों को और अधिक सताया करता है। इसी सत्य का उद्‌घाटन कविजन प्रकृति के उद्दीपन रूप द्वारा उद्‌घाटित करते हैं- गुप्त जी के काव्य में वर्णित उद्दीपन के कतिपय रूप द्रष्टव्य हैं-

वर्षा काल संयोग के अवसर पर आनन्द और उल्लास बढ़ाने वाला होता है और उर्मिला उस आनन्द से आनन्दित हो स्वयं कहती है-

'मैं निज अलिंद में खड़ी थी सखि, एक रात,
रिमझिम बूँदे पड़ती थी, घटा छाई थी,
गमक रहा था केतकी का गंध चारों ओर,
झिल्ली झनकार यही मेरे मन भाई थी।
करने लगी मैं अनुकरण स्वनूपुरों से,
चंचला थी चमकी घनाली गहराई थी,
चौंक देखा मैंने चुप कोने में खड़े थे प्रिय,
माई ! मुख लज्जा-उसी छाती में छिपाई थी। [78]

विरह उद्दीपन का वर्षा कालीन वर्णन कवि ने कुछ इस प्रकार किया है-

जागी किसकी वाष्प राशि जो सूने में सोती थी,
किसकी स्मृति के बीज उगे थे, सृष्टि जिन्हें बोती थी,
अरी वृष्टि, ऐसी ही उनकी दया द्दष्टि बोती थी,
विश्व वेदना की ऐसी ही चमक उन्हें होती थी
किसके भरे हृदय की धारा
शतधा होकर आ बही ?
मैने ही क्या सहा सभी ने
मेरी बाधा व्यथा सही। [79]

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने यशोधरा के माध्यम से यह कहलवाया है कि मैं अपने पति की याद में अश्रु बहा रही हूँ उसी तरह वर्षा रानी भी किसी की याद में वर्षा बूँदों के रूप में अश्रु बहा रही है। अभिप्राय यह है कि गुप्त जी के काव्य में स्थान-स्थान पर उद्दीपन उपलब्ध है। वे

विभिन्न क्षेत्रों सं ग्रहीत हैं वे सुन्दर और असुन्दर भी हैं तथा सुखद और दुखद भी हैं, क्योंकि उन्हें देखकर, पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि नायिका का उल्लास स्वयं कवि का उल्लास है, और वियोगिनी की व्यथा स्वयं कवि की व्यथा है।

संवेदात्मक रूप- कवि ने प्रकृति को मानव-जीवन के अनुरूप ढालने की भरपूर चेष्टा की है इसी कारण प्रकृति कभी वियोग के गहन विषाद में डूब कर आँसू बहाती है तथा कभी उत्साह के समय खिलखिलाकर हँसती है। तात्पर्य यह है कि प्रकृति मानव की संगिनी बन कर उसके सुख-दुःख में भाग लेती है। यही कारण है कि गुप्त जी की पात्र उर्मिला की करुण दशा देख कर प्रकृति भी दुखी हो उठती है-

'वह कोइल जो कूक रही थी, आज हूक भरती है,
पूर्व और पश्चिम की लाली, शेष वृष्टि करती है।
लेता है निःश्वास समीरण, सुरभि धूल चरती है,
उबल सूखती है जल धारा, यह धरती भरती है। [80]

इसी प्रकार चित्रकूट की सारी वनस्थली माँ सीता को देखकर अद्भुत उल्लास और आनन्द में डूबी प्रतीत होती है। प्रकृति की उस मधुरिमा को देखकर माँ सीता आनन्दित हो कह उठती हैं-

'आओ कलापि निज चन्द्र कला दिखलाओ;
कुछ मुझसे सीखो और मुझे सिखलाओ।
गाओ पिक मैं अनुकरण करूँ, तुम गाओ,
स्वर खींच तनिक यों उसे घुमाते जाओ।
शुक पढ़ो मधुर फूल प्रथम तुम्हीं ने खाया,
मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया। [81]

तात्पर्य यह है कि गुप्त जी का अधिकांश काव्य संवेदना पूर्ण है तथा अपरमित प्रबलता और अपूर्व निश्छलता के कारण उसमें उत्कट संवेदनीयता आ गई है।

वातावरण निर्माण का रूप- प्रकृति के वातावरण निर्माण का प्रयोग काव्य में करने से पाठक आने वाले विषाद, उत्साह से परिचित होने लगता है और फिर उसे भाव के मर्म को सामझने में कठनाई प्रतीत नहीं होती है- दशरथ की मृत्यु का समाचार भरत को देने के लिये कवि ने उससे पूर्व इतना विषाद युक्त वर्णन किया है कि भरत स्वयं समझ जाते हैं कि अयोध्या में कोई अमंगल घटना घटी है। एक उदाहरण देखिये-

'आज उपवन है विजन में लीन।

वृक्ष मानो व्यर्थ बाट निहार,

झेंप उठे हैं झीम झुक थक हार।

कर रही सरयू जिसे कुछ रुद्ध,

बह रही है वायु धारा शुद्ध।[82]

इसी प्रकार अक्रूर वृन्दावन के मधुर वातावरण को देख कर अपने का धन्य समझते हैं-

'अहा! अक्रत्रिम शुद्ध-वायु-गति, गन्धमयी मदमाती।

नहीं लक्ष्य में, अनुभव में ही ईश्वर सी है आती।

मैं तो आज कृतार्थ हो गया नई पुलक यह पाके ;

भूमि-भूमि का गुण विशेष है, देखे कोई आके।[83]

प्रतिबिम्ब, प्रतीक और संकेत रूप में प्रकृति चित्रण- गुप्त जी ने अपनी रचनाओं में प्रकृति के इन तीनों रूपों को भी चित्रित किया है । उनके उदाहरण निम्नलिखित हैं -

प्रतिबिम्ब रूप - कवि को जब किसी परोक्ष सत्ता का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है तब वह प्रकृति के इस रूप का चित्रण करता है । गुप्त जी ने भी छायावाद से प्रभावित होकर प्रकृति को प्रतिबिम्ब में उकेरा है -

हरा भरा भूतल भी ऐसा देखा मैंने कब था ,

शस्य श्यामलम वर्ण वहां भी उसी श्याम का अब था ।

अहा! उसी में एक कुसुम सा यह जन भी खिल जावे ,

मुझे और कुछ नहीं चाहिए बस इतना मिल जावे।

देखा मैंने ,रँगा उसी के रंग में निर्मल जल है ,

अनल उसी की आभा धारे ,अनिल गंध अतिबल है ।

एक तरंग एक चिनगारी एक सांस में उनकी ।[84]

प्रतीक रूप - गुप्त जी यद्यपि रहस्यवादी कवि नहीं हैं ,फिर भी उन्होने परोक्ष सत्ता की ओर दृष्टि करते हुए प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग किया है । जिस प्रकार शीतल और घनी छाया से शान्ति प्राप्त होती है उसी प्रकार कुणाल को अपनी पत्नी से शान्ति प्राप्त होती है । यही कारण है कि उन्होने अपनी पत्नी को घनी छाया वाली शीतलता कहकर संबोधित किया है -

सचमुच ही तुम छाया मेरी

कितनी शीतल सघन अंधेरी ।[85]

संकेत रूप - यशोधरा को रात्रि नियति की ओर संकेत करती प्रतीत होती है -

निशि की अंधेरी अवनि के चुप चेतना जब सो रही ,

नेपथ्य में तेरे न जाने , कौन सज्जा हो रही ।

मेरी नियति नक्षत्रमय ये बीज अब भी बो रही ,

मैं भार फल की भावना का व्यर्थ ही क्यों ढो रही ?

भर हर्ष में भी, शोक में भी अश्रु संसृति रो रही । '[86]

अलंकार रूप में चित्रण - गुप्त साहित्य में अलंकार का प्रयोग प्रकृति के लिए पर्याप्त मात्रा में हुआ है । कवि प्रकृति के इन उपमानों को चुन-चुनकर काव्य में स्थित करते हैं, जिससे उनके पात्रों के रूप,गुण ,भाव कर्म का ज्ञान सुगमता से हो जाए ।

गुप्त जी ने प्रकृति के उत्कृष्ट उपमानों द्वारा सीता जी की रूप माधुरी की सुंदर व निराली छवि अंकित की है -

अंचल पट कटि में खोंस कछोटा मारे ,

सीता माता थीं आज नई धज धारें ।

कर पद मुख तीनों अतुल अनाहत पट से ,

थे पत्र- पुंज में अलग प्रसून प्रकट से ।

कंधे ढककर कछ छहर रहे थे उनके ।

मुख धर्म विन्दुमय ओस भरा अंबुज सा ।

इस प्रकार कवि ने भावों के साथ-साथ अवस्था का स्पष्टीकरण करने के लिए रूप-साम्य , धर्म-साम्य एवं गुण-साम्य संबंधी प्राकृतिक पदार्थो का उपयोग पर्याप्त मात्रा में किया है।

लोक-शिक्षा का रूप- प्राकृतिक पदार्थो की हलचल एवं उनके क्रिया- कलाप में कितने ही मार्मिक रहस्य छिपे रहते हैं। यदि उनका उद्‌घाटन किया जाये तो कितनी ही शिक्षाप्रद बाते सर्व-साधारण को सुगमता से प्राप्त हो सकती हैं। यही कारण है कि गुप्त जी की दृष्टि प्राय: प्रकृति के उन मार्मिक रहस्यों एवं गूढ़ तथ्यों के उद्‌घाटन में लगी रही है।

कवियों को सम्बोधित करके लिखी गई पंक्तियाँ लोक- शिक्षा का सुन्दर उदाहरण हैं-

करते रहोगे पिष्ट-पेषण और कब तक कविवरो,

कच-कुच कटाक्षों पर अहो ! अब तो न जीते जी मरो।

आनन्ददात्री शिक्षिका है सिद्ध कविता कामिनी,
है जन्म से ही वह यहाँ श्री राम की अनुगामिनी।
पर अब तुम्हारे हाथ से वह कामिनी ही रह गई,
ज्योत्स्ना गई देखो अंधेरी यामिनी ही रह गई। [88]

इस प्रकार गुप्त जी ने अपनी रचनाओं में अनेको स्थलों पर प्रकृति के अवयवों द्वारा सभी को शिक्षाप्रद उपदेश दिये हैं। जो लोकशिक्षा के रूप में अंकित प्रकृति चित्रण की ओर संकेत करते है।

मानवीकरण रूप- सजीव सत्ता का आभास देने के लिये कवि को प्रकृति प्राकृतिक जड़ता से परे चेतना युक्त दिखाई पड़ती है। यही कारण है कि आधुनिक काव्य में प्रकृति की विभिन्न क्रियाओं, चेष्टाओं, लीलाओं पर मानवीकरण का आरोप किया गया है। अत: साकेतकार ने भी प्रकृति के इस रूप को अपनाया है। ग्रीष्म ऋतु के आगमन पर कवि ने बसंत की मृत्यु का वर्णन कर उस मृत्युगत चेष्टाओं में मानवीय आरोप किया है-

'ओहो ! मरा वह वराक बसन्त कैसा ?
ऊँचा गला रुँध गया अब अंत जैसा।
देखो, बढ़ा ज्वर, जरा जड़ता जगी है,
लो ऊर्ध्व साँस उसकी चलने लगी है।'[89]
उज्ज्वल सजल तारा नाति शुभ्र-वसना,
मूर्तिमती मानो सौम्य संध्या वहाँ प्रकटी। [90]

यहाँ ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे संध्या नारी रूप धारण कर धरती पर प्रकट हो गई हो। संध्या पर पूर्णतया मानवीय चेष्टाओं का आरोपण किया गया है।

इस प्रकार गुप्त जी ने अनेक स्थलों पर प्रकृति पर मानव-व्यापार से युक्त वर्णन किया है तथा मानव जगत की भांति ही आनन्द और उत्साह से निमग्न कर अंकित किया है।

दूत या दूती रूप- प्राकृति पदार्थो को दूत या दूती की भांति प्रेम सन्देश ले जाने वाले के रूप में भी चित्रित किया है। कालिदास का मेघदूत इसका ज्वलन्त उदाहरण है। 'प्रकृति चित्रण की यह प्रणाली कवियों को इतनी रुचिकर प्रतीत हुयी कि आगे चलकर पवन दूत, भ्रमर दूत, हँस- दूत जैसे कई काव्यों की रचना हुयी।' [91]

गुप्त जी ने भी अपने आपको इस परम्परा में स्थापित कर अपने काव्य में दूत या दूती रूप में प्रकृति को चित्रित किया है-

दूत मैं तुझको बनाऊँ, शक्ति वह मुझमें कहाँ ?
किन्तु तू ही सोच, मैं दयनीय कितनी हूँ यहाँ ?
टूटती तेरी प्रिया तुझको बिछुड़ती है जहाँ,
तो निहारे तू उसी के मेघ, जा कृपया वहाँ। [92]

इस तरह गुप्त जी के काव्य में प्रकृति के दूत या दूती रूप की अनेक छटायें विद्यमान हैं किन्तु उनके चित्रण में तन्मयता और अनुभूति का सर्वथा अभाव है।

इस प्रकार गुप्त जी ने प्रकृति के सम्पूर्ण वर्णनों और चित्रणों का अंकन करते समय अपनी सांस्कृतिक परम्परा का पूर्णतया पालन करते हुये स्वदेश भावना की छटा भी बिखेरी है।

स्व. हरि भाऊ उपाध्याय ने गुप्त जी के विषय में लिखा है कि-'ऐसे भी कवि होते हैं जो प्रकृति पर अपनी प्रभुता स्थापित करते हैं, उन पर अपनी अन्तरात्मा का रंग चढ़ाते हैं, वे छन्दों, रंगों और रेखाओं के जीवन से टक्कर नहीं लेते बल्कि काव्य संगीत और कला के मूल और आत्मा पर ही संस्कार करते हैं। उसे नया जीवन, नया दर्शन और नया वेग देते हैं। मेरी राय में वे महाकवि हैं। उनके महाकाव्य के सामने अट्ठारह सर्गो की कोठरियों में भटकने वाले प्रभात और संध्या के वर्णन की चिन्ता में सूखने वाले पर्वत , नदी के किनारे मारे-मारे फिरने वाले, संयोग और वियोग में डूबने उतराने वाले टकसाली महाकवि मिट्टी के खिलौने हैं। महाकवि विधाता ही है, उसे प्रति ईश्वर ही समझिये वह नई सृष्टि की रचना करता है और उस रचना में प्रकृति के विभिन्न रूपों को दर्शाता है , और उन्हीं के द्वारा नवीन जीवन और नवीन आकांक्षाओं को जन्म देता है। अत: वह विरकालदर्शी दृष्टा है। [93] अत: निष्कर्षत: **डॉ. उमाकान्त** के शब्दों में कहा जा सकता है कि-'गुप्त जी का भाव क्षेत्र अत्यन्त विशद विशाल और व्यापक है। शृंगार, वीर, शान्त, करुण और भक्ति रस कवि को अपेक्षाकृत अधिक प्रिय है- इनसे सिंचित राशि-शशि स्थल बिना प्रयास ही लभ्य हैं। देखा जाये तो आलम्बनों में भी इन्ही रसों के आलम्बनों का विशेष मनोयोग से चित्रण हुआ है जो पाठक के मन पर चिर स्थाई कोमल करुण प्रभाव छोड़ जाता है।' [94]

इस प्रकार सब मिलाकर गुप्त जी के भाव क्षेत्र का अपरमित विस्तार पाठक को विस्मय विमुग्ध करने वाला, उसकी प्रतिभा के व्यापकत्व एवं जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में रमने की उसकी अद्भुत शक्ति का परिचायक है।

गुप्त जी का आभिव्यक्ति पक्ष- गुप्त जी का कला जगत् अत्यन्त विशाल और प्रभावोत्पादक है। कवि अपने कथन को मार्मिक , स्वाभाविक एवं प्रभावशाली बनाने के लिये अनेक अभिव्यजंना

प्रणालियों का प्रयोग करता है। सहज में कही उक्ति से उसे पूर्ण संतोष नहीं मिलता, यही कारण है कि कवि को अपनी युक्ति में आश्चर्य, चमत्कार, विरोधाभास आदि शक्तियों का समावेश करना पड़ता है। यही भिन्न-भिन्न प्रणालियाँ कवि के काव्य जगत् को अलंकारित छटा से अवलोकित करके सहृदय पाठक के मन में रसानुभूति का संचार करती हैं। इस संन्दर्भ में एक ओर वहाँ संस्कृति का अलंकार शास्त्र है, जो अलंकार को वस्तु से पूर्णतया स्वतन्त्र मानता है , दूसरी ओर है क्रोचे का अभिव्यंजनावाद जो अलंकार और अलंकार्य की एकान्त अभिन्नता का प्रतिपादन करता है। दोनों को समझने के लिये उसकी भाषा छन्द, अलंकार, गुण, रीति, शैली आदि पर अपनी दृष्टिपात करनी पड़ती है। आइये हम सब क्रमश: इन्हीं संकेतों के आधार पर गुप्त जी की काव्य-कामिनी का फलित कलेवर देखते चलें-

भाषा- भाषा आभिव्यक्ति का सहज और सर्वश्रेष्ठ माध्यम है,चाहे वह ईश्वर प्रदत्त हो या व्यक्ति कृत- निश्चय ही वह सबल और निर्भ्रान्त अभिव्यजंना का अनिवार्य साधना है। भाषा के आविष्कार से पहले मनुष्य किस प्रकार विचार विनमय करते होगें, आज इसकी कल्पना भी हमारे लिये असम्भव है , फिर भी ऐसा कोई युग अवश्य रहा होगा, जिसका शब्द कोष सौ-पचास शब्दों तक ही सीमित हो। गुप्त जी द्वारा प्रयुक्त उस खड़ी बोली को ही लीजिये, जिसे आज हम लिखते, पढ़ते और बोलते हैं। आज यह काफी समृद्ध और समर्थ है- इसकी कोमलता मसृणता, पौरुष, ओज, कान्ति और माधुर्य-ये सभी गुण उपलब्ध हैं। पर ये सदा से ऐसी नहीं है-अनेक संस्थान इसके जीवन पथ में रहे हैं, ये आरम्भ में ही नहीं साहित्य क्षेत्र में मैथिलीशरण जी के पदार्पण के समय भी निर्धन और अपुष्ट थी-भार्दव कान्ति का सर्वथा अभाव था। आइये गुप्त जी से पूर्व हिन्दी काव्य में प्रयुक्त भाषा पर विचार करें- 'ऐतिहासिक दृष्टि से प्राकृत और अपभ्रंश के पश्चात ही हिन्दी का उद्भव हुआ किन्तु परवर्ती अपकृत में भी स्पष्टत: हिन्दी के लक्षण विद्यमान हैं अतएव कतिपय भाषाविद् तो उसे 'पुरानी हिन्दी' कहना अधिक पसन्द करते थे। मध्यकाल के पहले भाग में हिन्दी की पुरानी बोलियों ने विकसित होकर बृज, अवधी और खड़ी बोली का रूप धारण किया था।'[96] इनमें से बृज और अवधी को तो साहित्यक भाषाओं के रूप में स्वीकृति प्राप्त हुयी तथा प्रचुर मात्रा में काव्य रचा गया परन्तु खड़ी बोली उपेक्षित ही रही। खड़ी बोली तथ्यों से अपरचित विद्वानों ने उसे नवाविष्कृत भाषा माना। अत: स्पष्ट है कि अपभ्रंश खड़ी बोली के रूप में विकसित हो रही थी।

अपभ्रंश के पश्चात् रासो ग्रन्थ आते हैं। शायद हिन्दी के प्रथम ग्रन्थ वे ही हैं। उनकी भाषा

में भी खड़ी बोली की विशिष्ट प्रकृति स्पष्टत: परिलक्षित होती है। आगे के काव्यों में भी खड़ी बोली का बराबर प्रयोग होता रही है- रहीम, भूषण, सूदन, तोष आदि कवियों की रचनाओं में उसके प्रचुर उदाहरण सहज उपलब्ध हैं। अत: मध्यकाल में खड़ी बोली का निश्चित व्यवहार होने पर भी उसे साहित्य में उचित स्थान प्राप्त न हो सका।

आधुनिक काल के प्रवर्तक भारतेन्दु ने भी खड़ी बोली का व्यवहार गद्य में ही किया है। उनके पद्य में चिर-व्यवहृत बृज ही प्रयुक्त है, क्योंकि उनका रसिक मन खड़ी बोली को काव्योचित रूप में स्वीकार नहीं कर सका। **पं. बालकृष्ण भट्ट** के अनुसार- 'खड़ी बोली की कविता में सरसता, मनोहारता, और काव्य गुणों का समावेश असम्भव है।'[97] किन्तु यह धारणा उचित नहीं है।

धीरे-धीरे बृज का जादू उतरने लगा, बाबू हरिश्चन्द्र के प्रभाव के कारण उनके जीवन काल में कोई उनका विरोध न कर सका। खड़ी बोली में कवितायें अवश्य लिखी गई पर खड़ी बोली का कोई कवि नहीं था। भारतेन्दु के बाद खड़ी बोली का आन्दोलन बड़े जोर से चल पड़ा। धीरे-धीरे हवा बदलती गई और बृज भाषा के स्थान पर खड़ी बोली प्रतिष्ठित होने लगी।

जन-रुचि के इस परिवर्तन के मूल में **अयोध्या प्रसाद खत्री** के उग्र प्रयत्नों को विस्मृत तो नहीं किया जा सकता ; फिर भी गद्य की सर्वस्वीकृत भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने श्रेय **पं. महावीर द्विवेदी** को दिया जाना चाहिये।

उन्होने 1903 में 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादकत्व सम्भालने के उपरान्त गद्य और पद्य की भाषा के एकीकरण के निमित्त प्राणपन से प्रयत्न किया। यह प्रयत्न जारी तो पहले से ही था किन्तु- द्विवेदी जी का गौरव इस बात में है कि उनके आदर्श, उपदेश और सुधार के परिणाम स्वरूप ही हिन्दी संसार में गद्य की भाषा को पद्य की भाषा स्वीकार कर लिया गया।[98]

उनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन से अनेक कवियों ने खड़ी बोली में लिखना प्रारम्भ किया और कुछ नये कवि भी प्रकाश में आये जिनमें एक गुप्त जी भी हैं। पत्र-पत्रिकाओं विशेषत: 'सरस्वती' में खड़ी बोली की कविताओं में धूम मच गई और वह काव्य की प्रधान भाषा बन गई।

आचार्य द्विवेद्वी जी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए गुप्त जी ने स्पष्ट लिखा है कि आचार्य द्विवेद्वी जी महाराज के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना मानो उनकी कृपा का मूल्य निर्धारित करने की ढिठाई करना है। वे मुझे न अपनाते तो मैं आज इस प्रकार आप लोगों के समक्ष खड़े होने में भी समर्थ होता या नहीं, कौन कह सकता है।[99]

अत: गुप्त जी के साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण के समय भी खड़ी बोली का स्वरूप अनिश्चित व अस्थिर था। उसमें वाक्य विन्यास और व्याकरण सम्बन्धी अनेक त्रुटियाँ बनी हुयी थी। आधुनिक युग के पूर्व मैथिली शरण काल में भी खड़ी बोली लड़खड़ा रही थी। खड़ी बोली का अपना शब्दँ भंडार अब भी सीमित था- उस क्षति की पूर्ति के लिये संस्कृत और अरबी - फारसी के शब्दों का उन्मुक्त आदान या फिर साधारण बोलचाल के भद्दे अनगढ़ और कवित्वहीन शब्दों का प्रचुर प्रयोग हो रहा था। गद्य की दशा भी अच्छी नहीं थी। भाषा सुधारक के रूप में आचार्य द्विवेद्वी की आरम्भिक रचनायें भी त्रुटिपूर्ण थीं। वास्तव में आज अशुद्ध माने जाने वाले शब्द उस समय शुद्ध माने जाते थे। दूसरा कारण यह भी था कि वे मराठी और संस्कृत के अध्येता थे - हिन्दी का अध्ययन उन्होने बाद में किया में किया। उनका प्रभाव भी हिन्दी के वास्तविक रूप के उद्‌भास में बाधक रहा। किन्तु आगे चलकर व्यापक अध्ययन, गहन-मनन और गहन चिन्तन के द्वारा उन्होंने अपनी भाषा का परिष्कार किया। अपने ही क्या सरस्वती के सम्पादक की हैसियत से द्विवेद्वी जी ने औरों की भाषा का भी परिष्कार भी किया। गुप्त जी की 'हेमन्त' शीर्षक नाम की कविता सरस्वती में द्विवेद्वी जी ने उसकी भाषा की त्रुटियों का परिहार किया तथा उसके शब्दों के स्थान्तरण और परिवर्तन द्वारा इसे दीप्त किया। द्विवेद्वी जी द्वारा शोधित रूप-

अच्छे दुशाले सित, पीत, काले,
हैं ओढ़ते जो बहु वित्त वाले।
तो भी नहीं बन्द-अमन्द सी-सी,
हेमन्त में है काँपती बतीसी। [100]

इस प्रकार द्विवेद्वी जी ने मैथिलीशरण जी की असमर्थ और अनुपयुक्त क्रियाओं को समर्थ एवं भावाभिव्यंजक बनाया। तात्पर्य यह है कि खड़ी बोली में काव्य रचना करना अत्यन्त कठिन था, क्योकि उसमें बृज भाषा जैसा लालित्य पदों में गेयता तथा माधुर्य लाना असम्भव सा प्रतीत होता था, किन्तु गुप्त जी ने अपनी प्रतिभा के बल पर हिन्दी खड़ी बोली को कोमल बनाया और काव्य के क्षेत्र में प्रेषणीयता सुन्दरता तथा कोमलता का समावेश किया। इसका अनुसरण तत्कालीन अन्य कवियों ने भी किया। फलस्वरूप बृज भाषा लुप्तप्राय होने लगी।

धीरे-धीरे हमारी खड़ी बोली की भाषा ने बहुत कुछ उन्नति की। क्रमश: वह परिष्कृत होती हुयी समर्थ कवियों के हाथों में पड़ कर परिष्कृत तथा अलंकृत हुयी और उत्यन्त कर्णमधुर बन गई। 'वैसे गुप्त जी जातीय चेतना के कवि हैं। वे अपनी बोली बुन्देली को बहुत प्यार करते

हैं। घर या परवारीजन के बीच में अपनी बोली में ही बातचीत करते थे। अपनी बोली के प्रति उनमें हीन ग्रन्थि नहीं थी। ब्रज भाषा में कविता लिखना शुरू की और बाद में खड़ी बोली के प्रवर्त्तक बने। हिन्दी की जो काव्य परम्परा विद्यापति से घनानन्द आदि की कविता में प्रकट हुयी तथा आधुनिक युग में लोक जागरण का आधार बनी, मैथिलीशरण जी इसी के अगुआ है। उन्होंने खड़ी बोली को इसी परम्परा से जोड़ा। काव्य-विषय के क्षेत्र में उन्होने पुराने वृतों के भीतर से नये संघर्ष पैदा किये, तथा भाषाकार के रूप में बोलियों की मिठास, जिन्दादिली, सहजता और वास्तविकता को खड़ी बोली में समो दिया। लोक काव्य से उन्होने अन्योक्ति प्रणाली का बहुत अच्छा इस्तेमाल नये सन्दर्भ में किया। विशेष रूप से उन्होने जब लिखना शुरू किया, तब अंग्रेजों का विरोध करना आसान न था। अत: उन्होंने अन्योक्ति के सहारे प्रहार किये। अन्योक्ति से ही उन्होने अपने पद्यमय जीवन का आरम्भ किया था।' [101]

माखन लाल चतुर्वेदी के शब्दों में -' किन्तु ये गुरुजन ब्रज भाषा में भी कविता लिखते थे और खड़ी बोली में भी। खड़ी बोली और केवल खड़ी बोली में कविता लिखकर निर्भीकता पूर्वक किन्तु अत्यन्त नम्रता से खड़े रहने वाले एक मात्र गुप्त जी ही थे।'[102]

काव्य प्रभाकर पर समीक्षात्मक लेख में लिखा था- जिस हिन्दी को हम लोग राष्ट्रभाषा बनाने की कोशिश करें उसी का साहित्य कविता से खाली पड़ा रहे। यह कैसे दु:ख की बात है। कविता साहित्य का प्राण है। जिस भाषा में कविता नहीं, वह भाषा कभी साहित्यवती होने का गर्व नहीं कर सकती। और जिस भाषा को साहित्य का गर्व नहीं, वह राष्ट्र भाषा क्या खाक हो सकती है। अतएव बोलचाल की भाषा में कविता होना इष्ट है....।[103]

भाषा की प्रकृति के सम्बन्ध में गुप्त जी के विचार स्पष्ट थे 'उन्होने रीतकालीन काव्य भाषा के परिष्करण की प्रंशसा करते हुये भी- उसे कृत्रिम और आदर्शहीन ठहराया था। 1914 में लिखे एक लेख-हिन्दी कविता किस ढंग की हो ?' में कवि ने लिखा था- 'नूपुरों का रव भी उसमें अधिक सुन पड़ता है ; और तरह की ध्वनियाँ कम सुनाई पड़ती हैं। उसमें आवेग हो सकता है, पर संयम नहीं। असंयम अवश्य है। ऊपर से वह मधुर अवश्य हुयी, पर उसके भीतर ही भीतर एक ऐसी चीज है जो हृदय को अवश कर देती है। उससे हमारी नाड़ियों में जीवनी शक्ति नहीं दौड़ती, हाँ रक्त संचालन का वेग अवश्य बढ़ा देती है। ' [104]

इस प्रकार गुप्त जी ने हिन्दी खड़ी बोली को परिमार्जित रूप प्रदान करके उसे काव्य की भाषा बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया। सरलता, सहजता एवं बोधगम्यता आपकी भाषा की

विशिष्टतायें है। सर्वत्र पात्रानुकूल एवं भावानुकूल भाषा का प्रयोग दर्शनीय है। सुन्दर शब्द चयन, सूक्तिमय वाक्य एवं अभिधा, लक्षणा, व्यंजना से युक्त शब्दावली प्रसंशनीय है।

सरलता - गुप्त जी ने अपनी काव्य कृतियों में सुंदर सरल शब्दों का प्रयोग किया है, देखें -

कीचक हँसने लगा, और फिर उससे बोला-
सैरन्ध्री, तेरा स्वाभाव है सचमुच भोला।
तुझसे बढ़कर और पुण्य का फल क्या होगा,
जा सकता है यहीं स्वर्ग-सुख तुझ से भोगा।
भय रहने दे जय बोल तू, मेरा कीचक नाम है।
तेरे प्रभु पंचक से मुझे चिन्तय यह शर काम है।[105]

सहजता- गुप्त जी ने अपने काव्यों में सहजता को भी बड़े सुन्दर ढंग से वर्णित किया है-

क्योंकर हो मेरे मन मानिक की रक्षा ओह।
मार्ग के लुटेरे-काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह।
किन्तु मैं बढ़ूँगा राम-
लेकर तुम्हारा नाम।
रक्खो बस तात, तुम थोड़ी क्षमा, थोड़ा छोह।[106]

बोधगम्यता- गुप्त जी ने अपने काव्य-सुमनों की भाषा में बोधगम्यता को भी उतना ही स्थान दिया है जितना सहजता और सरलता को। उदाहरण देखिये:-

'हम हिन्दुओं' के सामने आदर्श जैसे प्राप्य हैं -
संसार में किस जाति को किस ठौर वैसे प्राप्य हैं ?[107]
'भूमि पर प्रकटा अनादि अनन्त है।
राम सीता धन्या धीराम्बरा इला।
शौर्य- सह सम्पत्ति, लक्ष्मण उर्मिला।
भरत-कर्त्ता, माण्डवी उनकी क्रिया।
कीर्ति-सी श्रुतिकीर्ति शत्रुहन प्रिया।[108]

पात्रानुकूल एवं भावानुकूल- यदि कवि में गहन अनुभूति है तो कृति भी उतनी ही उत्कृष्ट होगी। उसकी रचना 'सोने में सुहागा' वाली कहावत को पूर्णतया चरितार्थ करेगी। 'यशोधरा' और 'साकेत' में कवि ने पात्रानुकूल और भावानुकूल शब्दों का बड़ा ही सुन्दर और उचित प्रयोग किया है-

पात्रानुकूल भाषा-

नहीं पियूँगा, नहीं पियूँगा, पय हो चाहे पानी।
नहीं पियेगा बेटा यदि तू ,तो सुन चुका कहानी।
तू न कहेगी तो कह लूँगा मैं अपनी मनमानी।
सुन राजा वन में रहता था, घर रहती थी रानी।
और हठी बेटा रहता था,- नानी-नानी-नानी।
बात काटती है तू, अच्छा जाता हूँ मैं मानी।
नहीं नहीं बेटा, आ, तू ने यह अच्छी हठ, ठानी,
सुनकर ही मानी, सोना मत, नई कहूँ कि पुरानी। [109]

भावानुकूल भाषा-

हे आर्य, रहा क्या भरत अभीप्सित अब भी ?
मिल गया अकंटक राज्य उसे जब, तब भी ?
मुझसे मैंने ही आज स्वंय मुँह फेरा।
हे आर्य बता दो तुम्ही अभीप्सित मेरा। [110]

सुन्दर शब्द चयन-

आनुगत्य, पितुराज्ञा, दक्षिणात्य, लंकेश, गहित्य, तिरुपाक्ष प्रणिधान। [111अ] कवि ने देशज शब्दों का प्रयोग भी किया है। जैसे [111आ]-मचिका, अकधक,डील, डिठौना,महुआ, कलेवा, धुआंधार, निगोड़ी, चरर-मरर आदि।

कवि ने काव्य को नवीनता प्रदान करने के लिये अभिनव शब्दों को विनिर्मित भी किया है , जो पूर्णरूपेण व्याकरण सम्मत हैं, जैसे- आकणर्य, उत्कर्णता, पारस्परिकता, सारल्य, साहित्य, अस्थर्य, प्रतिभात, विस्तारी आदि। [112] इसके अतिरिक्त कवि ने विदेशी शब्दों का भी तुकान्त के लिये प्रयोग किया है। यत्र-तत्र उर्दू शब्द भी दृष्चिगोचर होते हैं , जैसे- ऐतिहासिक वृत जिनमें है खुर्द। [113] कवि ने दीर्घ समासान्त [114] पदों का भी प्रयोग किया है इससे काव्य में अधिक सौन्दर्य आ गया है। जैसे-प्रज्ञा वर्ग की धर्म-धान्य-धन वृद्धियाँ। [114अ]

सूक्तिमय वाक्य- गुप्त जी ने अपनी रचनाओं में सूक्तिमय वाक्यों का अधिकाधिक तथा सुन्दर और उत्कृष्ट वर्णन किया है। उसके उदाहरण दृष्टव्य हैं-

'अबला जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी-

आँचल में है-दूध और आँखों में पानी।[115]

'पालिया उन्होने किन्तु ज्ञान का उजाला।'[116]

'राम, तुम्हारा वृत्त स्वंय ही काव्य है,

कोई कवि बन जाये सहज सम्भाव्य है।[117]

अभिधा-लक्षणा-व्यंजना- गुप्त जी ने अमिधा, लक्षणा, व्यंजना का भी सुन्दर प्रयोग किया है, जो प्रशंसनीय है-

-'देख लो साकेत नगरी यह छोटा-सा छोना।

कितना उज्ज्वल, कैसा कोमल क्या ही सुन्दर सलोना।[118] **'अमिधा शक्ति'**

-करुणे क्यो रोती है ? उत्तर में और अधिक तू रोई,

मेरी विभूति है जो, उसको 'भवभूति' क्यों कहे कोई।[119] **'लक्षणा शक्ति'**

- मुझे फूल मत मारो।

मैं अबला बाला वियोगिनी, कुछ तो दया विचारो।

रूप-दर्प-कन्दर्प तुम्हें तो मेरे पति पर वारो,

तो यह मेरी चरण-धूलि उस रति के सिर पर धारो।[120] **'व्यंजना शक्ति'**

गुप्त जी की यह भाषा स्वच्छता और दीप्ति से आलोकित है। यह भाषा उनको अनायास या परम्परा से नहीं मिली है -इसके पीछे वर्षो अनवरत साधना है- अविश्राम परिश्रम है। इस घोर परिश्रम का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि मैथिलीशरण जी से अनन्य साधक को 'रंग में भंग' की अनगढ़ लड़खड़ाती भाषा से 'जय भारत' की दीप्ति और परिमार्जित भाषा तक पहुँचने में लगभग 40 वर्ष बीत गये। इन चालीस वर्षो की लम्बी अनवरत साधना का फल हैं उनके काव्य ग्रंन्थों की पंक्तियाँ जो आज भी लोगों की वाणी से सुनी जाती है। नन्द किशोर जी ने गुप्त जी की प्रशंसा में सत्य ही कहा है-

'तो जिया था फ़कत उम्र के चार दिन।

दो कलम के लिये, दो वतन के लिये।।

छन्द- छन्द काव्य का श्रृंगार है। छन्द के सुमधुर प्रसाधनों से सजकर कविता कामिनी अद्भुत सौन्दर्य को प्राप्त होती है,उसकी गति में एक मनोहारी झंकार आती है, वह कान्ता के कोमल स्वर से परिपूर्ण हो जाती है ; वह कर्ण प्रिय होकर श्रोता के हृदय पर अनायास ही अपना अधिकार जमा लेती है, तथा उसमें अत्यधिक भाव- प्रेषणीयता आ जाती है, जिससे उसे भावुक जन शीघ्र ही याद

कर लेते हैं। [121]

इस प्रसंग में कविवर पंत की निम्न पंक्तियाँ विशेषत: अवलोकनीय हैं- '......कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है। जिस प्रकार नदी के तट अपने बन्धन से धारा की गति को सुरक्षित रखते हैं - जिसके बिना वह अपने ही बन्धनहीनता में अपना प्रवाह खो बैठती है- उसी प्रकार निर्जीव शब्दों के जोड़ों में एक कोमल, सजल, कलरव भर उन्हें सजीव बना देते हैं।' [122]

इस प्रकार छन्द पद्य् रचना मात्र नहीं है, वे मनोभावों को मार्मिक रूप प्रदान करने के साधन हैं।

गुप्त काव्य में छन्दों का कोई विशेष आग्रह नहीं है किन्तु अधिकांश रचनायें शास्त्रीय छन्दों में आबद्ध हैं। उन्होने मात्रिक और गेय छन्दों की योजना की है। गुप्त जी की छन्दयोजना व्यापक और वैविध्यपूर्ण है। इतिवृत्त प्रसंगों में उन्होने हरिगीतिका को अपनाया है तथा करूण में वियोगिनी का प्रयोग किया है। भावपूर्ण दृश्यों में घनाक्षरी, संयोग शृंगार के प्रसंगों में पयूष तथा विरह दशाओं में भुजंग प्रयात, शार्दूल विक्रीड़ित जैसे छन्दों का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त गुप्त जी ने शिखरणी, आर्या, उपेन्द्रवज्रा, मालिनी, द्रुत विलंबित, सवैया, पादाकुलक, दोहा, छप्पय का भी सफल प्रयोग किया है।

डॉ. ऊषा गुप्ता ने अपने निबन्ध में मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में 'संगीत' में छन्द की महत्ता को प्रकट करते हुये लिखा है- 'छन्द से काव्य में नाद सौन्दर्य की सृष्टि होती है। उसमें गीत और लय के समावेश से झंकार और मधुरता भर जाती है। खड़ी बोली का संगीत मात्रिक छन्दों से अधिक निखरता है। यही कारण है कि उनके काव्य में मात्रिक छन्द का बाहुल्य है। ......छन्दों के अतिरिक्त गुप्त जी ने गीत भी लिखे हैं। उनके प्रबन्ध और नाट्य रचनाओं में अनेक प्रगीत मिलते हैं। उन्होने मुक्त काव्यों के अन्तर्गत गीत भी गाये हैं। उन्होने राष्ट्रीय गीत, उद्बोधन गीत, शोक गीत, आध्यात्मिक गीत, प्रेम-प्रगीत आदि विविध भावों एवं विषयों से सम्बद्ध गीत लिखे हैं। [123]

आइये गुप्त जी के काव्य में वर्णित छन्दों पर एक विहंगम दृष्टि डालते चलें :-

गीतिका-

लोक शिक्षा के लिये अवतार जिसने था लिया,
निर्विकार निरीह होकर, नर सादृश्य कौतुक किया।
राम नाम ललाम जिसका सर्व मंगल धाम है,
प्रथम उस सर्वेश को श्रद्धा-समेत प्रणाम है। [124]

इसके प्रत्येक चरण में 26 मात्रायें हैं। दूसरे और तीसरे में 14 तथा 12 पर तथा पहले और चौथे

में 12 तथा 14 पर यति है। ये दोनों नियमानुकूल हैं। [125] नीतिका को मधुर बनाने वाला 'रगण' भी है। गीतिका की चारुगति के लिये उसके प्रत्येक चरण की तीसरी, दसवीं और सत्रहवीं मात्रायें लघु होनी चाहिये। उपर्युक्त छन्द के चारों चरण में यह विशेषता विद्यमान है।

हरिगीतिका-

पापी मनुज भी आज मुँह से राम नाम निकालते,
देखो भंयकर भेड़िये भी आज आँसू डालते।
आजन्म नीच अधर्मियों के जो रहे अधिराज हैं,
देते अहो! सद्धर्म की वे भी दुहाई आज हैं। [126]

यहाँ नियमानुसार 16-12 की यति से 28 मात्रा हैं। चौथे चरण में यति भंग का भ्रम हो सकता है- किन्तु वे और भी अपनेआप में पूर्ण है। अत: यह शंका निमूर्ल है। हरिगीतिका में छठी, सातवीं, आठवीं, और इक्कीसवीं, बाइसवीं तथा तेइसवीं, मात्रा का क्रम '।ऽ।' नहीं होना चाहिये। [127]

उक्त छन्द के चारों चरण में इस सूक्ष्मता का भली भांति परिपालन हुआ है। माधुर्य के निमित्त चरणान्त में रगण भी है।

दोहा-

'धनुर्वाण वा वेणु लो, श्याम रूप के संग,
मुझपे चढ़ने से रहा, राम! दूसरा रंग। [128]

यहाँ विषम चरणों में 13 सम में 11 मात्रायें तो हैं ही पर साथ ही दोहे की निर्दोषता के लिये अनिवार्य विषय चरणों के आदि जगण का अभाव है- और अन्त में लघु भी है।

बरवै-

'अवधि-शिला का उर पर, था गुरु भार'
तिल-तिल काट रही थी, दृग्जल धार। [129]

यथा नियम प्रथम और तृतीय चरणों में 12-12 तथा द्वितीय और चतुर्थ चरणों में 7-7 मात्रायें है। अन्त में जगण बरवै को अधिक रोचक बनाता है। [130]

वीर अथवा मात्रिक सवैया-

नहीं जानते तुम कि देख कर, निष्फल अपना प्रेमाचार
होती हैं अबलायें कितनी, प्रबलायें अपमान विचार।
पक्षपातमय सानुरोध है, जितना अटल प्रेम का बोध,

उतना ही बलबत्तर समझो कामनियों का वैर विरोध।[131]

16-15 पर यति से प्रत्येक चरण में 31 मात्राये हैं। सभी के अन्त में 'ऽ।' है। वीर छन्द का कैसा दोष मुक्त उदाहरण है।

(आर्या) गीति-

नाथ कहाँ जाते हो ?

अब भी यह अधंकार छाया है।

हा ! जग कर क्या पाया

मैने यह स्वप्न भी गँवाया है।[132]

यहाँ गीति के लिये अपेक्षित विषम चरणों 12 तथा सम पदों में 18 मात्रायें हैं किन्तु यह तो उसका स्थूल नियम है। गीति छन्द आर्या के पाँच प्रधान भेदों से एक है। भानु जी ने आर्या के विषय में लिखा है-'आर्या छन्द में चार मात्राओं के समूह को गण कहते हैं। ऐसे चतुष्कलात्मक सात गण और एक गुरु के विन्यास से आर्या का पूर्वार्द्ध होता है।'[133]

गुप्त जी ने अपने इस छन्द में शास्त्र के सूक्ष्म कठोर नियमों का सफल निर्वाह किया है।

छप्पय-

'हिन्दी को केवल न, मातृ भाषा ही मानो,'

व्यापकता में उसे, देश भाषा ही जानो।

होगी मन की बात, परस्पर ज्ञात न जब लो,

होकर भी हम एक, भिन्न ही से हैं तब लो।

बस हिन्दी की ये भिन्नता दिन-दिन करती दूर है।

नि:शेष शक्तिमय ऐक्य को भरती वह भरपूर है।[134]

इसमें नियमानुसार पहले चार पद 11-13 की यति से 24 मात्राओं वाले रोला के हैं और अन्तिम दो चरण 15-13 की यति से उल्लाला के दो दल हैं।

द्रुत- विलम्बित-

सुख सभी जिसको तुमने दिये,

विविध रूप धरे जिसके लिये।

न कुछ वस्तु अलभ्य रही जहाँ,

अब हरे वह भारत है कहाँ।[135]

यहाँ प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण (।।।) भगण (ऽ।।) भगण (ऽ।।) और रगण (ऽ।ऽ) आयोजित हैं, द्रुत विलम्बित का यही नियम है। [136] इस छन्द का अन्य नाम सुन्दरी है।

बसन्त तिलिका-

'रे क्रोध, जो सतत बिना जलावे,
भस्वा व शेष नर के तनु को बनावे।
ऐसा न और तुझसा जग-बीच पाया,
हारे विलोक हम किन्तु न दृष्टि आया। [137]

इसके प्रत्येक चरण में ऽऽ।, ऽ।।, ।ऽ।, ।ऽ।, ऽऽ अर्थात् तगण, भगण, जगण, जगण और दो गुरू हैं।

शिखरणी-

आदर्शी राजा से न निज सुत तो शासित हुये,
खरे भी खोटे से, बुध विदुर निष्कासित हुये।
चिकित्सा ऐसी क्या, शमन करती शल्य उनका ?
बढ़ा आगे से भी, विषमतम वैकल्य उनका। [138]

इस पद्य के प्रत्येक चरण में 17 वर्ण है उनका क्रम इस प्रकार है- य, म, न, स, भ, ल, ग, तथा 6, 11, पर यति है जो शिखरणी के नियमानुसार ही है। [139]

स्त्रग्धरा-

'राना ऐसा लिखेंगें, यह अघटित है, कि किसी ने हँसी है।
मानी है एक ही वे, बस नस-नस में धीरता की धँसी है।
यों ही मैंने सभा में, कुछ अकबर की वृत्ति है आज फेरी'
रक्खो चाह न रक्खो अब सब विध है आपको लाज मेरी। [140]

यहाँ के प्रत्येक चरण में भगण, रगण, भगण, नगण, यगण, यगण, यगण, के क्रम से 21 वर्ण है। 7,7,7, पर यति है। इस प्रकार स्रग्धरा के लिये अपेक्षित सभी उपकरण उपस्थित हैं।

सवैया-

'सखि मैं भव कानन से निकली बन के इसकी वह एक कली,
खिलते खिलते जिससे मिलने उड़ आ पहुँचा हिम हेम अली।
मुसकाकर अलि, लिया उसको, तब लो ये कौन बयार चली,

'पथ देख जियो' कह गूँज यहाँ किस ओर गया वह छोड़ चली। [141]

यह दुर्मिल सवैया है। इसके प्रत्येक पद में आ. सगण (।।ऽ) हैं। इनके अतिरिक्त गुप्त जी ने कुछ विदेशी छन्द तथा कुछ नवीन छन्दों को भी अपने काव्य में व्यवहृत कर सफल प्रयोग किया है।

इससे स्पष्ट होता है कि गुप्त जी का अपने काव्य में प्रयुक्त छन्दों पर पूर्ण अधिकार था। अधिकांशत: मात्रिक छन्द ही उनके काव्य में प्रयुक्त हुये हैं और वे हिन्दी की गति के लिये अनुकूल भी हैं। अत: यह निर्विवाद सत्य है कि गुप्त जी की छन्द योजना व्यापक, विशद और भावानुकूल है तुककौशल तो गुप्त जी का सामान्य है, फिर भी कहीं-कहीं अकाव्योचित प्रयोग हुये हैं।

डॉ. उमाकान्त के शब्दों में - 'छन्द स्वामित्व उनकी शक्ति भी है और अशक्ति भी है। पर खोज करने पर यति भंग और गति भंग भी मिल जायेगा , पर ऐसा बहुत कम स्थलों पर हुआ है- और वे स्थल महार्ण में क्षुद्र वीचि-तुल्य नगण्य है।' [142]

तात्पर्य यह है कि गुप्त जी का छन्द विधान स्तुत्य है और सफल है। एक सफल शिल्पी और शक्तिशाली प्रयोक्ता के समान छन्दों पर उनका पूर्णाधिकार है।

अलंकार- काव्य-कामिनी को अलंकृत करने के लिये जो उपकरण प्रयुक्त किये जाते हैं, उन्हें अलंकार की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। काव्य के लिये ये एक अनिवार्य तत्व है इससे सौन्दर्य का अभिवर्द्धन होता है। श्री गुप्त जी ने अपने काव्य में शब्दालंकारो, अर्थालंकारों एवं उभयालंकारों का विभिन्न भेदों सहित खुल कर प्रयोग किया है। उन्हें वृत्यानुप्रास, छेकानुप्रास, यमक पुनुरुक्ति, वीप्सा, श्लेष एवं मुद्रालंकार अतिप्रिय हैं। अर्थालंकारों में कवि ने उपमा, गुण सादृश्य, रूप सादृश्य, रंग सादृश्य,पूर्णोपमा, अनन्वय-स्मरण, सांगरूपक, संदेह, भ्रान्तिमान अतिशयोक्ति, दृष्टान्त, निदर्शना, व्यतिरेक, समासोक्ति, अप्रस्तुत, विरोधाभास, विभावना एवं विशेषण, विपर्यय आदि का अधिक प्रयोग किया है। अलंकारों का मुख्य कार्य कविता के भावों को उत्कर्षित करना व वस्तुओं के रूप, गुण, क्रिया व प्रभाव के अनुभवो को तीव्र करना है। अत: गुप्त जी ने इस भावोत्कर्ष साधन को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है उनके कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं-

यमक- चित्र भी था चित्र और विचित्र भी,
रह गये चित्रस्थ से सौमित्र भी। [143]

श्लेष- उस रुदन्ती विरहिणी के रुदन रस के लेप से,
और पाकर ताप उसके प्रिय-विरह-विक्षेप से। [144]

उपमा- केतु पट अंचल सदृश्य है उड़ रहे, [145]

घन पटल से केश कान्त कपोल हैं।[146]

रूपक- मग्न अथाह प्रेम सागर में , मेरा मानस हंस हरे।[147]

पुनुरुक्ति- अबला जन का जन्म सहन के अर्थ है,
सौ- सौ चिन्ता वहन के अर्थ हैं।[148]

उत्प्रेक्षा - मानो तरु भी झूम रहे है मन्द पवन के झोंकों से।[149]

निरंग रूपक - राम सीता धन्य धीराम्बर इला,
शौर्य सह सम्पत्ति लक्ष्मण उर्मिला।[150]

सांगरूपक- तुम ऋतु राज बसन्त तुम्हारा यशगाती कोकिल,
फैलाता है दिक् दिगन्त में सुयश सुरभि मलयानिल।
देते हैं हिलमिल द्रुम बल्ली पुष्प पाँवड़े खिल-खिल
पाती हूं मैं दीन दूर से झलक तुम्हारी झिल-मिल।[151]

अतिशयोक्ति- डोल उठा इंद्रासन आप,वज्राधिक था जिनका शाप।
रचे जिन्होंने तीर्थ अनेक, जिसके बिना न हो अभिषेक।[152]

व्यतिरेक- कहती मैं चातकि फिर बोल,
एक हारी आँसू की बूंदें दे सकतीं यदि मोल।
कर सकते हैं क्या मोती भी उन बोलों की तोल।[153]

गुप्त जी ने अपने काव्य में चित्र योजना को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है। गुप्त जी की सर्वप्रिय और उत्कृष्ट रचना 'साकेत' का एक मनोरम चित्र उपस्थित है-

'तरु तले विराजे हुये शिला के ऊपर,
कुछ टिके-धनुष की कोटि टेक कर भूपर,
निज लक्ष्य सिद्धि सी तनिक घूम कर तिरछे,
जो सींच रही थी पर्ण कुटी के विरछे-
उन सीता को, निज मूर्तिमती माया को,
प्रणयी प्राणा को और कान्त काया को,
यो देख रहें थे राम अटल अनुरागी,
योगी के आगे अलख-ज्योति ज्यों जागी।[154]'

दिव्य युगल के पावन दाम्पत्य जीवन का यह अलौकिक चित्र कितना मुर है। इन पंक्तियों को

पढ़ते ही भव्य और मनोहारी संश्लिष्ट चित्र आँखों के समक्ष घूम जाता है। इस उद्धरण में चित्रण कला के समस्त गुण उपस्थित हैं। चित्रण कला योजना के अन्तर्गत गुप्त जी ने रेखा चित्रों को भी प्रस्तुत किया है-निम्न पंक्ति में करुण दैन्य दशा का अंकन देखिये-

'लगी सतृष्ठा देवकी की वह कातर दृष्टि उसी पर'।[155]

यहाँ अनुभाव के चित्रण से करुण-दृष्टि असहाय देवकी का चित्र सामने आ जाता है।

एक अत्यन्त हल्की रेखा का चित्र देखिये -

'हिल-हिल कर मिल गई परस्पर लिपट जटायें।'[156]

लक्ष्य करने की बात है कि यह पंक्ति कितनी सारगर्भित है। राम और भरत चौदह वर्षों बाद मिल रहे हैं। इस पंक्ति को पढ़कर चौदह वर्ष की तपस्या, तपस्या के कारण, तथा बीच में आने वाली विघ्न बाधाओं की स्मृति हो आती है। यहां एक चित्र विशेष नहीं वरन् सम्पूर्ण वृत चलचित्रों की भाँति घूम जाता है। गुप्त जी ने अपनी दृष्टि वर्ण योजना पर डाल कर वर्णों की व्यवस्थित योजना के चित्र भी खींचे हैं। वास्तव में उसी से काव्य के उत्कृष्ट चित्रों की उपलब्धि हो सकती है, जिसे वर्णो का परिज्ञान हो। हिन्दी में इस कला के कोविद पंत जी हैं, वे इस क्षेत्र में अद्वितीय हैं। गुप्त जी पंत के समान सजग शिल्पकार नहीं हैं अत: उनके काव्य में वर्णो की कुशल योजना का सन्धान व्यर्थ है। रंगों का प्रसंग आने पर वे प्राय: बात को इस प्रकार टाल जाते हैं -

कोट-कलश पर प्रणीत विहंग हैं,
ठीक जैसे रूप वैसे रंग हैं।[157]

कहीं-कहीं सर्वथा नूतन एवं अछूते प्रयोग भी गुप्त जी ने किये हैं। यह उनकी शक्ति का परिचायक है। वैतालिक की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

हरे पावड़े बड़े-बड़े
जिनमें लाखों रत्न जड़े
बिछा चुकी है वसुन्धरा।[158]

अप्रस्तुत विधान- वर्ण्य विषय की स्पष्टता एवं सुबोधता के लिये गुप्त जी अप्रस्तुत-योजना करते हैं। प्रकृत अथवा प्रस्तुत की गोचरता एवं बोधगम्यता के निमित्त सभी कवियों ने जीवन में नाना किन्तु परिचित क्षेत्रों से अप्रस्तुत विधान किया है। वस्तुत: अप्रस्तुत विधान अभिव्यक्ति को रमणीय एवं सबल बनाने का सबसे सहज एवं उपयोगी साधन है।[159] अप्रस्तुत विधान का मुख्य आधार है साम्य। **पं. राम दहिन मिश्र** के अनुसार- 'अप्रस्तुत योजना के मूल

में जन्म-जन्मान्तरों की संचित वासना काम करती है।' [160] साम्य के प्रमुख तीन प्रकार हैं -

1. रूप साम्य अथवा सादृश्य

2. धर्म साम्य अथवा साधर्म्य

3. प्रभाव साम्य

रूप साम्य- प्रस्तुत पंक्तियों के रूप एवं आकार को स्पष्ट करने के लिये सादृश्य अथवा रूप साम्य अप्रस्तुत विधान का प्रयोग किया जाता है। वस्तु का बोध कराने के लिये इसका प्रयोग अनिवार्य है। अनादि काल से कवि समाज सादृश्य का निरूपण करता आ रहा है ; अत: गुप्त जी ने भी इसका प्रयोग किया है।

उर्मिला का रूप चित्रण करते हुये गुप्त जी लिखते हैं -

'पद्म रागों से अधर-मानों बने,
मोतियों के दाँत निर्मित हैं घने। [161]

गुप्त जी ने पद्म रागों और मोतियों के उपमानों से सौन्दर्योद्भावना की शक्ति का निराकरण कर दिया है। इनके प्रयोगों में सिर्फ असमर्थ परम्परा का पालन मात्र है। परम्परा भक्ति के अतिरिक्त रूप चेतना का भी सूक्ष्म-प्रखर चित्रण किया है जो गुप्त जी की प्रतिभा सम्पन्नता को दर्शाता है-

प्यार किया है तुमने केवल , सीता यह कह मुसकाईं ;
किन्तु राम की उज्ज्वल आँखें, सफल सीप सी भर आईं। [162]

धर्मसाम्य अथवा साधर्म्य- साधर्म्य का आधार है धर्म अथवा गुण का साम्य साधर्म्य के प्रयोग द्वारा कवि वस्तु के धर्म- विषयक आत्मस्थ अनुभूति को पाठक के लिये संवेदनीय बनाता है। आज साधर्म्य का उतना महत्व नहीं है। आधुनिक कवि बड़ी कुशलता से साधर्म्य का प्रयोग करता है, गुप्त जी ने भी अपनी कृतियों में इसका सफल चित्रांकन किया है-

उड़ते प्रभंजन से यथा तप मध्य सूखे पत्र हैं,
लाखों यहाँ भूखे भिखारी घूमते सर्वत्र हैं। [163]

यशोधरा की निम्न पंक्तियों में साधर्म्य का द्विगुणित प्रयोग हुआ है-

रवि पर नलनी की, प्रति-छवि पर मौन दृष्टि जब जा रही
वहाँ अंक में मधुप, यहाँ मैं, गिरा एक गुण गा रही। [164]

प्रभाव साम्य- प्रभाव साम्य, साधर्म्य और सादृश्य से श्रेष्ठ और सूक्ष्मतम है। इसकी योजना प्रस्तुत और अप्रस्तुत के प्रभाव की समानता को ध्यान में रख कर की जाती है। गुप्त जी के काव्य

में इसका प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है -

जी रही है देवराज्ञी कैसे मरे अमरी
मंडरा रही है शून्य वृत पर भ्रमरी। [165]

देवराज्ञी की विषम स्थिति स्पष्ट करने के लिये इससे अधिक उपयुक्त उपमान शायद और नहीं हो सकता। जय भारत की निम्न पंक्तियों में भी प्रभाव साम्य का अद्भुत चमत्कार है-

खलबल से व्याकुल कुल-ललना वाष्प वेग से बफरी सी,
आप खींचते केश जाल में तड़प रही थी शफरी सी। [166]

जिन्होने कभी जाल में फँसी मछली की तड़फड़ाहट को देखा है वही द्रौपदी की आकुल दशा का अनुभव कर सकते हैं। यहाँ दोनों के सम्मलित प्रभाव का कितना अद्भुत साम्य है।

मूर्त और अमूर्त अप्रस्तुत - स्वरूप बोधता एवं भाव तीव्रता की स्पष्टतर अनुभूति के निमित्त कविगण क्रमशः मूर्त एवं अमूर्त उपमानों की योजना करते हैं। इसके चार रूप हो सकते हैं-

1. मूर्त का मूर्त विधान
2. अमूर्त का अमूर्त विधान
3. मूर्त का अमूर्त विधान
4. अमूर्त का मूर्त विधान

इनमें से प्रथम दो सहज साध्य और सुगम हैं- साधारण कवियों की रचनाओं में भी उनका उपयोग देखा जा सकता है , किन्तु अन्तिम दो का वैभव श्रेष्ठ कलाकारों की कृतियों में ही देखा जा सकता है। वास्तव में इन दो विधानों में ही कवि- कौशल की परीक्षा होती है। [167]

गुप्त जी की रचनाओं में इनके उदाहरण प्रचुर परिमाण में उपलब्ध हैं। यहाँ मूर्त के अमूर्त विधान का उदाहरण द्दष्टव्य है-

'चला धन्य गुरु विजय पंथ वह,यहाँ अवन मय के ही संग ;
ग्रहण काल भी दे जाता है, मंत्र सिद्धि का योग अभंग। [168]

यहाँ यवन राज में पंथ का चल निकलना उपमेय है जो मूर्त है। इस जटिल तथ्य को बोधगम्य बनाने के लिये ग्रहण काल में मंत्र सिद्धि के अवसर जैसा अमूर्त उपमान उपयुक्त है।

गुप्त जी ने अपने काव्य में अमूर्त के मूर्त विधान का भी चमत्कार दिखलाया है-

'फिर भी एक विषाद बदन के तपस्तेज में बैठा था,
मानो लोह तन्तु मोती को बेध उसी में बैठा था। [169]

इस प्रकार यहाँ गुप्त जी ने बड़े चातुर्य से एक अमूर्त तथ्य को मूर्तमन्त कर दिया है।

धर्म के लिये धर्मी का प्रयोग- धर्म के स्थान पर धर्मी का प्रयोग एक आकर्षक एवं अभिव्यंजना प्रणाली है। प्रभाव में तीव्रता प्रदान करने के लिये कविजन इसका प्रयोग करते हैं। छायावादी कवियों में इसका प्रयोग अधिक मिलता है। छायावादी कवि न होने पर भी युग प्रतिनिधि कवि मैथिली शरण जी में इस प्रवृति का अभाव नहीं है -

तुम पर आप जय सिंह निछावर है।
'मुझ पर ! आके लगी मूठ सी गुलाल की
शनक को,........................ ।[170]

धर्मो के लिये धर्म का प्रयोग- इसके विपरीत कवि व्यक्ति अथवा वस्तु के स्थान पर गुण या धर्म का प्रयोग करते हैं। धर्म के लिये धर्मी का प्रयोग करने में यदि कवि का उद्देश्य तीव्रता होता है तो अभिव्यंजना की इस प्रणाली का लक्ष्य व्यापकता हुआ करता है। उदाहरणार्थ-

'हित में अहित, अहित में हित, '
किन्तु मानता है अविवेक।[171]

यहाँ अविवेकी न कहकर अविवेक कहा गया है, जिसने निश्चय ही उक्ति के प्रभाव को व्यापक बना दिया है। यदि सिर्फ धर्मी का प्रयोग होता तो उसका क्षेत्र प्रसंगत: व्यक्ति विशेष तक सीमित रहता किन्तु धर्म के प्रयोग से इसका क्षेत्र विस्तार हो गया है।

मानवीकरण- मानवीकरण भी काव्य कला को अभिव्यक्ति प्रदान करने की एक उत्तम युक्ति है। इसमें निर्जीव पदार्थो, अमूर्त भावानाओं अथवा अवयव विशेष पर मानवीय गुणों का आरोप किया जाता है। जिससे उसकी संवेदनशीलता में पर्याप्त वृद्धि होती है। अंग्रेजी में मानवीकरण को अलंकारत्व पद भी प्राप्त हो गया है , किन्तु हिन्दी में अलंकारों का विवेचन और ढंग से होने के कारण इसे पदवी नहीं मिल सकी है। फिर भी भारतीय कवि प्राचीन काल से जान अनजाने रूप में इसका प्रयोग करते चले आ रहे हैं। किन्तु इसका प्रचुर प्रयोग आधुनिक काल में ही हुआ है। छायावादी रचनायें मानवीकरण से परिपूर्ण है। गुप्त जी ने भी इस विधि को अपनाकर साहित्य की श्री वृद्धि की है। ' गुप्त जी की आरम्भिक रचनओं में मानवीकरण का सौन्दर्य देखा जा सकता है -

कान पकड़ कर मन को,
प्रिय का गुण-जाल खींच झट लेता है।[172]

इस उद्धरण में मानव अंगों का आरोप सूक्ष्मेन्द्रिय मन पर हुआ है। परन्तु निम्न पंक्तियों में स्थूल

अवयय नासिका को सशरीर व्यक्तित्व प्रदान किया गया है -

जन्म दिया जिसने तुमको फिर,
पाल बराबर अन्न खिलाया।
नाक की नाक तुम्हारे लिये यहीं,
चन्द्र की चाँदी जो चाँदनी लाया।[173]

इसी तरह कवि अमूर्त यौवन को मानव शरीर दे देता है।

नारीत्व का आभास - प्रकृति के जिन चित्रों में नारीत्व का आभास मिलता है वे विशेषत: रमणीय होते हैं। आधुनिक कवियों में इस प्रवृत्ति का विशेष विकास दृष्टव्य होता है। गुप्त जी भी इससे अछूते नहीं रह सके हैं -

अरुण संध्या को आगे ठेल,
देखने को कुछ नूतन खेल;
सजे विधु की बेंदी से भाल,
यामिनी आ पहुँची तत्काल।[174]

यहाँ विलीन होती हुयी संध्या और बढ़ती हुयी रात्रि का वर्णन है। यहाँ गुप्त जी ने रात्रि और संध्या को दो मुग्धा नायिकाओं के रूप में देखा है। शृंगारित-प्रसाधित रात्रि कौतूहल वश नूतन खेल देखने के लिये अपने आगे खड़ी हुयी संध्या को धकेलकर आगे बढ़ रही है।

विशेषण विपर्यय- मानवीकरण के साथ-साथ विशेषण-विपर्यय को भी गुप्त जी ने अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। पश्चिम के इन दो अलंकारों को कवियों ने बड़ी सुगमता और मनोयोग से अपनाया है। विशेषण-विपर्यय भी उसी के समान काव्य की श्री वृद्धि में सहायक एक सशक्त साधन है। विशेषण-विपर्यय के प्रयोग से उक्ति वक्र और चमत्कार पूर्ण बनती है, वहीं भाव-गाम्भीर्य की अभिव्यक्ति भी सहज हो जाती है।

श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशु के अनुसार-' भावाधिक्य की व्यंजना के लिये विशेषण - विपर्यय अलंकार का व्यवहार बहुत सुन्दर है। '[175]

यह अलंकार यद्यपि पश्चिम की देन है फिर भी प्राचीन काव्य में इसका अभाव नहीं है। काव्य के उस अतल पारावार में डुबकी लगाने पर एक - दो उदाहरण तो मिल ही जायेगें -

है साऊघरी भाग उघरी अनंदघन,
सुरस बरसि लाख देखि हौं हरी हमें।[176]

शुभ घड़ी में मनुष्य का भाग खुला करता है - किन्तु यहाँ कवि ने विशेषण-विपर्यय घड़ी को ही खुले भाग्य वाली बना दिया है। गुप्त जी ने भी इसका सप्रयत्न प्रयोग किया है। वे इसके प्रति सचेष्ट हैं - किन्तु प्रयत्न का अभाव है। इसी कारण उनके विपुल साहित्य में बहुत कम उदाहरण हैं-

'आप में हमारा काम आज मूर्तिमन्त है ;
चलिये न नन्दन में उत्सुक वसन्त है। [177]

यहाँ बसन्त की उत्सुकता का उल्लेख किया गया है पर वास्तव में बसन्त उत्सुक नहीं है, वरन बसन्त के प्रभाव से नन्दन वन की चिरउपभोगी अप्सरा-समाज नये इन्द्र के सम्पर्क के लिये उत्कंठित है। गुप्तजी ने उक्ति में वैचित्र्य व विशेष अर्थ के समाहार के लिये बसन्त को उत्सुक कह दिया है।

संभावना मूलक अलंकार- काल्पनिक कवि बहुत ही मनोरम संभावित उपमानों की कल्पना करते हैं। यही वह अवसर होता है जब वे अपनी कल्पना की उन्मुक्त उड़ान भरते हैं, किन्तु गुप्त जी काल्पनिक कवि नहीं है फिर भी उनके काव्य में संभावना मूलक अप्रस्तुत योजनायें सहज सम्भव है -

पहुँचे गंगा तीर धीर, घृतिधार कर,
यह थी एक विशाल मोतियों की लड़ी।
स्वर्ग कंठ से छूट, धरा पर गिर पड़ी,
सह न सकी भव ताप, अचानक गल गई। [178]

यहाँ गंगा को गली हुयी मौक्तिक माला बताया है। मौक्तिक माला के द्रव्य में और गंगा जल में जो रंग का सादृश्य है वह तो बहुत स्थूल है। इसमें कल्पना का विलास ही दृष्टव्य है। स्वर्ग से गिरने, भव-ताप से द्रवित होने आदि का उल्लेख होने के कारण इस लोक में गंगा के अवतरण की पौराणिक कथा मन में घूम जाती है जिससे यह संभावना और भी प्रभावपूर्ण बन जाती है।

आरोप मूलक अलंकार- जिनके मूल मे किसी न किसी प्रकार से प्रस्तुत पर अप्रस्तुत आरोपण रहता है, वे अलंकार आरोप मूलक कहलाते हैं।

गुप्त जी ने आरोप मूलक अलंकारो का काफी प्रयोग किया है -

उस रुदान्ती विरहणी के रुदन-रस के लेप से,
और पाकर ताप उसके प्रिय विरह विक्षेप से।
वर्ण-वर्ण सदैव जिन के हों विभूषित कर्ण के,
क्यों न बनते कवि जनों के ताम्र पत्र सुवर्ण के। [179]

विरहणी उर्मिला पर रुदन्ती (जड़ी विशेष) का आरोप किया गया है। कवि ने अपने अद्भुत कौशल से रूपक की योजना की है।

प्रस्तुत के स्थान पर अप्रस्तुत विधान - कभी-कभी अप्रस्तुत को निगीर्ण ही कर जाता है अर्थात प्रस्तुत सर्वथा अनुल्लिखित रहता है। अप्रस्तुत का वर्णन उसके स्थान पर रहता है। अगर अप्रस्तुत योजनाओं से प्रस्तुत के ग्रहण में बाधा पड़ती है तो यह विधान भूषण न होकर दूषण हो जाता है। अत: गुप्त जी के काव्य में वर्णित उद्धरण दृष्टव्य हैं -

गजराज पंक में धँसा हुआ,
छटपट करता था फँसा हुआ।
हथनियाँ पास चिल्लाती थी,
वे विवश विकल बिल्लाती थीं। [180]

अरे विहंग लौट आ तेरा
नीड़ रहा इस वन में ;
छोड़ उच्च पद की उड़ान वह
क्या है शून्य गगन में। [181]

इन उद्धरणों में गुप्त जी ने अप्रस्तुत विधानों को बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है।

चमत्कार मूलक अलंकार- उत्तम काव्य का मूलोद्देश्य सहृदय के मन का प्रसादन है। इसके अल्पांश में बौद्धिक विस्मय निहित रहता है। प्रसादन और विस्मय के मणिकांचन संयोग से काव्य की रोचकता एवं दीप्ति में वृद्धि होती है , किन्तु इन दोनों का मिश्रण उचित अनुपात में बँधा होना चाहिये। [182] गुप्त जी की रचनाओं पर दृष्टि डालने से यह ज्ञात होता है कि उन्हें चमत्कार मूलक अलंकार से विशेष लगाव नहीं है अत: ऐसे अलंकारों के उदाहरण बहुत कम ही प्राप्त होते हैं किन्तु उनके काव्य में चमत्कार भावाभिव्यंजना साधक ही हुआ है बाधक नहीं -

हा नेत्र युत भी अन्ध हूँ वैभव सहित भी दीन हूँ,
वाणी-विहित भी मूक हूँ, पद युक्त भी गति दीन हूँ। [183]

यहाँ विशेषोक्ति अलंकार है। कारण के विद्यमान होने पर भी कार्य सम्पन्न नहीं होता। किन्तु चमत्कार आधृत यह अलंकार उत्तरा के विलाप की गम्भीरता में बाधक नहीं है, वरन् उसकी असहाय अवस्था की प्रभाव पूर्ण व्यंजना में सहायक ही सिद्ध हुआ है।

अतिशयोक्तिमूलक अलंकार- प्रभाव क्षमता की वृद्धि के लिये ही कविजन अतिशियोक्ति पूर्ण वर्णन करते हैं। साधारण वर्णन से मानव स्वभाव प्रभावित नहीं होता, अत: अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन के द्वारा ही प्रभाव की सृष्टि की जा सकती है। अत: इसका मुख्य कार्य भाव और प्रभाव को बढ़ाना है किन्तु जब कवि अतिशय को ही उद्देश्य मान रचना करता है तब वह रचना नही बौद्धिक कसरत मात्र रह जाती है।

सौभाग्यवश गुप्त जी में इस प्रवृत्ति का एकान्ताभाव है। उन्हें अतिशयमूलक अलंकार प्रिय नहीं है, फिर भी इससे बच नहीं सके हैं, पर गुप्त जी ने साधन के रूप में स्वीकार किया है उद्देश्य के रूप में नहीं -

'शर खींच उसने तूण से कब कि धर संधाना उन्हें,
बस विद्ध होकर ही विपक्षी वृन्द ने जाना उन्हें।[184]

यहाँ अभिमन्यु के अद्‌भुत युद्ध कौशल को साधन के रूप में वर्णित करके अतिशय का उपयोग किया है। इस प्रकार गुप्त जी ने स्वाभाविक रूप से अलंकारों का प्रयोग किया है। उनके काव्य में न तो केशव जैसी अलंकारप्रियता है और न ही क्लिष्टता, वरन् जो भी अलंकार उनके काव्य में आये हैं वे अनायास हैं- सायास नहीं। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न अलंकारों के प्रयोग करने पर भी उनकी काव्य-कामिनी का कलेवर कान्त ही रहा, विद्रूप नहीं हो पाया। मन्दिरों के कलश की आभा के समान उनके काव्यालंकारो में दिव्य दीप्ति विद्यमान है। कवि ने सर्वत्र प्रबन्धोचित्य, गुणोचित्य, अलंकारोचित्य, रसौचित्य, लिंगोचित्य तथा पदौचित्य का ध्यान रखा है। इसीलिये वे राष्ट्र-भाषा हिन्दी की अभिवृद्धि करते हुये सहज और सरल कवि माने गये हैं। हिन्दी को उन पर अभिमान हैं। वे एक वरेण्य कवि हैं।

गुण- 'जिस प्रकार सौन्दर्य के साथ अलंकार शरीर शोभा की अभिवृद्धि करते हैं ठीक उसी प्रकार गुण भी काव्य में चमत्कार एवं रमणीयता उपस्थित करते हैं।'[185]

-'जो रस के धर्म और उत्कर्ष के कारण हैं और जिनकी रस के साथ अचल स्थिति रहती है; वे गुण कहे जाते हैं।'[186]

'रस के धर्म होने पर उनमें उनकी अचल स्थिति होने पर भी उपचारत: गुणों का सम्बन्ध अथवा अस्तित्व में भाषा मान लिया जाता है। पंडित राज जगन्नाथ के अनुसार तो माधुर्य आदि गुण केवल रस में ही नहीं शब्द और अर्थ में भी रहते हैं -'तथा च शब्दार्थ योरपि माधुर्यादेरी दृशस्य सत्त्वादुपचारों नैव कल्प्य इति तु मादृशा:।'[187]

गुणों की संख्या के विषय में आचार्यो में बहुत मतभेद रहा है। भरत और दण्डी ने दस गुण माने हैं। वामन के अनुसार बीस हैं - दस शब्द गुण और दस अर्थ गुण- और बढ़ते-बढ़ते भोज के यहाँ उनकी संख्या बहत्तर हो गई है। [188] किन्तु मम्मट ने सम्यक समीक्षण के पश्चात् गुण के केवल तीन भेद माने हैं ; और शेष को इन्हीं में अन्तर्भूत कर दिया या गुणों की परधि से बहिष्कृत कर दिया और तभी से आज तक गुण प्राय: तीन ही माने जाते हैं। वे तीन गुण क्रमश: -माधुर्य, ओज एवं प्रसाद हैं। गुप्त जी ने अपने काव्य में इन गुणों का श्रेष्ठ निदर्शन ही प्रस्तुत किया है।

माधुर्य- इस गुण के कारण अन्त:करण आनन्द से द्रवीभूत हो जाता है। यह गुण क्रमश: संयोग से करुण में, करुण से विप्रलम्भ में और विप्रलम्भ से शान्त रस में अधिकाधिक अनुभूत होता है। गुप्त जी की रचनाओं में यह गुण पर्याप्त मात्रा में प्रयुक्त हुआ है।

उदाहरणार्थ-

टप टप गिरते थे अश्रु नीचे निशा में,
झड़ झड़ पड़ते थे तुच्छ तारे दिशा में।
कर पटक रही थी निमग्ना पीट छाती,
सन-सन करके थी शून्य-सी साँस आती।
सखी ने अंक में खींचा, दु:खिनी पड़ सो रही,
स्वप्न में हँसती थी हा! सखी थी देख रो रही। [189]

तथा - 'विप्रवर पढ़ने लगे तब वेद मंत्र विधान से,
वर-वधू शोभित हुये एकत्र रूप निधान से।
पद्मयुत प्रकटित हुयी हो पद्मिनी ज्यों अधिखिली,
शौर्य से सम्पत्ति मानों नग होकर आ मिली। [190]

ओज- इस गुण की रचना को पढ़ते या सुनते ही स्फूर्ति आ जाती है। मन में तेज उत्पन्न हो जाता हैं और चित्त में एक अपूर्व दीप्ति उत्पन्न हो जाती है। यह ओज गुण क्रमश: वीर से वीभत्स, वीभत्स से रौद्र में अधिक अनुभूत होता है। जैसे-

छातियाँ सजीव सी शिलायें टकराती थीं ;
देख-देख दर्शकों की आखें चकराती थीं।
लड़-लड़ जाते कुछ गंडकों-से मुंड थे,
टाँगे मारते थे मत्त वारणों के शुंड थे।
कर धरते थे कर किंवा अजगर थे,

करते अमानुषिक नाट्य वे दो नर थे। [191]

तथा-

तब निकल कर नासा पुटों से व्यक्त करके रोष त्यों,
करने लगा निश्वास उसका भूरि भीषण घोष यों। [192]

प्रसाद- यह गुण रचना को पढ़ते या सुनते ही समझ में आ जाता है, क्योंकि प्रसाद गुण वाली रचना अत्यन्त सरल, सुबोध शब्दों में होती है। उदाहरणार्थ-

भूल इस भव में मनुष्य से ही होती है,
अन्त में सुधारता है उसको मनुष्य ही।
किन्तु वह चुक हाय ! जिसके सुधार का,
और जन जीवन बिगड़ जैसे जाता है। [193]

तथा- तेरह वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, पर है मानों काल की बात,
वन को आते देख हमें जब आर्त, अचेत हुये थे तात।
अब वह समय निकट ही है, जब अवधि पूर्ण होगी वन की,
किन्तु शाक्ति होगी इस जन को , इससे बढ़कर किस धन की। [194]

इस प्रकार गुप्त साहित्य में गुणों का अच्छा और सुन्दर निर्वाह हुआ है

रीति- जहाँ वृत्ति का सम्बन्ध वर्णो से है, वहाँ रीति का सम्बन्ध पदों से होता है। इसी कारण साहित्य दर्पणकार ने पदों के मेल या संगठन को रीति कहा है और यह बताया है कि जैसे शरीर में अंगों का संगठन होता है, वैसे ही काव्य में शब्दों व अर्थो का संगठन होता है। काव्य के इस संगठन का कार्य रीतियाँ करती हैं और वे काव्य के आत्मभूत रस भाव आदि की उपकारक होती हैं। [195] इसके चार भेद माने गये हैं- वैदर्भी, पाँचाली, गौड़ी और लाटी ,परन्तु लाटी भेद को केवल रुद्रट ही ने माना है। शेष सभी विद्वान तीन रीतियों को ही मानते हैं। काव्य में तीन गुणों, तीन वृत्ति तथा तीन रीतियों का ही अधिक प्रचलन है। [196]

वैदर्भी- इस रीति में माधुर्य गुण, व्यंजन सुकमार वर्ण, असमास या मध्यम समास, सौकुमार्यवती रचना का एकत्र संयोग होता है। [197]

जल में शतदल तुल्य तरसते,
तुम घर रहते हम न तरसते,
देखो दो-दो मेघ बरसते,

मैं प्यासी की प्यासी। आओ हो वनवासी। [198]

पाँचाली रीति- इस रीति में पद न तो कठोर होते हैं और न सुकुमार, अपितु दोनों के अन्तरालवर्ती पदों की योजना की जाती है। मुख्यत: पंचम वर्णो से युक्त पदों का प्रयोग इस रीति में किया जाता है। साकेत में इस रीति के उदाहरण अधिक प्राप्त होते हैं। जैसे -

पट मंडप चारों ओर तने मनभाये,
जिन पर रसाल, मधु, निम्ब, जम्बु वट छाये।
मानो बहु कटि पर, चित्रकूट ने पाये,
किम्बा नूतन घन उसे घेर फिर आये। [199]

तथा - चारु चन्द्र की चचंल किरणें, खेल रही हैं जल थल में
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुयी है अवनि और अम्बर तल में।
पुलक प्रकट करती है धरती हरित तृणों की नोकों से,
मानो झीम रहे हैं तरु भी मन्द पवन के झोंकों से। [200]

गौड़ी रीति - इस रीति के अन्तर्गत ओज गुण, कठोर वर्ण वाले पद दीर्घ समास, विकट रचना आदि का एकत्र समावेश होता है -

बनी गढ़ी-सी पहिन मढ़ी का मुकुट पहाड़ी
रक्षक सेना घनी-घनी काँटों की झाड़ी। [201]

इस प्रकार गुप्त जी ने सम्पूर्ण मानव जीवन को - जीवन में सम्भव प्राय: सभी स्थितियों को अपने काव्य का विषय बनाया है। उनके काव्य में रीतियों का अच्छा निर्वाह हुआ है।

शैली - शैली कवि के अभिव्यंजना कौशल्य की सही पहचान है। अनुभूति की गहनता और अभिव्यक्ति प्रणाली शैली के घटक तत्व हैं। शैली का सम्बन्ध शील से होता है। शैली में संप्रेष्य वस्तु के शील के साथ ही कवि के व्यक्तित्व का शील भी प्रभावित होता है। शील को कलात्मक गरिमा और प्रभावविन्त के साथ व्यक्त करने वाली शैली काव्य के प्रतिपाद्य को महिमा मण्डित कर देती है। उनके काव्य में शैलीगत वैविध्य सहज रूप से लक्षणीय है। बहु विधि विविधताओं के होते हुये भी गुप्त जी की शैली में स्वाभाविकता, सरलता और स्वच्छता सर्वत्र दिखाई पड़ती है। उनकी शैली के ये गुण वस्तुत: उनके सरल और मुख्यधर्मी व्यक्तित्व के प्रतिफल हैं। [202]

काव्यकृति की प्रेषणीयता अथवा प्रभावित करने की शक्ति उसकी शैली पर निर्भर रहती है।

वस्तु प्रधान काव्य में विषय-निरूपण अथवा वृत्त-वर्णन कवि का प्राथमिक कार्य होता है। गुप्त जी ने- विषय-निरूपण, वृत्त-वर्णन और भावात्मक शैली का मुख्यत: व्यवहार किया है। यथा -

विषय निरूपण- यह क्या हुआ कि अभी-अभी तो रो रहे थे ताप से,
है और अब हँसने लगे वे आप अपने आप से।
ऐ क्या कहा ? निज चेतना पर आ गई उनको हँसी,
गीता श्रवण के पूर्व थी जो मोह माया में फँसी।[203]

वृत्त-वर्णन - मुँह टेक कर ही गये विपिन वे ही किसी को देह न दृष्टि,
घनीभूत सी माँ कुन्ती में हुयी विश्व की करुणा सृष्टि।
रहना पड़ा विदुर सह उनको रखकर अपनों का अनुरोध,
राम बिना कौशल्या मानो करती थी सब सूना बोध।[204]

वर्णन का मूल सौन्दर्य अभिव्यंजना में होता है। उसे प्रभाव और चमत्कार द्वारा सम्पन्न बनाने के लिये उसमें धाराप्रवाह या क्रमबद्वता को ही महत्व नहीं दिया जाता अपितु वर्ण-वस्तु को विभाजित करके कभी विवरण या प्राकथन तथा कभी अभिनयात्मक तथा कभी-कभी दोनों को समायोजित कर लिया जाता है। यही कारण है कि प्राकथन के द्वारा वर्णन और चित्रण जैसी पद्धतियाँ प्रयुक्त की जा सकती हैं तथा अभिनयात्मक में नाट्य गुणों के अन्तर्गत-संवाद प्रत्यक्ष, घटना-व्यापार तथा गत्यात्मक चित्रण आदि का समाहार किया जा सका है। परन्तु गुप्त जी ने इन दोनों पद्वतियों को समायोजित कर एक नयी पद्वति का निर्माण कर प्राय: उसे ही व्यवहृत किया है। साथ ही उन्होंने अभिव्यंजनात्मक और सूक्ति प्रधान पद्धतियों की भी यत्र-तत्र छठा बिखेरी है।

प्राकथन शैली- इस शैली के अन्तर्गत कवि स्वंय ही कथावस्तु का निरूपण करता है, जैसे -

विष्णु प्रिया स्तब्ध हुयी सुनकर पहले।
भ्रान्त-सी उन्हीं की ओर कुछ क्षण देखा कि
काँपी फिर और गिरी पैरों पर उनके,
निगड़ लता सी गतिरोध लिपटी।
रोई वह किन्तु बोल पाई नहीं कुछ,
आँसू बह निकले, वचन नहीं निकले।[205]

गुप्त जी ने यहाँ वृत्त-वर्णन ही नहीं किया है, अपितु इसमें प्रिय को प्रस्थान के लिये तत्पर देख कर प्रिया की स्थिति अनुभावों के द्वारा व्यंजित की है। यह उसी का भावात्मक चित्रण है।

प्राकथन शैली के अन्तर्गत वर्णन और चित्रण दोनों प्रकार की प्रणालियाँ प्रयुक्त होती हैं। वर्णन वैविध्य के उदाहरण द्रष्टव्य है-

प्रसंग वर्णन - आज सुर राज शक्र स्वर्ग-भ्रष्ट हो गया,
और स्वर्ग वैभव शची का सब सो गया।
जी रही है देवराज्ञी कैसे भरे आमरी,
मँडरा रही है शून्य वृन्त पर भ्रामरी।[206]

रूप वर्णन - पाकर विशाल कच भार एड़ियाँ धँसती,
तब नख ज्योति मिस, मृदुल अँगुलियाँ हँसती।
पर पग उठने में भार उन्हीं पर पड़ता,
तब अरुण एड़ियों से सुहास सा झड़ता।[207]

आत्म कथात्मक वर्णन -
भूल पिता के लाड़ प्यार में कर्त्री बन कर,
जो मुझसे भी बात किया करती थी तन कर।
दीन दुःखनी और भयाकुल वह जो दीखी,
मेरे उर में धँसी एक बरछी - सी तीखी।

घटनात्मक वर्णन -
सुत तो उठ बैठा सचेत हो, रहा अचेत पिता ही,
यत्न न करती कहीं उलूपी जाती चुनी चिता ही।
अपनी ही आत्मा थी यह तो , अन्य कौन जय पाता,
जो भी जहाँ लड़ा अर्जुन हारा हुआ कर दाता।

गुप्त जी ने यहाँ वर्णन पद्वति के साथ-साथ चित्रण पद्धति का भी अच्छा व्यवहार किया है। उन्होंने प्रकृति या वस्तु स्थान को ही नहीं मानव सौन्दर्य के स्थिर तथा गतिशील चित्रों को भी आलेखित किया है-

प्रकृति चित्रण - जीर्ण तेरी भूरि भार-देख अरी एरी।
कठिन पंथ दूर पार और यह अँधेरी।
सजनि उल्टी बयार, वेग धरे प्रखर धार,
पद-पद पर विपद-वार सजनी घन घेरी।'[208]

वस्तु-चित्रण -

प्रिया कंठ से छूट सुभट कर शस्त्रों पर थे,
श्रस्त वधू-जन हस्त स्रस्त से वस्त्रों पर थे।
प्रिय को निकट निहार उन्होने साहस पाया,
बाहु बढ़ा पद रोप, शीघ्र दीपक उकसाया। [209]

मानव सौन्दर्य का स्थिर रूप-

चूमता था भूमि तल को अर्ध-विधु-सा भाल,
बिंध रहे थे प्रेम के दृग जाल बन कर बाल।
छत्र-सा सिर पर उठा था प्राणपति का हाथ,
हो रही थी प्रकृति अपने आप पूर्ण सनाथ। [210]

मानव सौन्दर्य का गतिशील रूप-

'देखा प्रिय को चौंक प्रिया ने , सखी किधर थी,
पैरों पड़ती हुयी उर्मिला हाथों पर थी। [211]

अभिनयात्मक शैली- गुप्त जी की रचनाओं में इस शैली का प्रत्यक्ष विधान हुआ है। यह औपचारिक वस्तु नहीं बल्कि नाट्‌य गुण है। इसके द्वारा प्रबन्ध काव्यों में सजीवता, स्वाभाविकता तथा प्रभावोत्पादकता उत्पन्न की जाती है। कहीं इस पद्धति की चमत्कार योजना तथा कहीं दृश्य योजना का सहकारी तत्व दिखाया जाता है , किन्तु गुप्त जी की प्रबन्ध-शैली का यह मुख्य तत्व है। संवाद, घटना-व्यापार तथा गत्यात्मकता उनके काव्य का प्रधान आकर्षण है।

संवाद - रिपुंजय- क्या पाया मेरी धरती ने धर कर मेरा भार ?
(ब्रह्मा का आविर्भाव) ब्रह्मा-'हुआ तुम्हारे तप के बल से पुरुष पुण्य परिपुष्ट। [212]

घटना व्यापार- हो जाना लता न आप लता संलग्ना,
कर तल तक तो तुम हुई, नवल दल-मग्ना।
ऐसा न हो कि मैं फिरूँ-खोजते तुमको,
है मधुप ढूँढ़ता यथा मनोज्ञ कुसुम को। [213]

आत्माभिव्यंजक शैली- गुप्त जी के काव्य में आत्माभिव्यंजक शैली भी व्याप्त है। इस शैली की प्रधान उपलब्धि यह है कि कवि ने वस्तु सौन्दर्य का ही नहीं मानसिक सौन्दर्य का भी चित्रण किया है। उन्होने घटनात्मक जीवन की ही नहीं, पात्रों की मन:स्थितियों और संवेदनाओं को भी

प्रमुखता दी है। इस पद्धति की यह विशेषता है कि इसमें वस्तुसत्ता का विधान विन्यास घटनात्मक न होकर आत्माभिव्यंजक रहता है -

सौभाग्य-भाव से मिला हुआ, श्वासोच्छवासों से मिला हुआ,
संसार विटप में खिला हुआ, झड़ पड़ा अचानक झूल-झूल।
मेरे आँगन का एक फूल।[214]

सूक्ति शैली- गुप्त जी सूक्तिकार कवि नहीं हैं किन्तु फिर भी उन्होंने मुक्तक पदों की रचना की है। उन्हें वचन वक्रता, अलंकार योजना, नीति कथन आदि के द्वारा चमत्कृत बनाया है। गुप्त जी की मुक्तक रचनायें सूक्ति के रूप में रची गई हैं। इस पद्धति का उपयोग उन्होने सामाजिक कार्यो के लिये किया है। कवि ने इसमें विशेष रूप से चमत्कार साधन का रचना कौशल प्रकट किया है। यह गुप्त जी की प्रासंगिक रचना शैली है -

'अबला के भय से भाग गये, वह उससे भी निर्बल निकले,
नारी निकले तो असती है, नर यती कहा कर चल निकले।
कहती है मेरी शुभा सखी-क्या आशा थी क्या फल निकले
लुट गये पलों में युग मेरे, अब फूट युगों के फल निकले।[215]

इस प्रकार गुप्त जी की शैली उनके महामहिम प्रतिपाद्य के अनुरूप अत्यन्त शालीन विभूतिमयी तथा गरिमायुक्त है। जीवन और जगत के वैविध्य-वर्णन में सक्षम तथा विस्तारगर्भा है और प्रारम्भ से अन्त तक ओज, समृद्धि और गाम्भीर्य से युक्त है जो चित्त की स्फीर्ति में समर्थ है।

अत: गुप्तजी के काव्य-कलाप में हमें अनेक शैलियों के दर्शन होते हैं। उन्हें अपनी बात कहने का ढंग आता है , और इस क्षेत्र में उन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली है।

साराशंत: कहा जा सकता है कि गुप्त जी का कला क्षेत्र भी भाव पक्ष के सदृश्य ही उत्कृष्ट तथा मर्मस्पर्शी है। उनकी रचनाओं में व्यक्ति, जीवन तथा सामाजिक जीवन की सम्पूर्ण अन्विति-विसंगति समाहित हुयी है अत: वे रचनायें जीवन और समाज के उज्जवल रूप हैं।

संदर्भ सूची

1. साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन , डॉ. सक्सेना, पृष्ठ-120
2. सिद्धान्त और अध्ययन, बाबू गुलाब राय, पृष्ठ - 175
3. जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त, श्री लक्ष्मीनारायण सुधाशु, पृष्ठ-3
4. रस मीमांसा, आचार्य शुक्ल,पृष्ठ-168
5. पातंजल योग दर्शन ; सुखानुशयी राग : । 217 दुःखानुशयी द्वेष : । 218
6. गुप्त जी की काव्य साधना, डॉ. उमाकान्त, पृष्ठ- 8- 9
7. दे. रस मीमांसा में विभाव का विवेचन, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
8. रीतकाल (भूमिका से उद्धृत)
9. गुप्त जी की काव्य साधना, डॉ. उमाकान्त, पृष्ठ- 10
10. रीत काव्य की भूमिका , डॉ. नगेन्द्र ,पृष्ठ-81
11. गुप्त जी की काव्य साधना, डॉ. उमाकान्त, पृष्ठ- 11
12. वाङ्मय विमर्श, पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृष्ठ - 127
13. हाथ लक्ष्मण ने तुरन्त बढ़ा दिये ।
और बोले एक परिरम्भण प्रिये ॥
सिमट सी सहसा गई प्रिय की प्रिया ।
एक तीक्षण अपांग ही उसने दिया ॥
किन्तु घाते में उसे प्रिय ने किया ।
आप ही फिर प्रात्य अपना ले लिया ॥ - साकेत प्रथम सर्ग, पृष्ठ- 40
14. साकेत , अष्टम सर्ग , पृष्ठ- 265.
15. मानस मन्दिर मे सती पति की प्रतिमा थाप ।
जलती सी उस विरह मे बनी आरती आप ॥ -साकेत, नवम् सर्ग, पृष्ठ- 268
16. यशोधरा , मैथिली शरण गुप्त, पृष्ठ- 25.
17. जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त, श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशु, पृष्ठ-92
18. जय भारत, मैथिलीशरण गुप्त , पृष्ठ- 441
19. भारत-भारती, वर्तमान खण्ड, पृष्ठ- 100
20. साकेत, पृष्ठ- 287
21. साकेत, नवम् सर्ग , पृष्ठ- 293
22. भारत-भारती, वर्तमान खण्ड , पृष्ठ- 101.
23. साकेत , पृष्ठ- 293.
24. साकेत , पृष्ठ- 304
25. यशोधरा , पृष्ठ- 48
26. यशोधरा , पृष्ठ- 48
27. भारत-भारती , वर्तमान खण्ड , पृष्ठ- 101
28. सिद्धराज , पंचम सर्ग , पृष्ठ- 112.
29. गोस्वामी तुलसीदास , संस्करण संवत् - 2003 पृष्ठ- 73.
30. रंग में भंग , मैथिलीशरण गुप्त , पृष्ठ- 10
31. पद्य- प्रबन्ध , पृष्ठ- 28.
32. साकेत , पृष्ठ- 214.
33. काव्य दर्पण, पं. रामदहिन मिश्र, पृष्ठ- 174.
34. यशोधरा , पृष्ठ- 44.

35. काव्य कल्पद्रुम, प्रथम भाग , सेठ कन्हैया लाल पोद्दार, पृष्ठ- 215
36. जय भारत , पृष्ठ- 282- 283
37. रंग में भंग , पृष्ठ- 29
38. शक्ति, पृष्ठ- 12.
39. जयद्रथ- वध, पृष्ठ- 25.
40. नहुष , पृष्ठ- 10
41. साकेत , पृष्ठ- 123.
42. पंचवटी, पृष्ठ- 12.
43. जयद्रथ वध, पृष्ठ- 384
44. यह स्व शब्द वाच्यत्व दोष है।
45. मंगल घट, पृष्ठ- 271.
46. जयद्रथ वध , पृष्ठ- 41.
47. युद्ध , पृष्ठ- 17
48. काव्य- कल्पद्रुम, प्रथम भाग, सेठ कन्हैया लाल पोद्दार, पृष्ठ- 231
49. साकेत , पृष्ठ - 293
50. विश्व-वेदना, पृष्ठ- 43.
51. काव्य - दर्पण, पं. रामदहिन मिश्र , पृष्ठ- 114
52. काव्य - दर्पण , पं. रामदहिन मिश्र,पृष्ठ- 218
53. द्वापर, मैथिलीशरण गुप्त, मंगलाचरण,
54. हिन्दी साहित्य , आचार्य बाजपेई, विज्ञप्ति, पृष्ठ - 9
55. सरस्वती, जनवरी - 1905, पृष्ठ- 25.
56. मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य, डॉ. कमला कान्त पाठक , पृष्ठ - 67.
57. रस मीमांसा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल , पृष्ठ- 111
58. साकेत, अष्टम सर्ग, पृष्ठ - 264
59. पंचवटी ,
60. साकेत , अष्टम सर्ग, पृष्ठ - 225.
61. यशोधरा , पृष्ठ- 64.
62. झंकार , इन्द्रजाल , पृष्ठ- 93.
63. जय भारत, तीर्थयात्रा , पृष्ठ- 167-168
64. भारत-भारती , अतीत खण्ड, पृष्ठ- 62 - 63.
65. प्रदक्षिणा, पृष्ठ- 53.
66. अनघ, (उद्यान) पृष्ठ-34.
67. अनघ , पृष्ठ- 8.
68. पंचवटी, पृष्ठ- 11
69. अनघ , पृष्ठ- 73.
70. झंकार , पृष्ठ- 106
71. यशोधरा , पृष्ठ- 110
72. साकेत , नवम् सर्ग , पृष्ठ- 299
73. साकेत, नवम् सर्ग पृष्ठ- 300
74. साकेत , नवम् सर्ग, पृष्ठ- 313
75. साकेत, नवम् सर्ग , पृष्ठ- 317
76. झंकार ,पृष्ठ- 10

77. पंचवटी , पृष्ठ- 78.
78. साकेत, नवम् सर्ग , पृष्ठ- 296
79. यशोधरा, पृष्ठ- 47
80. साकेत नवम् सर्ग , पृष्ठ- 277
81. साकेत अष्टम सर्ग, पृष्ठ- 226.
82. साकेत , सप्तम सर्ग , पृष्ठ- 184.
83. द्वापर , अक्रूर , पृष्ठ- 89.
84. द्वापर , पृष्ठ- 107.
85. कुणाल- गीत, पृष्ठ- 63.
86. यशोधरा , पृष्ठ- 68.
87. साकेत, अष्टम सर्ग , पृष्ठ- 221-222.
88. भारत-भारती , पृष्ठ- 170- 171.
89. साकेत नवम् सर्ग, पृष्ठ- 286.
90. सिद्धराज, प्रथम सर्ग, पृष्ठ- 6.
91. साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृष्ठ- 178
92. रत्नावली , पृष्ठ- 41
93. मामुलिया (राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जन्मशती स्मारिका) अंक - 11- 20, संम्पादक नर्मदा प्रसाद गुप्त, लेख :- हमारे ददूदा : सम्पूर्ण कवि, स्व. हरिभाऊ उपाध्याय पृष्ठ- 25.
94. गुप्त जी की काव्य साधना, डॉ. उमाकान्त, पृष्ठ- 49-50.
95. साकेत : एक अध्ययन , डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ- 196.
96. हिन्दी भाषा, बाबू श्याम सुन्दर दास, पृष्ठ- 43 - 44.
97. प्रिय-प्रवास, भूमिका भाग से अववरित।
98. महावीर प्रसाद द्विवेद्वी और उनका युग, उदय भानु सिंह , पृष्ठ- 291
99. साकेत, निवेदन, पृष्ठ- 2.
100. ओढ़े दुशाले अति उष्ण अंग,
धारे गरू वस्त्र हिये उमंग।
तो भी करें हैं सब लोग सी. सी.
हेमन्त में हाय काँपे बती सी।' 'हेमन्त' शीर्षक कविता, गुप्त जी
101. मध्य प्रदेश संदेश, जुलाई सन् 1987, पृष्ठ -15
102. समय के पाँव, 1957.
103. काव्य प्रभाकर, जगन्नाथ दास रत्नाकर (भानुकवि)
104. लेख - 'हिन्दी कविता किस ढंग की हो ' सन् 1924 , मैथिलीशरण गुप्त
105. सैरन्ध्री , पृष्ठ - 11.
106. नहुष , मंगलाचरण , पृष्ठ - 13.
107. भारत-भारती , भविष्यत खण्ड , छन्द - 11 , पृष्ठ - 161
108. साकेत, प्रथम सर्ग, पृष्ठ - 12.
109. यशोधरा, राहुल - जननी ,पृष्ठ - 57
110. साकेत , अष्टम सर्ग, पृष्ठ - 246- 247
111. (अ) साकेत, पृष्ठ - 334 से 442
111. (आ) साकेत , पृष्ठ - 40 से 501
112. साकेत, पृष्ठ - 26 से 472.
113. साकेत पृष्ठ - 21

114. साकेत पृष्ठ - 144 , 205, 223
114. (अ) साकेत, पृष्ठ - 136
115. यशोधरा, छन्द - 2, पृष्ठ - 52.
116. यशोधरा, शुद्धोदन, छन्द - 2 पृष्ठ - 35.
117. साकेत, निवेदन ।
118. यशोधरा , राहुल - जननी ,पृष्ठ - 52.
119. साकेत, नवम् सर्ग, पृष्ठ - 194.
120. साकेत, नवम् सर्ग, पृष्ठ - 226.
121. साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन , डॉ.द्वारिका प्रसाद सक्सेना , पृष्ठ - 256.
122. पल्लव , (भुमिका भाग से अवतरित) पंत्त सुमित्रानन्दन पंत, पृष्ठ - 21.
123. मामुलिया , राष्ट्र कवि जन्मशती विशेषांक, अंक -17- 20, सम्पादक - नर्मदा प्रसाद गुप्त, पृष्ठ - 5
124. रंग में भंग ,पृष्ठ - 5
125. छन्द प्रभाकर , भानुकवि , पृष्ठ - 65.
126. जयद्रथ वध, पृष्ठ - 78.
128. द्वापर , पृष्ठ - 9.
129. साकेत, पृष्ठ - 248.
130. गुप्त जी की काव्य साधना, डॉ. उमाकान्त, पृष्ठ - 273.
131. पंचवटी, पृष्ठ - 40-41.
132. यशोधरा, पृष्ठ - 23.
133. छन्द - प्रभाकर , मानुकवि, पृष्ठ - 98.
134. पद्य - प्रबन्ध , पृष्ठ - 77.
135. स्वदेश-संगीत, पृष्ठ - 34.
136. द्रुत विलम्बित माह नभौ भरौ ।
137. पद्य -प्रबन्ध ,पृष्ठ - 90
138. जय-भारत पृष्ठ - 283.
139. यमी न सो भूला, गुण गणनि गा गा शिखरणी । - छन्द प्रभाकर भानुकवि
140. पत्रावली, पृष्ठ - 6
141. साकेत पृष्ठ - 230.
142. गुप्त जी की काव्य साधना, डॉ. उमाकान्त , पृष्ठ - 286-287
143. साकेत , प्रथम सर्ग ,पृष्ठ - 35.
144. साकेत, नवम् सर्ग, पृष्ठ - 302.
145. साकेत , पृष्ठ - 19
146. साकेत , पृष्ठ - 27
147. द्वापर , पृष्ठ - 15
148. लीला , पृष्ठ - 31.
149. पंचवटी , मैथिलीशरण गुप्त -
150. साकेत , पृष्ठ - 18
151. रत्नावली , पृष्ठ - 36
152. हिन्दू , पृष्ठ - 25.
153. साकेत , पृष्ठ - 291
154. साकेत, पृष्ठ - 156.
155. द्वापर , पृष्ठ - 329.

156. साकेत , पृष्ठ - 14.
157. साकेत , पृष्ठ - 14.
158. वैतालिक , पृष्ठ - 9
159. देव और उनकी कविता , डॉ. नगेन्द्र , पृष्ठ - 182.
160. काव्य में अप्रस्तुत योजना , पं. राम दहिन मिश्र, प्रथम संस्करण की भूमिका से उद्धृत ।
161. साकेत , पृष्ठ - 19.
162. पंचवटी , पृष्ठ - 4.
163. भारत-भारती, पृष्ठ - 87.
164. यशोधरा , पृष्ठ - 117.
165. नहुष , पृष्ठ - 9.
166. जय भारत, पृष्ठ - 136.
167. गुप्त जी की काव्य साधना , डॉ. उमाकान्त , पृष्ठ - 219
168. गुरुकुल, पृष्ठ - 34.
169. साकेत , पृष्ठ - 269.
170.सिद्धराज , पृष्ठ - 65.
171. द्वापर , पृष्ठ - 62.
172. चन्द्रहास , पृष्ठ - 77.
173. स्वदेश -संगीत ,पृष्ठ - 120.
174. साकेत, पृष्ठ - 45.
175. काव्य मे अभिव्यंजना वाद, डॉ. सुधांशु , पृष्ठ - 151.
176. काव्य-दर्पण , राम दहिन मिश्र, पृष्ठ - 433
177. नहुष ,पृष्ठ - 37.
178. साकेत , पृष्ठ - 96.
179. साकेत, पृष्ठ - 195.
180. साकेत, पृष्ठ - 121.
181. द्वापर ,पृष्ठ - 185.
182. गुप्त जी की काव्य साधना , डॉ. उमाकान्त , पृष्ठ - 232.
183. जयद्रथ वध, पृष्ठ - 26.
184. जय द्रथ वध , पृष्ठ - 12.
185. सत रज तम त्यों मान्य है ; त्रिगुण लोक में ख्यात ।
है प्रसाद, माधुर्य त्यों ; ओज त्रिगुण विख्यात ॥
-काव्य -दर्पण , डॉ. राम स्वरूप खरे, पृष्ठ - 15-16
186. काव्य कल्पद्रुम, प्रथम भाग, रस मंजरी , सेठ कन्हैया लाल पोद्धार, पृष्ठ - 330
187. रस गंगाधर , निर्णय सागर प्रेस , संस्करण सन् 19-36 पृष्ठ - 68.
188. हिन्दी काव्यालंकार सूत्र की भूमिका , डॉ. नगेन्द्र पृष्ठ - 68.
189. साकेत दशम् सर्ग, पृष्ठ - 387
190. रंग में भंग,
191. हिडिम्बा, पृष्ठ - 22 - 23.
192. जय द्रथ वध, पृष्ठ - 30 .
193. सिद्धराज, पृष्ठ - 8.
194. पंचवटी ,पृष्ठ - 8.
195. पद संघटना रीति रङ्ग -संस्था विशेषवत् । उपमंत्री रसादिनाम - साहित्य दर्पण 9 /1

196. भारतीय साहित्य शास्त्र, भाग- 2 ,पृष्ठ - 205
197. भारतीय साहित्य शास्त्र , भाण - 2 ,पृष्ठ - 206
198. यशोधरा , पृष्ठ - 119
199. साकेत, प्रथम सर्ग , पृष्ठ - 244.
200. पंचवटी , पृष्ठ - 5.
201. अजित, पृष्ठ - 85.
202. महाराष्ट्र मानस , अंक - 4-5 सम्पादक प्रमोद माने, पृष्ठ - 120-121.
203. भारत-भारती, अतीत खण्ड , पृष्ठ - 33.
204. जय भारत ,पृष्ठ - 142.
205. विष्णु - प्रिया , पृष्ठ - 40
206. नहुष , शची ,पृष्ठ - 16
207. साकेत , पृष्ठ - 157.
208. यशोधरा , पृष्ठ - 47.
209. साकेत , द्वादश सर्ग, पृष्ठ - 305.
210. साकेत, पृष्ठ - 31.
211. साकेत ,पृष्ठ - 334.
212. पृथ्वी पुत्र , दिवोदास, पृष्ठ - 8.
213. साकेत , पृष्ठ - 162.
214. मंगलघट , पुष्पांजलि , पृष्ठ - 236.
215. विष्णु -प्रिया , पृष्ठ - 57.

अष्टम परिच्छेद

उपसंहार

उपसंहार

रामकाव्य परम्परा में आचार्यों और कवियों की एक विस्तृत परम्परा रही है जिन्होने रामकाव्य परम्परा में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस परम्परा में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी ग्रन्थों का उल्लेख्य प्राप्त है।

इस परम्परा की प्रथम कड़ी बाल्मीकि कृत 'रामायण' है तत्पश्चात कालिदासकृत 'रघुवंश' भट्टकवि कृत 'रावण-वध' बौद्ध कवि कुमार दास कृत 'जानकी-हरण' हैं। इसके अतिरिक्त, प्राकृत भाषा का 'सेतुबंध' या 'रावण वहो' महाकाव्य तथा अपभ्रंश भाषा का जैनकवि स्वयंभू द्वारा रचित 'उपम चरिउ' है। हिन्दी रामकाव्य परम्परा में सर्वप्रथम-तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' सर्वोत्कृष्ट है। तदुपरान्त केशवदास कृत 'रामचन्द्रिका' मधुसूदन दास चतुर्वेदी कृत 'रामाश्वमेध' रामचरित उपाध्याय कृत 'रामचरित चिन्तामणि' मैथिली शरण गुप्त कृत 'साकेत' श्री रामनाथ ज्योतिषी कृत 'श्री रामचन्द्रोदय' अयोध्या सिंह उपाध्याय कृत 'वैदेही वनवास' बल्देव प्रसाद मिश्र कृत 'साकेत संत', हरदयालुसिंह कृत 'रावण' तथा अन्तिम कड़ी में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' कृत 'उर्मिला' का स्थान है ; किन्तु जो स्थान मोती की माला में सुमेरु का है वहीं सर्वोच्च स्थान रामकाव्य परम्परा के साहित्य में 'साकेत' का है। इसका मुख्य कारण इसकी मौलिकता तथा नवीनता है जो साकेत अध्ययन के समय क्षण-क्षण में दृष्टिगोचर होती है। गुप्तजी ने 'साकेत' में रामकथा के साथ-साथ उन उपेक्षित अंशों को भी गृहण किया है जिसका साहित्य में सर्वथा अभाव है। गुप्त जी ने अपने लेखनी-कौशल के द्वारा भाव तथा कला निरूपण सम्बन्धी मौलिकता तथा मनोवैज्ञानिकता का अनोखा सामंजस्य स्थापित किया है। केकई की प्रायश्चित भावना, उर्मिला का विरह, तथा साकेतवासियों की देश व राजभक्ति जैसे मार्मिक स्थल इसके मुख्य उदाहरण है। गुप्तजी ने साकेत में अपने भावों और विचारों को उचित स्थान प्रदान करने के साथ अपनी युगीन मान्यताओं को भी प्रतिष्ठित किया है। गुप्तजी का सुन्दर सजीव बिम्ब विधान भी सर्वथा सराहनीय है। इस प्रकार उन्होंने भावों, रसों तथा बिम्ब-सौन्दर्य का विविधता, विचित्रता तथा व्यापारों की अनेकरूपता का वर्णन भी पूर्ण तल्लीनता के साथ विद्यमान है।

इस प्रकार महाकाव्य की दृष्टि से साकेत का भाव-तथा कला पक्ष प्रौढ़ तथा पुष्ट है। गुप्त जी ने 'साकेत' के अन्तर्गत भारतीय संस्कृति के मूल सिद्धान्तों को प्रस्तुत कर उसे श्रेष्ठता तथा उत्कृष्टता के सोपान पर चढ़ा दिया है। उन्होंने संस्कृति के महत्व को विभिन्न रूपों में बड़े ही सहज ढंग से प्रस्तुत किया है भारतीय संस्कृति की यह उज्जवल गाथा 'कान्ता सम्मत उपदेश' के कारण अत्याधिक प्रभावशाली बन गई है।

गुप्त जी ने अपनी मानवतावादी दृष्टि को पुष्ट करने के लिये 'साकेत' में भक्ति और दर्शन को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया है तथा उसमें क्षण-क्षण नवीनता लाने का सफल प्रयास किया है। साथ ही आधुनिक मानव-जीवन के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने वाले तत्वों (सहृदयता, सौजन्य, सौहार्द, सहानुभूति) को अपने भावों, विचारों और सिद्धान्तों के साथ प्रस्तुत काव्य में एक मन्दिर की भाँति अलंकृत किया है और देशवासियों को धर्म, देशभक्ति तथा अहिंसा का संदेश सुनाया है।

इस प्रकार युगानुकूल विचारों से पूर्ण सम्पन्न तथा सुव्यवस्थित यह काव्य, जगत् हित, विश्वकल्याण, तथा मानवता से भरा पड़ा है।

गुप्तजी की उर्वर कल्पना शक्ति एवं विकासवादी प्रतिभा ने युग जीवन का कोना-कोना झाँक कर उसका सांगोपांग चित्र प्रकीर्ण कविताओं एवं प्रबन्धात्मक काव्यों में अंकित किया है। इस प्रकार आपकी रचनाओं को यदि भारत के आधुनिक राष्ट्रीय जीवन का काव्यमय इतिहास कहें, तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

सत्य, प्रेम, अहिंसा, सेवा, विश्वस्त वृत्ति, ग्रामसुधार, सर्वोदय, हरिजन-उद्धार, शाश्वत एवं व्यापक धर्म, ईश्वर उपासना, रामराज्य तथा विभिन्न मत-मतान्तरों के समन्वय के भाव ने गुप्त जी के काव्य को एक विशिष्ट श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया है। इसीलिये आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल ने - 'कालानुसरण की 'क्षमता' गुप्त जी में सर्वत्र विद्यमान है जो अत्यन्त प्रशंसनीय है' कहकर अपना स्पष्ट मत व्यक्त किया था। इसी के आधार पर गुप्त जी राष्ट्रीय कवि भी हैं और जनता के प्रतिनिधि कवि कहलाने के अधिकारी हैं, क्योंकि आज अपने इस युग संघर्ष का स्वरूप जितनी-विविधता, जितनी स्पष्टता एवं जितनी गहनता के साथ गुप्त जी के काव्य में विद्यमान है, उतना अन्य दृष्टिगोचर नहीं होता।

इसमें कोई संदेह नहीं कि साकेत का निर्माण हिन्दी साहित्य की अनुपम घटना है और इसके निर्माण से न केवल खड़ी बोली के रामकथा सम्बन्धी महाकाव्य की पूर्ति हुयी, अपितु कामायनी जैसे विश्व-विश्रुत महाकाव्य को पूर्ण करने के लिये कविवर प्रसाद को भी प्रेरणा प्राप्त हुयी। इस प्रकार गुप्त जी के जीवन की व्यापक अनुभूतियों, राष्ट्रव्यापी हलचलों ग्राहस्थ जीवन की आधुनिक समस्याओं, भारतीय संस्कृति की परम्पराओं , युग की परिवर्तित विचार धाराओं, काव्य की नवीनतम शैलियों आदि को साकार रूप देने के लिये साकेत की अवतारणा हुयी। [1]

जहाँ तक गुप्त जी की अन्य काव्य-कृतियों का सम्बन्ध है, उन सब में प्रसाद , माधुर्य, एवं ओज गुण के साथ-साथ भाषा की तीनों शक्तियों का सम्यक निरूपण हुआ है। गुप्त जी की शृंगार भावना विलासिता के पंक में न डुबाकर उदात्त तत्व की ओर अग्रसर करती है। यही कारण है कि उनके समूचे साहित्य में कर्म का सौन्दर्य पग-पग पर दृष्टिगोचर होता है। जब यही कर्म सेवा का रूप धारण करता है तो मंगलमय बन जाता है और अन्त:करण में उदित, पवित्र भावनाओं की अभिव्यक्ति अशेष सत्य का साक्षात्कार करा देती है।

गुप्त जी ने 'वस्तु' और 'रस' का समीचीन उपयोग किया है। यही कारण है कि उनके समूचे साहित्य में कहीं भाषा का सौन्दर्य खिलखिला रहा है, तो कहीं भावों की सुन्दर-सुन्दर लहरियाँ भी अठखेलियाँ कर रही हैं। वैष्णव भावनाओं से अभिभूत प्रेम के पादपों पर छन्दों के पक्षी कलरव करते हुये दृष्टिगोचर होते हैं, ऐसे नैसर्गिक वातावरण में अनुभूति की षोडसी बालायें अपने निराभरण सौन्दर्य को और अधिक उभार देती हुयीं इस काव्योद्यान में अपनी छटा विकीर्ण क रती हुयी बड़ी भली लगती हैं।

सौन्दर्य एक अखण्ड तत्व है। चाहे उसे खण्ड-खण्ड रूप में देखा जाये, चाहे सम्पूर्ण रूप में सभी प्रकार से वह अत्यन्त आकर्षक मनोहरी एवं हृदय को प्रेरित करने वाला सिद्ध होता है। इस सौन्दर्य तत्व में इतनी अमोघ शक्ति होती है कि वह जड़ को भी चेतनता प्रदान कर देती है, कुरूप को सुन्दरतम् बना देती है, अनुदात्त तत्व उदात्त के रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सच्चा सौन्दर्य कलुषता को समाप्त करके श्रेष्ठता की ओर ले जाता है।

गुप्त जी के समूचे साहित्य में पुरुष सौन्दर्य के अन्तर्गत जहाँ शिशु की चपल क्रीड़ाओं का,

उसके सौष्ठव अंग विन्यास का मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है वहीं शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुरूप पुरुष सौन्दर्य का भी प्रेरणादायी अकंन हुआ है। नारी पात्रों के सौन्दर्य निरूपण में गुप्त जी को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुयी है। असाधारण को साधारण की कोटि में ला कर खड़ा कर देना गुप्त जी का प्रशंसनीय प्रयास है। प्राकृतिक सौन्दर्य के अन्तर्गत कवि ने जहाँ षठऋृतुओं का मुग्धा नायिकाओं की भांति चित्रण किया है वहीं झर-झर करते हुये शत-शत निर्झरों का दूधिया हास भी अंकित है। निरभ्र नीलाकाश, प्राची की दिशा में उषा के कपोलों पर लाज, अरुणिमा, हिमाच्छदित नगाधिराज के उत्तुंग शिखर, सद्य:जात पाटल प्रसून सा प्रभात, दूर्वा दल पर सोते हुये मुक्ता बिन्दु मध्याह्न, सन्ध्या एवं रात्रि के अनेकानेक रम्य, भव्य-और आकर्षक दृश्य विद्यमान है।

अनुभूति और अभिव्यक्ति के मणिकांचन संयोग के कारण गुप्त जी की प्रकटीकरण की क्षमता लौकिक से अलौकिक बन बैठी। इसी से लौकिक अथवा पार्थिव एवं अलौकिक अथवा अपार्थिव सौन्दर्य का भी गुप्त जी के साहित्य में पदे-पदे भव्य निरूपण उपलब्ध होता है। वस्तुत: सौन्दर्य तो सौन्दर्य ही है उसे किसी से उपमित नहीं किया जा सकता वह सर्वथा अनुपम और नेत्रेन्द्रिय संवेद्य है। ज्यों-ज्यों उसे देखा जाता है त्यों-त्यों उसके दर्शन की प्यास बढ़ती चली जाती है, क्षण-क्षण वह नवीन होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार सौन्दर्य किसी वस्तु में विद्यमान न होकर द्रष्टा की दृष्टि में विद्यमान रहता है, अतएव जैसी दृष्टि होती है उसी प्रकार सृष्टि भी दिखलाई देने लगती है। तभी तो कबीर को लिखना पड़ा -

लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल ॥
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ॥

संदर्भ ग्रंथ
और
पत्र-पत्रिकाएँ

- आधार ग्रन्थ -

1. अर्जन और विसर्जन — मैथिली शरण गुप्त
2. अजित — मैथिली शरण गुप्त
3. अंजलि और अर्ध्य — मैथिली शरण गुप्त
4. अनघ — मैथिली शरण गुप्त
5. उच्छवास — मैथिली शरण गुप्त
6. किसान — मैथिली शरण गुप्त
7. काबा और कर्बला — मैथिली शरण गुप्त
8. कुणाल-गीत — मैथिली शरण गुप्त
9. गुरुकुल — मैथिली शरण गुप्त
10. चन्द्रहास — मैथिली शरण गुप्त
11. जय भारत — मैथिली शरण गुप्त
12. जयद्रथ वध — मैथिली शरण गुप्त
13. झंकार — मैथिली शरण गुप्त
14. तिलोत्तमा — मैथिली शरण गुप्त
15. द्वापर — मैथिली शरण गुप्त
16. नहुष — मैथिली शरण गुप्त
17. पद्य प्रबन्ध — मैथिली शरण गुप्त
18. पत्रावली — मैथिली शरण गुप्त
19. पंचवटी — मैथिली शरण गुप्त
20. प्रदक्षिणा — मैथिली शरण गुप्त
21. पृथ्वी पुत्र — मैथिली शरण गुप्त
22. भारत-भारती — मैथिली शरण गुप्त
23. मंगल घट — मैथिली शरण गुप्त
24. यशोधरा — मैथिली शरण गुप्त
25. युद्ध — मैथिली शरण गुप्त
26. रंग में भंग — मैथिली शरण गुप्त
27. रत्नावली — मैथिली शरण गुप्त
28. राजा-प्रजा — मैथिली शरण गुप्त
29. लीला — मैथिली शरण गुप्त

30. वैतालिक मैथिली शरण गुप्त
31. विकटभट मैथिली शरण गुप्त
32. विश्व-वेदना मैथिली शरण गुप्त
33. विष्णु-प्रिया मैथिली शरण गुप्त
34. शकुन्तला मैथिली शरण गुप्त
35. शक्ति मैथिली शरण गुप्त
36. सिद्धराज मैथिली शरण गुप्त
37. साकेत मैथिली शरण गुप्त
38. स्वदेश-संगीत मैथिली शरण गुप्त
39. हिडिम्बा मैथिली शरण गुप्त
40. हिन्दू मैथिली शरण गुप्त
41. त्रिपथगा मैथिली शरण गुप्त

हिन्दी सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अनुसंधान एवं आलोचना डॉ. नगेन्द्र
2. अपर्णा महाकाव्य डॉ. राम स्वरूप खरे
3. आधुनिक काव्यधारा श्री राम नरेश त्रिपाठी
4. आधुनिक साहित्य आचार्य नन्द दुलारे बाजपेई
5. आधुनिक कविता में प्रेम और सौन्दर्य डॉ. खण्डेलवाल
6. आधुनिक काव्य में सौन्दर्य भावना डॉ. शकुन्तला वर्मा
7. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान का विकास (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध) केदार नाथ सिंह
8. आँसू जयशंकर प्रसाद
9. आधुनिक काव्य में सौन्दर्य बोध के विविध आयाम छोटे लाल दीक्षित
10. इतिहास प्रवेशश जयचन्द्र विद्यालंकार
11. उदात्त और शिल्पन प्रोफेसर जगदीश चन्द्र पाण्डेय
12. औचित्य विचार चर्चा अनुवादक-मनोहर लाल गौड़
13. काँग्रेस का इतिहास पट्टाभि सीता रमैया
14. काव्यालोचन में सौन्दर्य दृष्टि डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा

15. कामायनी   जय शंकर प्रसाद
16. काव्य में सौन्दर्य और उदात्त तत्व   शिव बालक राय
17. काव्य में उदात्त तत्व   डॉ. नगेन्द्र
18. कालिदास की लालित्य योजना   डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
19. कला तथा आधुनिक प्रवृत्तियाँ   आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
20. कल्पलता   डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
21. काव्य और कला   डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा
22. काव्य में अभिव्यंजनावाद   डॉ. लक्ष्मी नारायण सुधांशु
23. काव्य कला तथा अन्य निबन्ध   जय शंकर प्रसाद
24. कला एवं साहित्य : प्रवृत्ति और परम्परा   प्रोफेसर विश्वनाथ प्रसाद
25. काव्य में रहस्यवाद   आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
26. कला सिद्धान्त और परम्परा   डॉ. सरन सुधा
27. कवि रहस्य   गंगा नाथ झा
28. काव्य बिम्ब   डॉ. नगेन्द्र
29. काव्य दर्पण   पं. राम दहिन मिश्र
30. काव्य कल्पद्रुम (प्रथम भाग)   सेठ कन्हैया लाल पोद्दार
31. काव्य प्रभाकर   जगन्नाथ दास रत्नाकर
32. काव्य में अप्रस्तुत योजना   पं. राम दहिन मिश्र
33. काव्य दर्पण   डॉ. राम स्वरूप खरे
34. गीतांजलि   रवीन्द्र नाथ टैगोर
35. गीत पर्व   महादेवी वर्मा
36. गुप्त जी की काव्य साधना   डॉ. उमाकान्त
37. चिदम्बरा   सुमित्रानन्दन पंत
38. चन्द्रगुप्त मौर्य   जय शंकर प्रसाद
39. चिद् विलास   डॉ. सम्पूर्णानन्द
40. चिन्तामणि भाग-1 आचार्य चन्द्र शुक्ल   रत्नाकर
41. चिन्तन अनुचिन्तन   भगत सिंह राजुरकर
42. छन्द प्रभाकर   जगन्नाथ दास रत्नाकर
43. छायावादी सौन्दर्य का शास्त्रीय अध्ययन   डॉ. कुमार विमल
44. छायावादी कवियों का सौन्दर्य विधान   सूर्य प्रसाद दीक्षित
45. छायावाद   डॉ. नामवार सिंह

46. छायावादी काव्य में सौन्दर्य दर्शन	डॉ. सुरेश त्यागी
47. छायावाद काव्य तथा दर्शन	डॉ. हर नारायण सिंह
48. जय शंकर प्रसाद वस्तु और कला	रामेश्वर लाल खण्डेलवाल
49. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका	आचार्य राम चन्द्र शुक्ल
50. जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त	डॉ. लक्ष्मीनारायण सुधांशु
51. ज्योत्स्ना	सुमित्रानन्दन पंत
52. तार सप्तक	अज्ञेय
53. तालस्ताय : कला क्या है ?	रूपान्तरकार- इन्दुकान्त शुक्ल
54. तुलसी साहित्य का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन	मोहन लाल श्रीवास्तव
55. तुलसी का काव्य सिद्धान्त	गीता गुप्ता
56. तुलसी का सौन्दर्य बोध	छोटे लाल दीक्षित
57. तुलसी साहित्य में बिम्ब योजना	डॉ. सुशीला शर्मा
58. देव और उनकी कविता	डॉ. नगेन्द्र
59. दृष्टि और दिशा : साहित्यक निबन्ध	डॉ. चन्द्रभान रावत
60. दिव्य जीवन (प्रथम ग्रन्थ)	श्री अरविन्द
61. दिव्य जीवन (द्वितीय ग्रन्थ)	श्री अरविन्द
62. दीप-शिखा	महादेवी वर्मा
63. निराला की सौन्दर्य चेतना	अंजु शर्मा
64. नाटक : समीक्षा ग्रन्थ	भारतेन्दु
65. निबन्ध मणि	डॉ. राम विलास शर्मा
66. निराला रचनावली	निराला
67. निहार रश्मि	महादेवी वर्मा
68. पद्मावत	मलिक मुहम्मद जायसी
69. पाश्चात्य काव्य शास्त्र की भूमिका	श्रीमती सिन्हा
70. पल्लव	सुमित्रा नन्दन पंत
71. पाश्चात्य साहित्य लोचन के सिद्धांत	लीलाधर गुप्त
72. पूर्व और पश्चिम कुछ विचार	डॉ. राधाकृष्णन, अनुवादक- रमेश शर्मा
73. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन	डॉ. वीणा माथुर
74. प्रबन्ध- प्रतिमा	निराला
75. प्रकाश की ओर	नलनीकांत गुप्त
76. प्रिय-प्रवास	बालकृष्ण भट्ट

77. बिहारी - सतसई — बिहारी
78. बोल चाल — अयोध्यासिंह उपाध्याय
79. भारत का वैधानिक और राष्ट्रीय विकास — गुरुमुख निहाल सिंह
80. भारत वर्ष का नवीन इतिहास — डॉ. ईश्वरी प्रसाद
81. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र — के. सी पांडे
82. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका — फतेह सिंह
83. भारतीय साहित्य शास्त्र — बल्देव उपाध्याय
84. भ्रमर गीत सार की भूमिका — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
85. मैथिली शरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता — डॉ. उमाकांत
86. मैथिलीशरण गुप्त के पात्रों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन — डॉ. राम कुलकर्णी
87. मंझन का सौन्दर्य दर्शन — डॉ. लालता प्रसाद सक्सेना
88. महादेवी वर्मा के काव्य में सौन्दर्य भावना — डॉ. गाविन्द पाल सिंह
89. मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य — डॉ. कमला कांत पाठक
90. महावीर प्रसाद द्विवेद्वी और उनका युग — उदय भानु सिंह
91. रस सिद्धान्त — डॉ. नगेन्द्र
92. राम चरित मानस — गोस्वामी तुलसी दास
93. रस मीमांसा — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
94. रस और रसास्वादन — डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा
95. रस सिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र — डॉ.निर्मला जैन
96. रसज्ञ रंजन — आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेद्वी
97. रवीन्द्र नाथ के निबन्ध — अनुवादक- अमृतराय
98. रस विलास — देव
99. रीत काव्य की भूमिका — डॉ. नगेन्द्र
100. राम चन्द्रिका — केशवदास
101. लहर — जय शंकर प्रसाद
102. विद्यापति की पदावली — विद्यापति
103. विद्यापति का सौन्दर्य बोध — डॉ. राम सजन पाण्डेय
104. वाङमय विमर्श — विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
105. विनय पत्रिका — तुलसीदास
106. वृहत् साहित्यक निबन्ध — डॉ. शान्ति स्वरूप गुप्त

107. समय के पाँव	माखन लाल चतुर्वेदी
108. साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन	डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना
109. साहित्य और कला	डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा
110. सुमित्रानन्दन पंत की सौन्दर्य चेतना का विकास	डॉ. राजकुमारी
111. सूरसागर	सूरदास
112. साहित्य शास्त्र	डॉ. रामकुमार वर्मा
113. साहित्य और सौन्दर्य बोध(रवीन्द्र और निराला के सन्दर्भ में)	डॉ. राम शंकर द्विवेद्वी
114. सत्यं शिवं सुन्दमं	डॉ. रामानन्द तिवारी
115. सौन्दर्य तत्व	डॉ. सुरेन्द्रदास गुप्त (अनुवाद-डॉ.आनन्द प्रसाद दीक्षित)
116. साहित्य लोचन	बाबू श्याम सुन्दर दास
117. सिद्धान्त और अध्ययन	डॉ. गुलाब राय
118. साहित्य का श्रेय और प्रेय	जैनेन्द्र
119. संस्कृति और साहित्य	डॉ. राम विलास शर्मा
120. समीक्षा के नये आयाम	प्रताप सिंह चौहान
121. साहित्यक निबन्ध	राजनाथ शर्मा
122. सांध्यगीत	महादेवी वर्मा
123. संवेदना और सौन्दर्य	राजकमल बोरा
124. सौन्दर्य तत्व विरुपण	डॉ. एस. टी. नरसिंहाचारी
125. सौन्दर्य विज्ञान	हरवंश सिंह शास्त्री
126. साहित्य की मान्यतायें	भगवती चरण वर्मा
127. सौन्दर्य शास्त्र	डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा
128. साहित्य संतरण	इलाचन्द्र जोशी
129. सत्यं शिवं सुन्दरं	डॉ. जैनेन्द्र
130. साहित्य शास्त्र के सिद्धान्त	डॉ. सरोजनी मिश्रा
131. सौन्दर्य तत्व और कला सिद्धांत	डॉ. सुरेन्द्र वार लिंगे
132. सूरदास की लालित्य योजना	डॉ. परेश
133. सौन्दर्य शास्त्र की पाश्चात्य परम्परा	डॉ. राजेन्द्र प्रताप सिंह
134. साहित्य और सौन्दर्य	फतेह सिंह
135. साहित्य सिद्धांत	डॉ. राम अवध द्विवेद्वी
136. हिन्दुस्तान की कहानी	पं. जवाहरलाल नेहरू

137. हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास — डॉ. राजशेखर प्रसाद चतुर्वेदी
138. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ — जय किशन प्रसाद खण्डेलवाल
139. हिन्दी साहित्य का इतिहास — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
140. हिन्दी नवनीत — राम स्वरूप त्रिपाठी
141. हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम् — डॉ. नगेन्द्र
142. हमारी साहित्यक समस्यायें — हजारी प्रसाद द्विवेद्वी
143. हिन्दी वैष्णव भक्ति काव्य धारा — योगेन्द्र प्रताप सिंह
144. हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण — डॉ. किरण कुमारी गुप्ता
145. हिन्दी भाषा — बाबू श्याम सुन्दरदास
146. हिन्दी नाटक : उद्‌भव और विकास — दशरथ ओझा
147. हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी — नन्द दुलारे बाजपेई
148. हिन्दी काव्य में शृंगार परम्परा : महाकवि बिहारी — डॉ. गुणपति चन्द्र गुप्त
149. हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि — डॉ. भोला नाथ
150. हिन्दी कविता में मनोविज्ञान — डॉ. उर्वशी, ज. सूरती
151. हिन्दी काव्यालंकार सूत्र की भूमिका — डॉ. नगेन्द्र

संस्कृत सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अभिनव भारती — अभिनव गुप्त-अनुवादक-विश्वेश्वर आचार्य
2. अमरकोष — अमर सिंह
3. अभिज्ञान शाकुन्तलम् — कालिदास
4. औचित्य विचार चर्चा — आचार्य क्षेमेन्द्र अनु.-बृजमोहन झा
5. ऋग्वेद — सम्पादक : मैक्समूलर
6. काव्यालंकार — मामह, अनुवाद-देवेन्द्रनाथ शर्मा
7. कठोपनिषद — कल्याण प्रेस गोरखपुर
8. कुमार सम्भवम् — कालिदास
9. काव्यालंकार सूत्र-वृत्ति — वामन
10. किरातार्जुनीय — भारवि
11. चन्द्रलोक — जयदेव
12. छन्दोग्यउपनिषद — गीता प्रेस

13. तैत्तिरियोपनिषद — कल्याण प्रेस गोरखपुर
14. दशरूपक — धनञ्जय
15. ध्वन्यालोक लोचन — आनन्द वर्धन, अनु.-जगन्नाथ पाठक
16. नाट्य शास्त्र — भरतमुनि, अनु.-रामगोपाल शुक्ल
17. नारद भक्ति सूत्र — नारद
18. नीतिशतक — भर्तृहरि
19. प्रचण्ड पाण्डव — राजशेखर
20. महाभारत — मर्हिष व्यास
21. रस गंगाधर — जगन्नाथ, अनुवाद-बदरीनाथ झा
22. रघुवंशम् — कालिदास
23. वेदान्त सूत्र — शंकराचार्य
24. वायु पुराण — महर्षि वेदव्यास
25. वाल्मीकि रामायण — बाल्मीकि
26. वक्रोक्ति जीवितम् — कुन्तक
27. साहित्य दर्पण विमल — टीका-विश्वनाथ, अनु.सत्यव्रत सिंह
28. श्रीमद्भागवद गीता — महर्षि वेदव्यास

आंग्ल सन्दर्भ ग्रन्थ

1. आन द वेद — अरविन्द
2. आर्ट एण्ड फिलासफी — ए सैम्पोलियम
3. आर्ट एण्ड एम्सपीरियंस — जॉन ड्यूई
4. आन आर्ट एण्ड ऐस्थेरिम्स — रवीन्द्रनाथ टैगोर
5. आर्म्सफर्ड लिट्रेचर्स ऑन पोइट्री — ए. सी. ब्रेडेले
6. आर्ट ऑफ शोशल लाइफ — पी. ए. प्लेखानोव
7. इण्डियाज कल्चर थ्रू द एजज — एम. ए. विद्यार्थी
8. इन्ट्रोडक्शन ऑफ ऐस्थेटिक्स — ई. एफ. कैरिट
9. एन ऐसे टुवाईस ए थ्योरी ऑफ आर्ट — एल. एवर क्रोम्बे
10. ए. शार्ट हिस्ट्री — विलियम के. विमसैट
11. ऐस्थेटिक्स — बोनीडिटो क्रौस
12. ऐस्थैटिक्स डगलस एन लाइज — वेनीडिटो क्रौस

13. ऐस्थेटिक्स जजमैण्ट	डी. डब्लू पॉल
14. ओरिजन ऑफ द सेन्स ऑफ ब्यूटी	ह्यूम
15. कंसरनिंग ब्यूटी	जे. मॉथर
16. क्रिटिकल हिस्ट्री ऑफ ऐस्थेटिक्स	इस्कॉलर
17. द मीनिंग ऑफ ब्यूटी	एरिक न्यूटन
18. द विच ऑफ एटलस	पी. शैले
19. द आर्ट एण्ड द आर्टस ऑफ क्रिटिस्जम	टी. एम. ग्रीन
20. द डांस ऑफ शिव	आनन्द कुमार स्वामी
21. द हिन्दू व्यू ऑफ आर्ट	आनन्द कुमार स्वामी
22. द फौर्मस ऑफ थिंग्स अननोन-	हरबर्ट रैड
23. द न्यू क्रिटिसिज्म	जे. ई. सिंपगर्न
24. द मीनिंग एण्ड परपस ऑफ आर्ट	होबेल
25. द मेकिंग ऑफ लिट्रेचर	आर. ए. स्काट जेम्स
26. पर्सनैलटी	रवीन्द्र नाथ टैगोर
27. पोयम्स ऑफ कबीर	रवीन्द्र नाथ टैगोर
28. प्रिंसीपल ऑफ आर्ट	आर. जी. कलिंग वुड
29. प्रिसीपल ऑफ लिट्ट्रेरी क्रिटिस्जम	आई. एरिचर्डस
30. फिलॉसफी ऑफ द ब्यूटी फुल (पार्ट-1)	विलियम नाइट
31. फिलॉसफी ऑ क्रोच	विलडन केर
32. फ्रा लिप्पो लिप्पी	आर. ब्राउनिंग
33. फ्रौग मैन्टस	शैफो
34. मार्डन पेन्टर्स वैल्यूम -1	रस्किन
35. मोर फोलॉजिकल पॉयटिक रिवयू ऑफ द प्रिसीपल क्यूश्चन	गुन्थर मुलर
36. इन मोरलस	आर. प्राइज
37. रिफ्ले क्शन ऑन आर्ट	गुन्थर मुलर
38. लिट्रेचर एण्ड साइकलॉजी	एम. एल. लूकस
39. व्हाट इज आर्ट	तालस्ताय
40. व्हाट इज आर्ट	ही गेल
41. हिस्ट्री ऑफ ऐस्थेटिक्स	बर्नाड बोसाक्विट
42. हिस्ट्री ऑफ आर्ट क्रिटिसिज्म	एल. वैचुरी

43. हिस्ट्री ऑफ ऐस्थेटिक्स — शेफ्ट शबरी
44. हेरीटेज आव सिम्बोलिज्म — सी. एम. बाबरा

सन्दर्भित पत्र-पत्रिकायें

1.आलोचना, त्रैमासिक, अक्टूबर-1953 — सम्पादक टी. माचि. रेड्डी
2. गाँधीवाद समाजवाद — नवयुग साहित्य सदन इन्दौर
3. मध्य प्रदेश संदेश जुलाई 1978
4. महाराष्ट्र मानस, अंक- 45 — सम्पादक- प्रमोद माने
5. मामुलिया — अंक 17-18 सम्पादक नर्मदा प्रसाद शुक्ल
6. रस गंगाधर, संस्करण- 1936 — निर्णय सागर प्रेस
7. सरस्वती (1911) — सम्पादक:आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेद्वी
8. सम्मेलन पत्रिका, (6 पौष जेयष्ठ, शक सवंत् 1891) — छोटे लाल दीक्षित
9. समालोचक — 1958 (सौन्दर्य शास्त्र विशेषांक)
10. समीक्षा लोक — सम्पादक : भागीरथ दीक्षित
11. साहित्य संदेश (जून-1962)
12. स्कन्ध गुप्त विक्रमादित्य — प्रसाद भारत भारती भण्डार

सन्दर्भित कोश

हिन्दी कोश-

1. हिन्दी शब्द सागर (संस्करण - 2002) — सम्पादक बाबू श्यामसुन्दर दास
2. हिन्दी साहित्य का पारिभाषिक शब्द कोश — सम्पादक राजेन्द्र द्विवेद्वी

आंग्ल भाषीय कोश-

1. इन्साइकलोपीडियो ब्रिटेनिका(संस्करण -21)
2. चेम्बर्ज ट्रेवेन्टी एथ सेन्चुरी डिक्शनरी — (संस्करण- 1954)
3. डिक्शनरी ऑफ वर्ड लिट्रेचर — सम्पादक जॉसेफ टी. सिप्ले